सम्मेलन-पत्रिका

(त्रैमासिक)

[भाग–५६, सख्या–२–३]
चैत्र भाद्रपद, शक १८९२

सम्पादक
ज्योतिप्रसाद मिश्र निर्मल
रामप्रताप त्रिपाठी शास्त्री

वार्षिक दस रुपये } हिन्दी साहित्य सम्मेलन, प्रयाग { इस प्रति का पाँच रुपये

विषय-सूची

डाक्टर सोमनाथ गुप्त

भरतपुर और नाट्य-समितियाँ

सन् १९१३ में श्री हिन्दी साहित्य समिति भरतपुर के वार्षिकोत्सव पर नाट्याभिनय के लिए 'नाट्य-समिति', भरतपुर का जन्म हुआ । इसके प्रेरणासूत्र श्री पन्नोलाल उपाध्याय थे, जो आगरा से प्रकाशित होने वाले 'स्वदेश-बांधव' के सहसंपादक थे।

'नाट्य-समिति' वास्तव मे कोई पृथक् समिति न होकर हिन्दी साहित्य समिति के अन्तर्गत ही एक ऐसी संस्था थी, जो सेवा-दल की तरह, उसके कार्य-क्रम का एक अंग थी। इस मे सर्व प्रथम "सावित्री-सत्यवान्" नाटक का अभिनय करने का प्रबंध किया गया। इस नाटक के रचयिता उपरोक्त श्री पन्नालाल जी ही थे । कहा जाता है कि नाटक की सूचना लगभग ३० मील दूर तक पहुँच गई और उसे देखने के लिए दर्शक मंडली इतनी अधिक एवं अधीर हो गई कि निश्चित समय पर अभिनय करना असंभव हो गया। उसे स्थगित करना पडा तथा दूसरे दिन टिकट लगा कर प्रवेश पाने पर ही अभिनय संभव हो सका। टिकट की दर आठ आना, चार आना और दो आना रखी गई थी।

एक बार नाटक का चस्का लगने पर तो चाह बढ़ती ही गई। विशेष उत्सवों पर भी अभिनय किया जाने लगा। दर्शक भी अच्छी संख्या मे उपस्थित हो जाते थे। इन नाटकों का मुख्य उद्देश्य मनोरंजन के साथ हिन्दी-उत्थान विषयक आन्दोलन को भी प्रोत्साहन देना था। नाटको का विषय पौराणिक आख्यान अथवा इतिहास-परक कथायें होती थीं । राधेश्याम कथावाचक के नाटक विशिष्ट रूप से लोकप्रिय थे । स्थानीय लेखक श्री कन्हैयालाल के नाटकों का अभिनय भी हुआ करता था। कन्हैयालाल जी के नाटकों में से "अंजना सुंदरी", "रत्न सरोज" तथा "शील-सावित्री" प्रकाशित हो चुके हैं परन्तु "प्रेममयी नाटक" एवं "रसिक सुन्दरी" नाटक अभी तक अप्रकाशित हैं।

नाटकों की भूमिकाओं मे पुरुष पात्र ही अवतीर्ण हुआ करते थे । इनके लिए रंगमंच का अस्थायी निर्माण पारसी रंगमंच के आधार पर ही होता था। वेशभूषा और रंगस्थली के दृश्य आदि की सज्जा अस्थायी घुमक्कड़ थियेट्रिकल कम्पनियों से प्रभावित रहती थी।

ध्यान मे रखने योग्य बात यह थी कि नाट्य-सेवा मनोरंजन के साथ साथ हिन्दी-सेवा और देश-सेवा मानी जाती थी। इसी कारण अंग्रेजी राज्य और उसकी राजनीति की दृष्टि मे भरतपुरवासियो का यह कदम बड़ी संदिग्ध दृष्टि से देखा जाता था। यहाँ तक इसका

प्रभाव पड़ा कि तत्कालीन महाराज किशनसिंह जी तक इससे इसलिए नाराज़ हो गये, उन्होंने भी सेवा-दल के कार्यों को कांगरेस द्वारा समर्थन पानेवाली संस्था मानकर, नाट्य-समिति तक को उसी का अंग मान लिया और उन्होने अपनी सरक्षता नाट्य-समिति से हटा ली।

सन् १९१८ में महाराज किशनसिंह जी ने जो नाट्य-मंडली गठित की उसका नाम रखा "वाट्सन एम्यूज़मेंट हाल।" इस मंडली के लिए कुछ ऐसे व्यक्ति छाँटे गये जो विभिन्न राजकीय विभागो मे अधिकारी थे अर्थात् उन्हें वेतन अपने विभाग से मिलता था परन्तु कार्य नाट्याभिनय करना रहता था। कुछ इसमे बाहर के कलानिपुण और संगीत एवं नाटक विषयक अंशों के विशेषज्ञ भी सम्मिलित थे जिन्हे अच्छा वेतन दिया जाता था। कहा जाता है कि कुल मिलाकर इसमे लगभग १५० कलाकार थे। वाद्यवादको की सख्या लगभग ६० थी। नाटको के निर्देशक चतुर कलाविद एवं रंगस्थल आदि के मर्मज्ञ थे। पात्रो मे पुरुषो के साथ स्त्रियों का भी समावेश हो गया था। कल्लो बाई को १५०) मासिक मिलता था और श्यामाबाई का नाम भी इस दृष्टि से उल्लेखनीय हैं।

सत्य तो यह है कि नाट्यमंडल का उद्देश्य रसिक और मनोरंजनप्रिय महाराज का रुचि-प्रदर्शन तो था ही, साथ ही उसके द्वारा महाराज अपनी समृद्धि और शक्ति का प्रकाशन भी करना चाहते थे। वह प्रायः कहा करते थे—"पारसी नाटक कपनियों और उनके चमत्कार की क्या प्रशसा करते हो? आकर जरा मेरे यहाँ के नाटक तो देखो।" धन और साधन का इस मंडली के लिए कोई अभाव न था। एक घटना बताई जाती है कि किसी व्यक्ति ने नाटक के एक पर्दे की ओर महाराज का ध्यान आकर्षित करते हुए कह दिया कि यदि चद्रमा इस स्थान की अपेक्षा अमुक स्थान पर चित्रित किया जाता तो दृश्य और अधिक सुदर बन जाता। महाराज के मस्तिष्क मे बात बैठ गई। तुरत दो अधिकारी वायुयान द्वारा बम्बई भेजे गये और चित्रकार द्वारा परिवर्तन कराकर तत्काल वापिस आने का आदेश उन्हें दिया गया, क्योंकि अगले दिन उस पर्दे पर नाटकाभिनय होना था।

सन् १९२० मे इस मंडली के गठन में कुछ परिवर्तन किया गया। नई वृद्धि और रंगरूप में इस का नाम पड़ा "भरतपुर ड्रामेटिक सोसाइटी" सोसाइटी महाराज की निजी वस्तु न होकर सरकारी रूप मे परिवर्तित हो गई। एक नया विभाग जैसा ही खुल गया। इस कार्य में अधिकारी को 'सुपरिण्टेण्डेण्ट' की पदवी दी गई। सर्वप्रथम नियुक्ति श्री मेवाराम जी की हुई। ताजगंज, आगरा के निवासी श्री उमरावखां डायरेक्टर या निर्देशक बनाये गये और उस समय के एक प्रसिद्ध कलाकार (मुंशी मुहम्मद) को दृश्य-निर्माता एवं रंगस्थल की साजसज्जा का कार्य सौंपा गया। श्री गेंदालाल संगीत अधिकारी के पद पर सुशोभित हुए। अभिनेताओं मे श्री ब्रजबिहारीलाल और रूपा प्रमुख थे। स्त्री पात्रो मे महाराज की भरजीदान श्यामाबाई थीं जिन्हें २५०) मासिक वेतन मिलता था। कल्लोबाई का उल्लेख ऊपर हो ही चुका है।

इस सोसाइटी द्वारा अभिनीत नाटकों में कुछ प्रसिद्ध नाटक ये हैं—

१—सैदे हविस २. असीरे हिर्स ३. खूनेनाहक़ ४. विल्वमंगल ५. श्रीमती मंजरी और ६. चन्द्रावली। इनके अतिरिक्त मिर्जा नजीरवेग 'नजीर' के लिखे हुए 'हरिश्चंद्र', 'गुल-बकावली' और 'सफेद खून' तथा नारायणप्रसाद 'बेताब' का लिखा 'महाभारत' भी अभिनीत हुआ था।

यद्यपि नाटक को देखने के लिए टिकट लगाए जाते थे जिनकी दर ५), ३), २), १), और ॥) होती थी परन्तु महाराज की निजी सुरक्षक तथा G H I. के सैनिकों को 'फ्री पास' दिए जाते थे। राजा के पोलिटिकल एजेंट आदि भी निमन्त्रित होते थे।

सन् १९२६ में महामना मालवीय जी के सम्पर्क मे आने पर तथा राज्याधिकारियों के प्रभाव से महाराज को हिन्द और हिन्दी के प्रति अपने कर्त्तव्य का बोध हुआ। परिणामतः संस्था की प्रेरणा और उद्देश्य में भी एक व्यावहारिक परिवर्तन आया। नाटक का उद्देश्य केवल मनोरंजन न रहकर हिन्दी-प्रचार भी हो गया। सन् १९२७ में हिन्दी साहित्य सम्मेलन के अवसर पर नाट्य-समिति की ओर से राधेश्यामकृत 'भक्त प्रहलाद' का अभिनय किया गया। इस अवसर पर मालवीय जी, रवीन्द्रनाथ टैगोर, गणेशशकर विद्यार्थी एव श्री ओझा जी भी उपस्थित थे। प्रह्लाद की भूमिका श्री बृजबिहारीलाल ने निभाई और सुन्दर उत्कृष्ट अभिनय के कारण ११००) रुपये का पुरस्कार भी प्राप्त किया। प्रह्लाद की माता की भूमिका महाराज की स्वीकृति पर श्यामाबाई ने पूरी की थी।

इस नाटक के लिए एक परिचय-पत्र भी छपा था। सुन्दर कागज पर अगरेजी मे यह परिचय-पत्र बडी सुरुचि से छाप कर अधिकारियों एवं सम्भ्रान्त व्यक्तियों को भेजा गया था। परिचय-पत्र के प्रथम पृष्ठ पर अभिनेताओ और उनकी भूमिका का निर्देश था। साथ ही सगीत निर्देशक गेंदालाल जी तथा सामान्य निर्देशक उमराव खा का नाम भी दिया गया था। अगले दूसरे और तीसरे पृष्ठो पर प्रत्येक दृश्य का सक्षिप्त परिचय था।

नाट्यसमिति के इन दिनो में जब कि वह सरकारी हो गई थी प्रमुख खेले गए नाटक हैं—वीर अभिमन्यु, परिवर्तन, ईश्वर भक्ति, जिन्हें प० राधेश्याम कथा वाचक ने लिखा तथा आग़ा हश्र काश्मीरी का लिखा सूरदास।

महाराज हारमोनियम बाजे के विरुद्ध थे अतएव उनकी वाद्य-मंडली में केवल तार-वाद्य ही बजाये जाते थे। प्रसिद्ध सगीत-निर्देशक लक्ष्मीकान्त अथवा प्यारेलाल के पिता श्री रामप्रसाद वाद्य-मडली मे ६) मासिक पाते थे।

महाराजा की यह गतिविधि अंगरेज सरकार के गले नही उतरी और उन पर अनेक लाछन लगाकर उन्हें भरतपुर से देहली निष्कासित कर दिया गया। अतएव सन् १९२८ में समिति भी समाप्त हो गई और नये रेज़ीडेन्ट श्री मेकेंजी ने समिति का समस्त सामान साढ़े छः हजार रुपये मे नीलाम कर दिया।

सन् १९३३ में "कोआपरेटिव ड्रामा क्लब" की स्थापना हुई और उसके एक वर्ष बाद

ही, भरतपुर कौंसिल द्वारा, उसे 'एम्योचेर क्लब' में परिवर्तित कर दिया गया। इस क्लब ने वर्तमान नरेश महाराज बृजेन्द्रसिंह की वर्षगांठ पर प्रतिवर्ष दो-दो, तीन-तीन तक नाटकों का अभिनय किया। इन नाटकों में उल्लेखनीय है भरतपुर निवासी श्री श्यामाकिशोर जी का 'गंगावतरण', आगा हश्र का 'सूरदास' और राधेश्याम का 'ईश्वरभक्ति' तथा 'मशरक़ी हूर'।

सन् १९३९ में 'कृष्णावतार' का अभिनय हुआ। इसमे "अम्बरीष" की भूमिका श्री राजबहादुर द्वारा की गई थी। क्लब द्वारा अभिनीत इस नाटक की लोकप्रियता अद्भुत और कलात्मक पूर्ति अपूर्व थी।

आजकल इस क्लब की समस्त सामग्री राजस्थान सहकारी-विभाग के पास है और इसका समस्त काम 'सहयोग और सहकार 'के प्रचार' के अन्तर्गत होता है।

डाक्टर रामचन्द्र तिवारी

कबीर के काव्य में रस

हिन्दी-साहित्य में कबीर का कवि-रूप विवादास्पद है। हिन्दी के कुछ शास्त्रनिष्ठ आलोचक कबीर को कवि नही मानते। उनके अपने तर्क हैं, अपनी मान्यताएँ हैं। इसके साथ ही कुछ उदार आलोचक 'कबीर' को कवि स्वीकार करते हैं। उनमें सत्य की निष्ठा, अनुभूति की सघनता, सन्देश की महानता, व्यक्तित्व का आकर्षण और भेदभाव-मुक्त शुद्ध मानवीय दृष्टि लक्षित करते हैं तथा इन्ही तत्त्वों के आधार पर उनके कविरूप की महत्ता प्रतिपादित करते हैं। प्रस्तुत सदर्भ में मैं इस विवाद को नही उठाना चाहता। मैं मूल विषय की चर्चा करनाही उचित समझता हूँ।

कबीर के नाम पर जो भी साखी, पद और रमैणी प्राप्त हैं और जिसे विद्वानों ने प्रामाणिक कह कर प्रस्तुत किया है, उसका 'रस' दृष्टि से विवेचन हो सकता है। मैं ऐसा समझता हूँ। प्रस्तुत निबन्ध इसी दृष्टि से लिखा गया है।

काव्य में रस-मीमांसा का साहित्य विशाल है। रसानुभूति का विश्लेषण मनोवैज्ञानिक, दार्शनिक और आध्यात्मिक कई भूमियों पर किया गया है। जब हम एक भूमि से दूसरी भूमि के स्तर-भेद का ध्यान न रखकर ही एक में गड्डमगड्ड कर देते हैं, तभी आशकायें उत्पन्न होती हैं। अन्तर्विरोध सामने आते हैं और परेशानियाँ बढ़ती हैं। रस-दृष्टि से कबीर के काव्य में प्रधानतः दो रसो की स्थिति मानी जा सकती है। 'भक्ति-रस' और 'शान्त-रस'। पृष्ठभूमि के रूप मे इन दोनों रसों की संक्षिप्त शास्त्रीय चर्चा अप्रासंगिक न होगी।

काव्य-शास्त्र के आचार्यों ने 'भक्ति' को स्वतत्र रस की मर्यादा नही दी। वे उसे भावकोटि में ही स्थान देते रहे। प्रायः इसका विवेचन शान्त-रस के भीतर ही किया गया है। भक्ति को रस की स्वतत्र मर्यादा गौड़ीय वैष्णव परंपरा मे प्राप्त हुई। यही नही रूपगोस्वामी ने इसे मूल रस माना और अन्य रसों का समावेश इसी के अन्तर्गत कर लिया। इस पर आगे सक्षेप मे विचार किया जायगा। पहले 'शान्त रस' को ही लें। 'शान्त रस' के विषय में भी अनेक मत और व्याख्यायें हैं। भरतमुनि ने 'शान्त रस' का वर्णन नही किया है। इसलिये बहुत से शास्त्र-निष्ठ विद्वान् इसे प्रस्थान-विरुद्ध मानते हैं। कुछ दूसरे विद्वान् व्यावहारिक जगत् में शान्त रस के स्थायी भाव 'शम' की सत्ता ही नही मानते। अतः उनके लिये शान्त रस अमान्य है। तीसरे प्रकार के विद्वान् चित्त की 'शम' प्रधान स्थिति तो मानते हैं किन्तु इसे स्वतंत्र स्थायीभाव न मानकर ''वीर' या 'वीभत्स' के अन्तर्गत इसका अन्तर्भाव कर लेते

हैं। उनके अनुसार 'शम' प्रधान चित्त में परमतत्व की प्रगति के लिये जो निरन्तर प्रयत्न होता रहता है, वह उत्साहमय होता है। इसलिये इसका अन्तर्भाव वीर के अन्तर्गत हो जाता है। कभी-कभी परमतत्वोन्मुख होने पर सांसारिक विषयों के प्रति जुगुप्सा का भाव ही प्रबल होता है, तब इसका अन्तर्भाव वीभत्स के भीतर हो जाता है। चौथी कोटि उन विद्वानो की है, जो 'शान्त रस' की अनुभूति सुख-दुख और राग-द्वेष से परे मोक्षावस्था में स्वीकार करते हैं, इसलिये 'नाटक' में इसकी स्थिति न मानते हुए भी पाठ्य-काव्यों में इसका निषेध या विरोध नही करते। 'शान्त-रस' के सम्बन्ध मे पाँचवाँ मत अभिनव गुप्त का है। वे इसे ही मूल रस मानते हैं। अभिनव गुप्त के अनुसार रस आनन्द रूप होता है। शुद्ध आनन्द शमावस्था मे ही होता है। जब चित्त सांसारिक प्रपचो से हटकर शुद्ध सत्वरूप मे प्रतिष्ठित होता है, तभी समचित्तता प्राप्त होती है। यही शान्तावस्था है। यही शुद्ध आनन्द की अवस्था है। बाह्य वस्तु के सामने आने पर जब चित्त तदाकारता ग्रहण कर लेता है, तब उसमें एक प्रकार की विकृति या वैषम्य आ जाता है। शान्त रस के अतिरिक्त अन्य रसो मे चित्त मे वस्तु-निष्ठता होने के कारण शुद्ध आनन्द नही होता। इसलिये शान्त रस ही मूल रस है। शृंगारादि अन्य सभी रस इसी मूल रस की विकृतियाँ है।

रूप गोस्वामी ने 'भक्ति रसामृत सिन्धु' में भक्ति-रस को ही मूल रस माना है। भक्ति रस मे भी 'मधुरा रति' सर्वश्रेष्ठ है। इसलिये वस्तुतः 'मधुर रस' ही मूल रस है। गौड़ीय आचार्यों के अनुसार भक्तिरस के अन्तर्गत कृष्ण-रति ही स्थायीभाव है। देव विषयक रति तो भाव मात्र है किन्तु कृष्ण-रति भगवद्विषया रति है। क्योंकि 'कृष्णास्तु भगवान् स्वयम' (भागवत)। इसलिये यह रस कोटि मे आती है। कृष्ण-विषया-रति दो प्रकार की होती है। मुख्या और गौणी। मुख्या रति से मुख्य भक्तिरस की निष्पत्ति होती है, गौणी-रति से 'गौणी भक्ति रस' की निष्पत्ति होती है। मुख्या रति ५ प्रकार की होती है—

(१) शुद्धा रति (शांति रति)—इससे शान्त रस निष्पन्न होता है।
(२) प्रीति रति (दास्य)—इससे प्रीति रस निष्पन्न होता है।
(३) सख्य रति—इससे प्रेयान् रस निष्पन्न होता है।
(४) वात्सल्य रति—इससे वात्सल्य रस निष्पन्न होता है।
(५) प्रियता या मधुरा रति—इससे मधुर रस निष्पन्न होता है।

गौणी रति ७ प्रकार की मानी गई है—हास रति, विस्मय रति, उत्साह रति, शोक रति, क्रोध रति, भय रति, और जुगुप्सा रति। इनसे क्रमश हास्य-भक्ति-रस, अद्भुत-भक्ति-रस, वीर-भक्ति-रस, करुण-भक्ति-रस, रौद्र-भक्ति-रस, भयानक-भक्ति-रस, वीभत्स-भक्ति-रस निष्पन्न होता है। इस प्रकार मुख्य और गौण भेदो को मिलाकर भक्तिरस के १२ प्रकार हो जाते हैं और काव्यशास्त्रीय सभी रसों का समावेश भक्ति रस मे हो जाता है। रूपगोस्वामी

के अनुसार भक्तो को इनकी अनुभूति नहीं हो सकती। वे इसकी मीमांसा के अधिकारी भी नही है।

कबीर में मुख्या रति के पाँचों प्रकार मिल जाते हैं किन्तु कठिनाई यह है कि गोडीय भक्तिशास्त्र में कृष्ण के सगुण रूप को आलम्बन मानकर इसके भेदों और उनसे निष्पन्न रसों की चर्चा की गई है। कबीर ने आलम्बन रूप में जिस आराध्य को स्वीकार किया है, उसका स्वरूप अनिर्दिष्ट एवं अनिर्वचनीय है। जहाँ तक उसके नाम का प्रश्न है, कबीर ने उन सभी नामो का प्रयोग किया है जो मध्य काल में ईश्वरवाची थे। 'हरि', 'राम', 'साहब', 'गोकुल', 'गोविन्द', 'नरहरि', 'माधव', 'मधुसूदन', 'बनवारी', 'निरजन', 'पूरण परमानन्द' आदि। यह अवश्य है कि उन्होंने 'राम' नाम का प्रयोग सर्वाधिक किया है। इससे प्रकट है कि किसी एक नाम के प्रति कबीर का आग्रह नही है। नाम कोई हो, तात्पर्य तो परमात्म-तत्त्व से है। यह तत्त्व सर्वव्यापी होते हुए भी सर्व-निरपेक्ष है। इसे एक भी कह सकते हैं, 'सम' भी कह सकते हैं, 'परात्पर' भी कह सकते हैं, निर्गुण-सगुण से परे भी कह सकते हैं और 'पूर्ण' भी कह सकते हैं। जो सत्ता बोध-परक या अनुभूति रूप है, जिसका अखण्ड आस्था के बल पर ही भावना किया जा सकता है, वह निष्ठा और प्रेम की इकाई ही है। वह चित्त की सर्वोच्च स्थिति ही है। वह आदर्श की चरम परिणति है। वह भक्त की भावना ही है। निर्गुण और सगुण में कोई तात्विक भेद नही है। निर्गुण ही सगुण हो सकता है। निराकार ही साकार हो सकता है। सगुण कहने का अर्थ ही है कि हम उसके 'निर्गुण' स्वरूप को स्वीकार करते हैं। तुलसीदास ने 'फूले कमल सोह सर कैसे, निर्गुंण ब्रह्म सगुण भये जैसे।' कहकर, 'अरूप के रूप' की ही बात कही है। आकार-ग्रहण करने के पूर्व हर सत्ता निराकार होती है, आत्मगत होती है। आन्तरिक भावादर्श ही प्रत्यक्ष होकर बाह्य अभिव्यक्ति प्राप्त करता है। असीम ही सीमित होकर साकार होता है। यह भी प्रकट है कि हम मात्र आकार या जड़-सघात को प्रेम नही करते। यदि ऐसा होता तो चेतना-विहीन 'शव' को ही रति का आलम्बन माना गया होता। आकार के भीतर जो निराकार है, जड मे स्पन्दित जो चेतन है, रूप के तरे जो क्रम है, सीमा निरपेक्ष जो असीम है, गुणात्मक विषमता से परे जो निर्गुणात्मक समत्व है, उसके प्रति हमारा समर्पण हो सकता है। आचार्य शुक्ल की यह शका कि परिचय के बिना प्रेम नही हो सकता, सही है, किन्तु परिचय केवल आकार से हो सकता है या रूपात्मक अभिव्यक्ति ही हमारी भाव-परिधि मे आ सकती है, यह मानना सत्य नही है। हमारी भाव-परिधि में— हमारे आदर्शों की वह भावात्मक इकाई भी आ सकती है, जिसे हम बौद्धिक दृष्टि से अपनी ही निष्ठा की वस्तुन्मुखी विवृत्ति कह सकते हैं। कबीर ने 'परचा को अंग' लिखकर जिस परमतत्व से अपना परिचय बताया है वह उनके प्रेम का ही प्रकाश है। उनकी पाप-पुण्य से परे, वितर्क और शंका से निरपेक्ष, उच्चतम मानसिक स्थिति का ही विमल बोध है। सीमा और असीम से निरपेक्ष शून्या या सहजावस्था को ही भावात्मक कल्पना कहते हैं। वे कहते हैं—

पिंजर प्रेम प्रकासिया जाग्या जोग अनंत ।
संसा छूटा सुख भया, मिल्या पियारा कंत ॥

प्यंजर प्रेम प्रकासिया अंतरि भया उजास ।
मुखि कसतूरी महमंही बाणी फूटी बास ॥

अगम अगोचर गमि नहिं, तहां जगमगे जोति ।
जहाँ कबीरा बंदिगी (तहाँ) पाप पुन्य नहि छोति ॥

हद छाड़ि बेहद गया, किया सुन्नि असनान ।
मुनि जन महल न पावई, तहाँ किया बिश्राम ॥

यहाँ जिस प्यारे कंत से परिचय की बात कही गयी है, वह अनुभूति की उच्चतम स्थिति (आध्यात्मिक अनुभूति) में ही संभव है।

आचार्य शुक्ल ने मनोवैज्ञानिक स्तर पर रस की व्याख्या की है। कबीर के काव्य मे रस की व्याख्या के लिये उसके आध्यात्मिक स्तर को स्वीकार करना होगा। इस स्तर पर आलम्बन के रूपात्मक अस्तित्व का प्रश्न नही उठता। गौडीय वैष्णव-परपरा मे भी इसकी ओर सकेत किया गया है। यहाँ उद्दीपन, अनुभाव आदि दो प्रकार के माने गये हैं। असाधारण और साधारण। असाधारण उद्दीपन और असाधारण अनुभाव भगवान् के अरूपात्मक अस्तित्व के प्रति शुद्ध राग की अवस्था मे भी फलित हो सकते हैं। साधारण उद्दीपन और साधारण अनुभाव उनके चतुर्भुज साकार रूप के प्रति रागनिष्ठा की अभिव्यक्ति मे फलित हो सकते हैं। उदाहरण के लिये एकान्तसेवन, ज्ञानी-भक्त संपर्क असाधारण उद्दीपन है। इसी प्रकार अवधूत की-सी चेष्टा, ज्ञान-मुद्रा का प्रदर्शन, मौनावलम्बन, निरपेक्षता आदि असाधारण अनुभाव है। सचारी भावो को लेकर असाधारण और साधारण का भेद नही किया गया है। निर्वेद, वृत्ति, विषाद, उत्सुकता, हर्ष आदि को ही सचारी भावों के रूप मे स्वीकार किया गया है। इस सम्प्रदाय मे श्रीकृष्ण के सगुण रूप को आलम्बन मानते हुए भी उनके निर्गुण निराकार स्वरूप का निषेध नही किया गया है। विग्रह और विग्रही मे भेद नही किया गया है। यहाँ हमारा प्रतिपाद्य निर्गुण-सगुण तत्वमीमांसा नही है। हम इतना ही कहना चाहते हैं कि उच्चतर मानसिक बोध के क्षणों में चर्मचक्षुओ से परे परमात्म तत्व भी हमारे भाव का विषय हो सकता है। भक्ति रसामृत-सिन्धु मे भक्ति-रस का जो विवेचन किया गया है, उससे हमारे विश्वास को बल मिलता है।

कबीर में भक्ति रस के पाँचों रूप मिल जाते हैं। शुद्धारति (शातरस), प्रीतिरति (दास्य) (प्रीतिरति), सख्यरति (प्रेयान्रस), वात्सल्यरति (वात्सल्यरस), और मधुरारति (मधुररस)—सभी की स्थितियाँ लक्षित की जा सकती है।

शांतिरति दो प्रकार की मानी गई है—शमा और सान्द्रा। शमावस्था मे मन निर्विकार होता है। समचित्तता प्राप्त हो जाती है। सान्द्रा-रति मे ससार से विरक्ति और परमात्मा से अनुरक्ति की व्यंजना होती है। कबीर में दोनों स्थितियाँ मिल जाती हैं। वे मन को निर्विकार बनाकर समचित्तता प्राप्त करने की बात भी कहते हैं और संसार के प्रति विरक्ति और ईश्वर के प्रति अनुरक्ति भी प्रकट करते हैं।

बासुरि गमि न रैणि गम, ना सुपनैं तर गम।
कबीर तहाँ बिलंबिया जहाँ छांहड़ी न घंम।।

कबीर दरसन साध का साईं आवै याद।
लेखे में सोई घड़ी बाकी के दिन बाद।।—संतबानी संग्रह
भयो रे मन पाहुनड़ी दिन चारि।
आजिक काल्हिक मांहि चलैगो लेकिन हाथ सँवारि।।
यहु संसार इसौ रे प्राणी जैसो धूँवरि मेह।
तन धन जोवन अंजुरी को पानी जात न लागै बार।
सँवल के फूलन परि फूल्यो, गरब्यो कहा गँवार।।

प्रीति रति दास्यभाव की रति है। कबीर के काव्य मे इसकी व्यंजना कई स्थलों पर हुई है—

कबीर चेरा संत का दासनि का परदास।
कबीर ऐसे ह्वै रह्या ज्यूँ पाऊँ तलि घास।।

कबीर कूता राम का, मुतिया मेरा नाऊँ।
गले राम की जेवड़ी जित खंचे तित जाऊँ।।

सख्य-रति की व्यंजना भी कबीर की बानियो मे हुई है—

देखो कर्म कबीर का कछु पूरब जनम का लेख।
जाका महल न मुनि लहै, सो दोसन किया अलेख।।

पाणी ही तैं पातला धूँवाँ ही तैं क्षीण।
परना बेगि उतावला सो दोसत कबीरै कीन।।

इसी प्रकार वत्सल-रति का निम्नलिखित उदाहरण देखा जा सकता है—

हरि जननी मैं बालिक तेरा,
काहे न औगुण बकसहु मेरा।

सुत अपराध करै दिन केते,
जननी के चित रहै न तेते ॥

वैष्णव भक्तों ने भगवान् को ही बालक रूप में चित्रित किया है। कबीर स्वयं को बालक रूप में प्रस्तुत करते हैं। इससे वत्सलता की स्थिति मे कोई अन्तर नही पड़ता। भगवत्-तत्व की कल्पना पिता और माता के रूप में सहज भाव से की जा सकती है। सामान्य बोल-चाल में परमपिता परमात्मा कहा ही जाता है। कबीर की दृष्टि मे माता की वत्सलता अधिक महत्वपूर्ण होती है। हरि हमारा स्रष्टा है। माता की वत्सलता का आरोप उसमे किया जा सकता है। कबीर के काव्य मे उपर्युक्त भावों का विस्तार नहीं लक्षित होता है। सबसे अधिक विस्तार प्रियता का मधुरारति को दिया गया है। कबीर स्वयं 'बहुरिया' या प्रेमिका है और उसके आराध्य राम ही प्रिय हैं। कुछ लोग सोचते हैं कि पुरुष होकर कबीर ने अपने को प्रेमिका की भूमिका में रखकर मनोवैज्ञानिक दृष्टि से स्वाभाविक मनःप्रवृत्ति के प्रतिकूल आचरण किया है। वस्तुतः राग की चरमनिष्ठा मे यह भेद मिट जाते हैं, यदि यह भेद बना ही रहा कि मुझे जो शरीर मिला है, वह पुरुष का है इसलिये मेरा रागभाव भी उसी के अनुसार होना चाहिये तो राग-निष्ठा की कमी समझनी चाहिये। वस्तुतः हम सभी उस महाचेतना के चिदंश मात्र हैं। परमात्मा अंशी है। इसलिये अंशी के प्रति अंश का वह गहन राग-भाव होना ही चाहिये जो प्रियतमा का प्रिय के प्रति होता है। संतों के यहाँ तो परमात्मा ही पुरुष है। शेष सभी मे प्रकृतिजन्य विषमता होने के कारण प्रकृतितत्व या नारीतत्व ही प्रधान है। इसलिये कहा गया है—'संत पुरुष औरो सम नारी।' तो, कबीर ने मधुर भाव या कान्ताभाव को सर्वाधिक विस्तार दिया है। उन्होंने प्रेमी की अनन्यता और दृढता को लेकर अनेक साखियाँ रची हैं। वे कहते हैं—

कबीर बादल प्रेम का, हम परि बरष्यां आइ।
अंतरि भीगी आत्मा, हरी भई बन राइ॥

उन्हे अपने प्रिय के प्रति एकान्त राग-निष्ठा है। वे कहते हैं—

नैना अंतरि आव तूं ज्यूं हौं नैन झंपेउ।
ना हौं देखौं और कूं, ना तुझ देखन देऊँ॥

कबीर सुपिनै हरि मिल्या, सूतां लिया जगाइ।
आंखि न मीचौं डरपता, मति सुपिनां ह्वै जाइ॥

यह होने पर भी कबीर यह नही भूलते कि प्रिय ने मधुर-मिलन के लिये जो हिंडोला सजाया है, वह 'दरिया के पार' या भवसागर से परे है—

बरियां पारि हिंडोलना मेल्या कंत मचाइ।
सोई नारि सुलषिणीं नित प्रति झूलण जाइ॥

ऐसे प्रियतम को केवल बाह्य अलंकरणों से नहीं रिझाया जा सकता।

नव सत साजे कामिनी, तन मन रही संजोइ:
पीव के मन भावै नहीं, पटम कीयें क्या होइ।

प्रिय को रिझाने के लिये रागनिष्ठा और अनन्यता का भाव ही माध्यम हो सकता है—

जे सुंदरि साईं भजै, तजै आन की आस।
ताहि न कबहूं परहरै, पलक न छाड़ै पास॥

कबीर को यह भी ज्ञात है कि 'साईं' कितना भी दूर क्यों न हो प्रेम की गहनता उसे निकट ला देती है। यदि आस्था विश्वास और प्रेम हो तो उसे अवश्य अनुभव किया जा सकता है—

सब घट मेरा साइयाँ, सूनी सेज न कोइ।
भाग तिन्हौ का हे सखी, जिहि घट परगट होइ॥

कबीर ने संयोग के क्षणों का चित्रण अधिक नहीं किया है। 'वियोग' के चित्र अधिक हैं। यह वियोग-विस्तार स्वाभाविक है। 'पूर्वराग' की अवस्था में भी वियोग के चित्र आते हैं। वियुक्तावस्था के वर्णन में तो इनका विस्तार होता ही है। 'सम्भोग' के पूर्व 'अयोग' और बाद को 'विप्रयोग' दोनों में ही वियोग की ही स्थिति होती है। शास्त्रीय दृष्टि से वियोग की अनेक स्थितियाँ कबीर मे मिल जाती हैं —

अभिलाषा— बिरहनि ऊभी पंथ सिरि, पंथी बूझै धाइ।
एक सबद कहि पीव का, कबर मिलेंगे आइ॥

फाड़ि पुटोला धज करौं कामलड़ी पहिराऊँ।
जिहि जिहि भेषां हरि मिलं, सोइ सोइ भेष कराऊँ॥

नैनां नीझर लाइया, रहट बहै निस जाम।
पपिहा ज्यू पिव-पिव करै कबर मिलहुगे राम॥

हौं बलियां कब देखौंगी तोहि।
अह निस आतुर दरसन कारनि, ऐसी ब्यापै मोहि।
नैन हमारे तुम्ह कूँ चाहै, रती न मानै हारि॥
बिरह अगिन तन अधिक जरावै ऐसी लेहु बिचारि।

बहुत दिनन के छि बिछुंरे माधो, मन नहीं बांधे धीर।
देह छतां तुम्ह मिलहु कृपाकरि आरतिवंत कबीर।।ग्रन्था, पृ० ।९।
व्याधि—अंखड़ियाँ झाई पड़ी, पंथ निहारि निहारि।
जीभड़ियाँ छाला पड़्या, राम पुकारि पुकारि।।
उन्माद—विरह भुवंगम तन बसै, मंत्र न लागै कोइ।
माम वियोगी ना जिवै, जिवै त बौरा होइ।।
मरण—यह तन जालौं मसि करौं लिखो राम का नाउँ।
लेखनि करूं करक की लिखि लिखि राम पठाउ।।

कबीर ने शास्त्र-स्थिति-संपादन के लिये उपर्युक्त साखियो की रचना नही की है। उनकी उत्कट राग भावना ही इनके मूल मे विद्यमान है। इसी प्रकार 'मधुर रस' के पोषक संचारी भाव भी कबीर में मिल जाते हैं। औत्सुक्य, शका, स्मृति, हर्ष, जडता, निर्वेद, मरण, आदि अनेक संचारियों ने कबीर की मधुरा रति को पुष्ट किया है। 'औत्सुक्य' का एक उदाहरण लीजिये :—

मन परतीत न प्रेम रस ना इस तन में ढंग।
क्या जानूं उस पीवसूं कैसे रहसी रंग।।

अतः हम 'मधुर रस' की स्थिति कबीर मे स्पष्ट रूप से लक्षित कर सकते हैं।

हम कह आये हैं कि गौडीय भक्तो के भक्तिरस को महत्त्व देने के लिये शान्तरस का भी उसी मे अन्तर्भाव कर लिया है। उन्होंने शान्तरस के स्थायी भाव को शुद्धारति या शान्ति-रति मान लिया है। किन्तु शान्तरस को महत्व देनेवाले आचार्य यह जानते थे कि शान्त ही एक ऐसा रस है, जिसका अन्य किसी रस मे अन्तर्भाव नही हो सकता। जिस स्थिति मे न दुःख हो, न सुख हो, न कोई चिन्ता हो, न राग-द्वेष हो, वही शम भाव की स्थिति है।

न यत्र दुःखं न सुखं न चिन्ता न द्वेष-रागो न च काचिदिच्छा।
रसः स शान्तः कथितो मुनीन्द्रैः सर्वेषु भावेषु शमः प्रधानः।।

यह शका की गई है कि जब शान्त के इस स्वरूप का अनुभव मोक्ष अथवा परमात्मस्वरूप-प्राप्ति मे ही संभव है और जब इसमे (विभावादि का विभावन और व्यभिचारी भावो का परिपोषण) सभव ही नही है, तब इसे 'रस' क्यो माना जाय? इसका समाधान करते हुए कहा गया है कि यहाँ दुख-सुख के अभाव से तात्पर्य वैषयिक सुख-दुख के अभाव से है। रस आनद रूप होता है। शमावस्था मे वैषयिक सुख-दुख के अभाव से परम आनन्द की अनुभूति होती है। अन्य रसों मे इसका अन्तर्भाव इसलिये नही हो सकता कि अन्य रसो मे अहं की चेतना का पूर्ण लोप नही होता। यहा तक कि दयावीर एव देवता विषयक रति आदि मे भी अहंकार की मात्रा रह जाती है। 'शमावस्था' मे अहंकार का पूर्ण विसर्जन हो जाता है। पूर्ण

प्रशान्त सागर में अहंता, ममता की उर्मियों का अन्तर्भाव हो सकता है, सागर का अन्तर्भाव उर्मियों में नही हो सकता। इसीलिये आचार्य अभिनव गुप्त ने इतर रसों को शान्त रस की विकृतियों के रूप मे स्वीकार किया है।

कबीर मे 'शान्तरस' की स्थिति स्पष्ट है। इसे प्रारंभ मे ही देख आये हैं। भक्तिरस के अन्तर्गत शान्ति-रति की चर्चा करते हुए हमने उनकी वाणियों से उदाहरण भी दिये हैं। अब प्रश्न यह है कि कबीर मे भक्तिरस प्रधान माना जाय या शान्त रस। हमारा निवेदन है कि कबीर मे शान्त रस ही प्रधान है। भक्तिरस के अन्य भेदों—प्रीति (दास्य), सख्य और वत्सल —के उदाहरण बहुत कम हैं। शान्ति-रस और मधुरा रति के उदाहरण ही अधिक है। इसमे शान्त रति तो शमभाव ही है और उससे शान्तरस को निष्पत्ति वैष्णव आचार्यों भी मानी है। 'मधुरा रति' के वर्णन मे कबीर का साध्य रति-जनित आनन्द नही है वे अपने प्रिय के स्वरूप में अन्तर्लीन हो जाना चाहते हैं। वे अपने संसारी मन को अन्तर्मुख करके परमतत्व मे मिला देना चाहते हैं। उनका लक्ष्य एकता, अद्वैतता, पूर्णता, समचिन्तता या शून्यता की उपलब्धि है। अभेद की अन्तिम निष्ठा तक पहुँचना है। अविचल, शुद्ध और दृढ़-प्रेम माध्यम है। वे कहते हैं—

> पूरा मिल्या तबै सुख उपज्यौ तन की तपनि बुझानी।
> कहै कबीर भव-बंधन छूटै जोतिहि जोति समानी॥—ग्र० पृ० ११।

इसके अतिरिक्त कबीर-काव्य की प्रवृत्ति निर्वेदपरक है। मन का नियमन, संसार की असारता, तृष्णादि वृत्तियों का शमन, अहंकार का विसर्जन, माया का विध्वंसन आदि की निरतर चर्चा से उनका निवृत्तिमूलक स्वर स्पष्ट है। उन्होंने विरह की पीड़ा व्यक्त करनेवाली साखियो से कही अधिक साखियाँ ससार की असारता और विषय-सुख की निस्सारता दिखाने के लिये लिखी है। इससे यह नि:सकोच भाव से कहा जा सकता है कि कबीर के काव्य मे शान्तरस प्रधान है। वैराग्य एव तत्वज्ञान-जनित निर्वेदवृत्ति की व्याप्ति अधिक है। साथ ही समचित्तता की प्राप्ति की बात भी कही गई है।

इस प्रसग को समाप्त करने के पूर्व दो बातें और कहनी हैं। कुछ विद्वानों ने कबीर के काव्य मे अद्‌भुत और वीर दो अन्य रसो का सकेत किया है। 'अद्‌भुत रस' उनकी उलटवासियो मे और वीररस उनके सती और शूर की महिमा निरूपण करने वाली साखियो मे लक्षित किया गया है। हम इन दोनो की ही स्थिति नही मानते। अद्‌भुतरस में विस्मय या आश्चर्य स्थायी होता है। उलटवासियो मे कवि का मन्तव्य (प्रतीकों की व्याख्या से) प्रकट हो जाने पर आश्चर्य का परिहार हो जाता है। साथ ही, इनमे प्रतिपाद्य विषय अध्यात्म ही है। यदि ऐसा मान लिया जायगा तो विरोधाभास अलकार मे भी अद्‌भुत् रस मानना पड़ेगा। उलटवासियों का पाठक यह जानता है कि इसमे कुछ गूढ़ बात कही गई है। इसी प्रकार जहाँ कबीर ने साधक को शूर-वीर के रूप में निरूपित किया है, वहाँ वीर रस की स्थिति नहीं मानी जा सकती। इन

साखियों में कबीर ने कही इन्द्रियों से जूझने की बात कही है और कही मन से और कहीं काम-क्रोध से। यह युद्ध ज्ञान के गयंद पर चढ़कर लड़ा जाता है। यहाँ 'उत्साह' स्थायी नहीं संचारी है। लक्ष्य मन पर विजय नही, हरि की प्राप्ति है। कबीर ने कहा है—

> कबीर मेरे संसा को नहीं, हरि सूं लागा हेत।
> काम क्रोध सूं जूझणां चौड़े माड्या खेत॥

काम और क्रोध को जीतने का उत्साह अन्ततः ईश्वर प्रेम की लक्ष्य सिद्धि का आधार बन गया है। इसलिये यहाँ वीर रस की स्थिति मानना कबीर के काव्य की केन्द्रीय प्रवृत्ति से परिचित न होने का प्रमाण देना है।

हम आरंभ में निवेदन कर आये हैं कि भक्ति रस में आलम्बन का सगुण-साकार होना राग की उच्चतर एवं उत्कट स्थिति में आवश्यक नहीं है। यदि इस सम्बन्ध में किसी को आपत्ति हो तो भी मेरे प्रतिपाद्य में कोई विशेष अन्तर नही पडता, क्योंकि कबीर ने कुछ स्थलों पर वैष्णव सस्कारवश आराध्य के सगुणतत्व को भी स्वीकार कर लिया है। कबीर ग्रन्थावली के ३८२ पद पृष्ठ २१८ मे वे कहते हैं —

> भजि नारदादि सुकादि बंदित चरन पंकज भामिनी।
> भजि भजिसि भूषन पिय मनोहर देव देव सिरोमनी॥

कहना न होगा कि 'नारदादि सुकादि बंदित चरण-पंकज' कहने से भगवान् का सगुण रूप ही सामने आता है। एक स्थान पर तो प्रह्लाद की पूरी कथा उद्धृत करते हुए कबीर ने भगवान् के नरसिंह रूप की चर्चा की है —

> महापुरष देवाधि देव, नरस्यंघ प्रगट कियौ भगतिभेव।
> कहै कबीर कोई लहै न पार, प्रहिलाद उबार्यौ अनेक बार॥

इस प्रकार के स्फुट उदाहरण और भी दिये जा सकते हैं। विस्तार-भय से हम ऐसे उदाहरणों की आवृत्ति नही करना चाहेंगे किन्तु यह अवश्य कहना चाहेंगे कि भक्ति-साधना के क्षेत्र मे निर्गुन और सगुण के भेद के आधार पर भक्त के राग-बोध एव निष्ठा पर सन्देह नही किया जा सकता। कबीर मे यदि निष्ठा की कमी होती तो वे अकेले सारे संसार को चुनौती न दे पाते। ससार के सारे भ्रमजनित भेदो से ऊपर उठ कर मन की सहज राम-निष्ठ स्थिति में पूर्ण परमात्मा का साक्षात्कार तथा उनमे अपने अहं का पूर्ण विसर्जन कबीर की आध्यात्मिक साधना का लक्ष्य है। यही वह स्थिति है जहाँ चित्त सारे विकारो से रहित होकर परम शान्त एवं आनन्दमग्न हो जाता है। कबीर निरन्तर इसी आनन्द मे लीन रहना चाहते हैं। शास्त्रीय शब्दावली मे इसे शान्तरसानुभूति कहना ही अधिक समीचीन है।

कबीर की अटपटी वाणी से घबड़ा कर या उनकी चुनौती भरी फटकारो से डरकर जो पंडितप्रवर उनके निकट जाने से घबराते हैं, उन्हें जानना चाहिये कि सहस्रों जातियों-उपजातियों में विभक्त मानव समुदाय की एकता की स्थापना जिस शक्ति से कबीर ने की थी, उस शक्ति का आधार उनका अखंड मानव प्रेम था। प्रेम का यह पारावार ही उनकी वाणियों में रस-संचार कर सका है। उनकी रसात्मक भूमि तक पहुँचने के लिये अपनी भाव-परिधि का विस्तार करना होगा। सहज और शून्य का यह साधक रसमूर्ति चाहे न हो, रस-शून्य तो नहीं ही है। बौद्धों के शून्यतत्व की मरुभूमि को राग-रस से सिक्त कर देने की क्षमता के एकमात्र अधिकारी के काव्य मे रस न देख पाना अपनी ही दृष्टि-दोष का परिचय देना है।

पं० बनारसीदास चतुर्वेदी

स्वर्गीय पंडित माखनलाल चतुर्वेदी के पत्र

[१]

श्री गोपाल

'कर्मवीर' कार्यालय
जबलपुर १३-७-२०

श्रीमान्, सादर प्रणाम।

आपका कृपा पत्र पहुँचा। वह ता० ९ का लिखा हुआ है। कोई डेढ घटा हुआ तब पहली डाक मे मिला। पत्र को मैं आदर की चीज समझता हूँ, जिसमे 'कर्मवीर' की और मेरी आलोचना है। मैं इस सम्मान को शिर पर धरता हूँ, पर मुझे निवेदन करने ही दीजिए कि जिन लेखों को अग्रेजी मे स्थान मिलता है और हिन्दी मे नही, उसके कारण का निश्चय सहसा इस प्रकार कर डालने मे अन्याय हो जायगा। यह अवस्था अन्त्यज जातियो की स्थिति से कुछ-कुछ मिलती-जुलती है। कृपापूर्वक, यह कठोर निर्णय न दीजिए। इसका उचित उत्तर, कार्यालय की कुली प्रथा का वह भुक्तभोगी दे सकेगा, जो मानसिक रूप से भावो मे, नैतिक रूप से परिस्थितियो मे, और साधारण रीति से सासारिकता मे फँसा हुआ है, अग्रेजी पत्रो के पाठक दूसरे होते हैं हिन्दी के दूसरे। हिन्दी के पाठको मे जो सम्मति देना जानते हो उनमे से कुछ तो परिष्कृत और परमोपयोगी विषयों तक अपना सर ऊँचा ले जा सकते हैं किन्तु जिन्हे अपने दस्तखत भी भले से करने नही आते वे उन्ही बातों की परवाह अधिक करते है, जो उनके आसपास बीतती हैं और जिनसे उनके हृदय का निकटतम सम्बन्ध शीघ्र हो सकता है। हाँ, इस विषय मे सम्पादको को स्वयं ही ऐसे उपयोगी विषयो की ओर पाठको का हृदय आकर्षित करना चाहिए। मेरी क्षीण शक्ति वहन न कर सकी, यह मैं बिना आगे-पीछे सोचे मानता हूँ, इसके लिए अपनी कमजोरी स्वीकार करता हूँ और अत्यन्त चिंतित हूँ, कि इसे शीघ्र हटा सकूँ।

आपके Prinateवाले भाग ने मुझे सुख पहुँचाया। हिन्दी-संसार का मस्तक ऊँचा होगा कि उसने उस बलिवेदी पर जहाँ अभी उसका कोई सुपुत्र आगे न बढ़ा, अपने एक कर्मवीर हृदय को जाने की तैयारी करते देखा और देखा कि उसने आज कल करते-करते अपने कठोर किन्तु प्यारे पथ मे प्रवेश किया। पर इस संवाद ने मुझ जैसे दुनियावी को चिन्ता

भी कम न दी। आप बाहर भीतर एक से हैं, और घर के अमीर भी नही। कुटुम्बियों ने खास कर पत्नी ने और बच्चों ने (यदि हों) यह कठिन संकल्प जिसे वे समझ भी नही सकते माना होगा, ऐसी मेरी धारणा नही। मेरी प्रार्थना है आर्थिक प्रश्न को किसी स्वरूप में सुलझाइयेगा।

कुटुम्ब को निराधार छोड़ जाना मैं पाप समझता हूँ और जगत की छाती पर एक निन्दनीय उदाहरण भी। मैं कर्मक्षेत्र मे आपका पूजक हूँ पर इस मग विरोध के लिए .. यदि हो तो क्षमा किया जाऊँ।

आपका अपना—मा० ला० चतुर्वेदी

[२]

'प्रभा' आफिस

कानपुर, ३८ नवम्बर १९२२

चतुर्वेदीजी महाराज, सप्रेम प्रणाम !

आपका कृपा कार्ड बहुत दिन हुए मुझे मिल गया था। एक दुनियावी प्राणी होने से, मैं अपने मन को इतना केन्द्रित न कर पाया कि आपके उस पवित्र भावो वाले कृपा कार्ड का उत्तर दे पाता। कार्ड मेरे लिये कृपा का भारी बोझा लाया था, काहिल को बिना परिश्रम मिलने वाली जायदाद के समान, मैंने उसे पाया, अति प्रसन्न हुआ किन्तु संकोच भी कम न था। आप मुझे सहस्रो मील उस पार बैठकर देख रहे हैं और अपनी उस समय की भावनाओं को आप ताजा बनाये हुए हैं, जब इन लकीरो का लेखक राजनीति वर्तमान राजनीति, और उसकी उथल-पुथल की कालिमाओं के प्रवाह के तट पर खड़ा आदर्श और उद्देश्य की मीठी बाते किया करता था। उस समय उसे पता न था कि इस प्रवाह में पड़ने पर उस पर कौन-सा रंग चढ़ेगा। अपने हृदय की सज्जित आत्मशक्ति को टटोलने पर, उसे पता चला कि (वह) इतनी नही है जो प्रवाह की कालिमा में उज्ज्वलता ला सके। इसके सिवा प्रलोभन आसपास थे और उन पर ललचानेवाली भावना मेरे बिना जाने हृदय मे पैदा हो चुकी थी। तब हृदय के खाद्य के दो हिस्सेदार हो गए। वह आत्मशक्ति और यह मोहमाया। परिणाम वही हुआ जो होना था। आत्मशक्ति खाद्य के अभाव मे मुरझाने लगी। बस इसी अवस्था में आपका कृपा कार्ड पहुँचा, जिसमे आशीर्वाद की माँग थी। यदि आपके चरणों मे अत्यन्त निकट मे अपना हृदय पचाने मे समर्थ हो सकूँ, तो कदाचित् मेरे, जीवन भावो के दीवाल खोरेपन को आप जान पायें और उस समय कदाचित जो वस्तु आप मुझसे चाहते हैं वह मुझे (ही) दान करने लगें। मेरी पुण्यभूमि मे पाषाण पूजे जाते हैं, 'न बुद्धिभेदं जनयेदज्ञानाकर्म सगिनाम्' वाली भगवान की बात तो मैं भी मानता आया हूँ किन्तु इस दिशा मे आपका अपराध क्षमा करने की न तो मुझे लगन है, न क्षमा करने को जी ही चाहता है। अस्तु, मैं तो आपके चरणों के निकट उपस्थित हूँ, उसे आप आशीर्वाद, वरदान या आप कुछ भी समझ लीजिये। किन्तु

आप मुझे इस राजनीति के पाप-पक से शीघ्र निकलने का यथार्थ आशीर्वाद अवश्य (दें)। भक्त, भूला हुआ या पापों का प्यारा कुछ भी समझ कर कृपा रखिये। 'कर्मवीर' में मतभेद हो जाने से मैं उससे जुदा हो गया। किसी अर्थ साधने के लिये ही नही आया हूँ। जो कुछ प्रयत्न का परिणाम होगा सेवा मे निवेदन करूँगा। आशा है आप और प्रिय हरिभाऊजी दोनो प्रसन्न होंगे।

आपका—माखनलाल

[३]

श्री गोपाल

बानापुरा, सी० पी०
७–१०–२५

श्रीमान् साधुवर चतुर्वेदी जी, प्रणाम !

आपको मैंने पत्रो के जवाब नही दिये यह मेरा अपराध है। मैंने जानबूझ कर ही यह अपराध किया है। बात यह है कि मैं आपसे डरने लगा हूँ। आप एक देहाती तलैया मे स्नान करने मे अधिकाधिक उत्सुक होते जाते हैं। मैं यह नही सोचता कि स्नान का नाम लेकर आप उस तलैया का मजाक उडाना चाहते हैं, यद्यपि यदि आप ऐसा करते तो अनुचित न था किन्तु यह मैं जानता हूँ कि आप सच्चे भाव ही से भैसों के लौटने और जलकीटो के उत्पन्न करने वाली देहाती तलाई मे डुबकी लगावेगे। मेरा ऐसा विश्वास है कि आपको अपनी कृति पर कुछ समय पश्चात् पछताना हो (गा) इसीलिये मैं उसके डुबकी लगाने के मन और प्रयत्न से डर रहा हूँ। मेरा मन मुझसे कहता है कि मेरी ये पक्तियाँ दम्भ से खाली नही हैं किन्तु मुझे अपने हृदय भाव आप पर प्रगट करने के लिये इन शब्दो के सिवा दूसरे पाखण्ड-रहित शब्द ही नही मिले। जो कोठे मे हो सो दुकान पर आवे। मेरा जी आपके प्रयत्नो और साजिशो के बदले उमड़ता है। कभी-कभी मैं इतना बडा आदमी बन जाता हूँ कि उस समय मुझे कुछ नही सूझता। आप कदाचित् इस पर विश्वास करे न करे परन्तु मेरे देवता, मेरे पतन के द्वार की कुजी मुझीसे क्यों मांगते हो? मैंने ससर्ग मे जाकर देखा है, ऐसे लोगो के ससर्ग मे जाकर देखा है जिन्हे मैं पूजने की चीज समझता हूँ पर मेरे छिद्र बढ़े ही। फूटा बर्तन था, चाहे जैसे मीठे कुएँ मे जाता आखिर खाली तो लौटना ही था। आप कुछ नए छेद पाड़ कर, इस गये गुजरे 'टीन पाट' की सुन्दरता बढाना चाहते हैं। मैं तो समय रहते आपसे 'सावधान' ही कहना चाहता हूँ।

आपने किलीमजारो की महान् वस्तु न जाने कहाँ फेंक दी है। वह मूठ का हीरा हो, पर वह रहेगी सदैव मेरे पास। तबतक जब तक मैं स्थायी, और पराधीन जीवन में उसे सम्हाल कर रख सकूं। आप जानते हैं मेरी पत्नी नही है और जेल मे जाने पर बहुमूल्य वस्तुएँ भी छोड़कर

ही जाना होता है। मैं जीवन के इतने वर्षों के पश्चात् भी अभी तक कोई अपना ऐसा मित्र नही बना पाया, जिसके निकट मैं माता के समान खुला हुआ, पिता के समान विश्वस्त भाव पूर्ण और पत्नी के समान जिसके सर्वथा हाथों मे अपने आपको सौंप सकूं। ऐसी अवस्था मे किलीमजारो जैसी आपके जीवन की एकमात्र धरोहर का भी मैं अधिकारी हूँ या नही स्वयं सोच लीजिये।

यह चिट्ठी लेख बनी जा रही अतः बस यही खतम करता हूँ। मैं आपसे एक ही बात चाहता हूँ और यदि आप उत्तर 'हाँ' मे दे तो उस वस्तु का नाम एक पोस्ट कार्ड ही में लिख कर भिजवा दूंगा। वह मेरा डर दूर कर देगी और मुझे आपके पास पहुँचने में आकर्षण पैदा कर देगी।

मैं यह पत्र केवल आपको लिख रहा हूँ। आशा है लडकपन के इन विचारों से आप नाराज न होगे।

आपका—माखनलाल चतुर्वेदी

[४]

कर्मवीर कार्यालय
खडवा, १३-१२-२६

प्यारे चतुर्वेदीजी,

आपके आविष्कार मे सच्चाई है, कहिये तो आपको जगदीशचन्द्र बोस कह दूं? मैं चुनाई की हलचल मे इतना फँस गया कि पत्रों के उत्तर तक न दे सका। यों सुस्त तो सदा का हूँ। एक पत्र तो ऐसा आया था जिससे मैं नाराज हो उठा था, वह था क्षणिक आय वाला। श्री स्वर्गीय राजा लक्ष्मणसिंह जी की जयन्ती मनाने के समय के पत्रो को भी मैंने देर से उलटा-पलटा, इसी से विलम्ब हुआ।

मेरी भी इच्छा कुछ दिनों काम छोड भागने की हो रही है। आपके साथ समय बिताने से सुख मिलेगा। श्रीकृष्णदत्त जी के साथ भी रहने को (मिलेगा) परन्तु मेरे भाग्य अवकाश पाने योग्य नही।

गरीब जीवन की तपस्या की समाराधना मे आपको रत देखकर चित्त और भी आपके पास रहने को चाहता है। क्या आपकी 'जर्नलिज्म' वाली सेवा मे, मैं भी कुछ सेवकाई कर सकता हूँ?

यह अत्यन्त उचित है कि आप भी नरदेव जी शास्त्री का बोझ अपने कंधो पर लेकर सम्पादक के लिये उद्योग करें?

मेरी तुकबन्दियाँ आपकी सेवा मे उपस्थित कर दूँगा। यदि न करूँगा तो, आप, आप अपनी तुलना किसी वणिक से करने लगेंगे। जेल का संग्रह तो मेरे पास है, परन्तु उसमें से

बहुत कुछ छप चुकीं, प्रताप (विशेषांकों समेत) विद्यार्थी (प्रारम्भिक दो, तीन वर्ष), प्रभा, कर्मवीर पुराना : कर्मवीर नया, म धुरी, मनोरमा आदि मे।

सब कूड़ाकरकट मिल जायगा। पुराने चित्रमयजगत्, स्वदेश, राजस्थान केसरी और न जाने कहाँ-कहाँ सारी मनहूसी बिखरी पड़ी होगी। दिनोदिन यह खोज की...हो रही है, ऐसी अवस्था मे मैं स्वय क्या भिजवाऊँ, आज्ञा का कैसे पालन करूँ, बताइये? कभी-कभी सुधि लेते रहिये।

आपका,
माखनलाल

[५]

श्री गोपाल

कर्मवीर कार्यालय
खडवा, २५-१-३०

प्रिय चतुर्वेदीजी, सादर प्रणाम।

कृपा पत्र मिल गया था। गत महीनों से मेरा स्वास्थ्य इतना खराब है कि संभलकर मैं कुछ भी नही कर पाता, अस्तु, विशालभारत के लिये मैं लिखता न होऊँ, सो बात नही। मैं तो यह भी चाहता हूँ कि यदि आप एक दो दिन के लिये जंगलो मे मेरे गाँव पर पधारें तो विशालभारत, तुकबन्दियाँ आदि समस्त विषयों की चर्चा हो। भाई, मुझे नही मालूम आपने कैसे समझ लिया है कि मैं तुकबन्दियो के संग्रह का अधिकार चि० शंकरराव सप्रे को देना चाहता हूँ। मैंने तो ऐसा कभी नही लिखा। भविष्य में भी आप ऐसी कल्पना अपने मन मे न होने दें। मैं तो उन तुकबन्दियो को आपको दे दूंगा। आप चाहे रामानन्द बाबू से चर्चा करें या किसी से। विशालभारत के विषय मे, यह सच है कि तुकबन्दी लिखने मे मैं घबडा गया। मैं भी कला की सरलता का कायल हूं, किन्तु मैं जैसी तुकबन्दियाँ लिखता हूँ वे सचमुच मिडिल स्कूल के बच्चो की समझ मे नही आ सकती। तब मैं तुकबन्दी भेजकर, आपके सकोच पर अधिक बोझ लादने का साहस कैसे करता? मैं जब यह खुद ही मानता हूँ कि मैं कविता लिखने मे श्रेष्ठ नही, तब मैं आलोचक. को जवाब भी क्या दूँ? मेरा पागलपन तो मेरी अपनी ही वस्तु है। वे सच्चे है जो मुझसे पूछते हैं कि मैं अपनी यह सनक औरो पर क्यों लादता हूँ। किन्तु मेरे इस उन्माद को औरों पर लादते हैं मेरे ही अपने सुहृद। तब मैं क्या करूँ। मैं तो अपनी पंक्तियों को अपनी लज्जा की तरह छुपाता रहा हूँ, किन्तु अब मेरी बेशर्मी की उम्र भी २४ वर्ष की हो चुकी है, तब तो मैं घर के कोने से निकल कर हाट का दुकानदार बन गया हूँ, और बना भी दिया गया हूँ तब फिर ग्राहको की...माल न पहुंचने पर, गालियों का हकदार क्यों

न होऊं? आपकी आज्ञा का उल्लंघन इसीलिये करता हूँ कि मेरे लिये, और मेरे कारण हिन्दी साहित्य का समय और शील बरबाद न हो। शेष कुशल।

(पुनश्च) यदि आप यहाँ आ जावें तो आपको समझाकर मैं कुछ तुकबन्दियाँ संग्रह में से रोक लूंगा, न जाने पर वे सब आपके पास भेज देनी होंगी और मैं आप इन विषयों पर चर्चा न कर सकेंगे। आशा है आप कुशल-पूर्वक होंगे। मेरा निवेदन है कि विशालभारत को अवश्य. .ही होना चाहिये। यदि कलकत्ता मैं पहुँच सका तो इस विषय पर आपसे चर्चा करूँगा।

आपका अपना,
मा० ला० चतुर्वेदी

[६]

निजी पत्र

कर्मवीर, खंडवा
फरवरी १९२९ या १९३०

श्री प्रियवर, सादर नमन

आज बहुत दिनो बाद आपकी सेवा मे अपनी एक रचना भिजवा रहा हूँ। यह उसी 'साहित्य देवता' नाम की पुस्तक का एक भाग है जिसकी 'साहित्य देवता' शीर्षक रचना सबसे प्रथम 'विशालभारत' मे छपी थी। उसके पश्चात् इसकी दो लिखावटें और प्रकाशित हुई— एक 'विश्वमित्र' मे, जिसका शीर्षक था 'मुरलीधर' और दूसरा लाहौर की 'भारती' मे जिसका शीर्षक था 'अगुलियो की गिनती की पीढी'। इस तुच्छ लिखावट मे, शायद आपको अपने 'कस्मै देवाय' प्रश्न का भी कही या सर्वत्र उत्तर दिखाई दे जाय। इन लिखावटों का अधिक काम मैं जबलपुर जेल मे कर सका। इधर दो 'पीस' इस रचना के और लिखे रक्खे हैं। एक है 'महत्वाकाक्षा की राख' जिसमे समालोचना करते समय हमने होने वाले. . .और आडम्बर की चर्चा है, दूसरे का शीर्षक है शस्त्र क्रिया जिसमे योग्य समालोचक, किन कष्टों में या किन वेदनाओ मे समालोचना करने के लिये बाध्य होता है, इस विषय की चर्चा है। मैं सुस्त तो हूँ परन्तु किन राजनैतिक कष्टो मे रहता हूं यह तो आप मेरे पास आकर ही जान सकते हैं। आपको यू० पी० और कलकत्ता मे घूमने की लत है, बिहार मे भी घूम लेते हैं क्योकि वह युक्तप्रान्त से कलकत्ता जाने के रास्ते मे पडता है, किन्तु आप कभी मध्यप्रदेश के जंगलो मे आना नही चाहते। तब आप यह कैसे जानें कि मेरी बेबसी क्या है? काम से अब मेरी तबियत भी ऊब उठी है, परन्तु बैठूं कहाँ? यहाँ बैठूं तो लोग मुझे चैन न लेने देगे और बाहर कही छुपकर कुछ दिन बैठने की जगह मेरे लिये दीखती नही। यहाँ तो मुझे जंगलो मे लोग जा पकड़ते हैं।

तीन तुकबन्दियाँ और लिखी रक्खी हैं परन्तु इधर कुछ भी न लिखने लगा हूं और

मैंने मन-ही-मन न जाने कैसे जाना कि मेरे गीत आपको कदाचित् पसन्द नही हैं। मैं आपके पास हृदय खोलकर कह दूँ, मैं स्वयं तो अपने उन गीतो मे ही रहना चाहता हूँ। किन्तु यह आपसे कहने की बात है सबसे कहने की नही। यदि समालोचक बन्धु इस बात पर गाली देंगे तो बस मैं सुनता ही रहूँगा, कुछ कहूँगा नही। किन्तु गालियाँ दिलवाने का पुण्य आपके पल्ले पड़ेगा। इस पत्र में तुक बन्दी भेजने की बात न थी, परन्तु चि० जमनाप्रसाद ने कहा कि एक तुकबन्दी जरूर रख दूँ, उसे रखने के कारण ही विलम्ब हो रहा है।

इधर साहित्य मे मुझे एक व्यक्ति खूब भा रहा है, वह है अखतर हुसैन रामपुरी या रायपुरी। वे अपनी कलम पर अपना हृदय लेकर उतरते हैं और युग की माग के खिलाफ उसे बेतौलना नही होने देते। साथ ही वे दूर तक देखते हे। मैं उनका पता नही जानता, उन्हे मेरा आदर पहुँचा दीजिये। हाँ, कृपया श्यामसुन्दर जी की पोथी भिजवा दीजिये, कुछ लिख दूंगा उन्हें लिखने के लिये जरा तग करते रहिये। आखिर प्रिस क्रोपाटकिन पर आपने लिखना प्रारम्भ कर दिया। अच्छा हुआ। श्री बृजमोहन जी से कहिये मैंने उनके 'कलाकार राय चौधरी' को दो बार पढ़ा। इधर-उधर की अगडम-बगडम लिखने के बजाय उन्हे ऐसी बातें लिखने दीजिये। श्री वर्मा जी की हिमायत यदि उस लेख के साथ और होती तो वह लेख निहाल हो जाता। एक बार श्री मुजफ्फर हुसैन शमीम की एक कविता विशालभारत मे छपी थी। शीर्षक कुछ था 'कुछ याद सी तेरी आती है' या ऐसा ही कुछ, मुझे बहुत पसन्द आई थी। सोचता था और भी ऐसी कविताएँ आप उनसे लिखवा लेंगे, परन्तु आप बहुधन्धी आदमी, शायद भूल गये। आप उनसे कुछ लीजिये। सागिर से भी कुछ लीजिये। इन दोनो कवियों से कहिये कि हिन्दी-ससार मे ये लोग अपनी चीज़ की तरह अपनाये जायेंगे।

मेरी कविता पुस्तक क्या है? मेरी तुकबन्दियो मे ऐसी शायद थोडी ही हैं जिनकी प्रति आपके पास न हो। हाँ, मैं अब अपनी 'दाता' शीर्षक रचना आपके पास भिजवाना चाहता हूँ। महीनों हुए शायद धन्यकुमार जी ने उसकी माँग की थी परन्तु उसकी कापी कौन करे? आप तो 'कस्मैदेवाय' लिख देते है, किन्तु कस्मैदेवाय मेरी तुक बन्दियाँ और लिखावटो की जब कापी कर दे? खैर, यदि कापी हो गई तो मैं 'दाता' भिजवा दूंगा। एक गीत भिजवा रहा हूँ जिसका शीर्षक है 'मृत्यु'। दूसरी तुकबन्दी भी शायद भेज रहा हू जिसका शीर्षक होगा—'नजर लग जायगी' या कुछ ऐसा ही। इन सब को एक ही सख्या मे न छाप दीजिये। जो पसन्द न आये उसको फाड फेंकिये। किन्तु 'नीलाम' को फाडकर न फेंकिये, उसे लौटा दीजिए। पत्र लम्बा हो गया इसके लिए क्षमा कीजिये। आप पर होने वाले आक्रमणो मे आपको जिस तरह शान्त खडा देखा, सुख पाया। हाँ, यह तो लिखिये कि श्री जोशी बन्धुओं का नाम मासिक विश्वमित्र पर से क्यों गायब हो गया? क्या बात हो गई? क्या श्रीराम जी इधर आपसे रूठ गये हैं, विशालभारत मे लिखते क्यो नही? उनसे कहिये कि वे शिकार ही पर लिखते रहे। लेखक जीवन के कुभीपाक मे न आवे, शिकारी ही बने रहें। जब वे और कुछ लिखते हैं तब ऐसा मालूम होता मानो खीर खाते उसमे कही सुपारी का बड़ा-

सा टुकड़ा केकड की तरह मुंह मे खडबडा उठा हो। यदि वे मेरे इस कथन से नाराज हों तो उनकी गालियाँ मेरे पास भिजवा दीजियेगा।

इधर हिन्दी मे २-३ तरुण मुझसे कविता लिखने आ रहे हैं। मुझे उनमे 'दिनकर' खूब भाते हैं। उनकी कलम का खिलवाड़ हृदय पर तरंगित भी होता है, इतिहास में छेड़छाड़ भी करता है और गरीबों के हृदय के आंगन मे खेलने भी लगता है। ये तरुण तपस्वी इतना ही खयाल रखें कि कविता मे इन्हे गद्य की याद न आ जाय। इन्हें अपने को अपनी वस्तु मे और वस्तु को अपनी वाणी में छुपा कर रखने ही की आदत रहे। 'छन्द' के मानी ही यह हों। हां इतना न छुपा दें कि लोगो की चाह की जीभ उनकी वस्तु के पास तक पहुंच भी न पावे। वे ऐसा छुपाते भी नही है। इनकी हिमालय और बुद्ध वाली रचना पर मेरी ओर से बधाई दीजियेगा। लोग न जाने क्यों हरिऔध जी के रसकलस मे शस्त्रक्रिया करके मिठास ढूंढते हैं. . . ब्रजभाषा मे लिखा, परन्तु कस्मैदेवाय की-सी उसमे कोई बात नही है। किन्तु शायद बूढ़े हरिऔध जी पर कुछ लिखना मेरे लिये उचित नही, आप ही ने शायद मुझे मि० शास्त्री की यह बात बताई थी कि वे उम्र के आदर करने की बात कहते हैं। कृपया लिखिये, श्रीयुत हरिशंकरजी शर्मा आजकल क्या कर रहे हैं? परन्तु आप इतने फालतू तो हैं नही। मेरी किन-किन बातो का जवाब देंगे?

अच्छा अब पत्र बन्द करता हूँ।

आपका अपना,
मा० ला० चतुर्वेदी

[७]

सेन्ट्रल जेल
जबलपुर, १९३०

प्रिय भाई चतुर्वेदीजी,

आप उस अंग्रेज कवि की बात की दाद देंगे कि केवल लोहे के सीखचे, ऊँची काली दीवारे, दरवाजो पर लगे हुए ताले, तंग कोठरियां और चौबीस घंटे श्वास की तरह साथ रहने वाले पहरे किसी भी स्थान को जेल नही बना देते। यदि ऐसा हो, तब तो फिर हम लोग, इस जेल की अपेक्षा बाहर भी जेल ही मे थे।

आपकी शिकायत की ओर मै ध्यान न दे सका, मैं जानता हूं आप चाहते थे कि मैं शान्ति-निकेतन की ओर जाता, किन्तु मैं आपके शब्दो मे, बढता गया आनन्द भवन की ओर। मैंने शान्ति निकेतन नही देखा, किन्तु मुझे अपना अपराध स्वीकृत करना चाहिए कि मैं शान्ति निकेतन के योग्य नही हूँ। मैं तो यह भी मानता हूं कि जब तक कवीन्द्र की रचनाओ पर सामयिकता की मुहर लगी हुई है, तब तक वे उस वास्तविक शान्तिनिकेतन की वस्तु नही हो सकतीं, जिसकी ठण्डी लहरो मे शायद आप ज्वार का अभाव मानते हों। मैं तो कवीन्द्र की रचनाओ मे ज्वार का अभाव नही देखता। हाँ, मैं यह अवश्य मानता हूँ कि वह ज्वार मस्तिष्क से उतर कर या

हृदय से चढ़ कर अंगुलियों तक ही आता है, वह भुजदण्डों पर नहीं आता। किन्तु मैंने सुना है कि कवीन्द्र अपने नाटकों के स्वयं ही अभिनेता भी होते हैं। क्या यह सच नहीं है? यदि सच है और भावों के उस विधाता की अनाट्य शाला में आप प्रकटीकरण समर्थनीय और सत्य के अभिन्न निकट माना जाता है, तो फिर अन्य गरीब भावों के पुजारियों का अपने रूप में, मानव परिमितताओं की विनोदी नाट्यशाला छोड़कर, विश्वनियन्ता की नाट्य शाला में, अपना अभिनय ईमानदारी से पूरा करने लगना गुनाह कैसे है?

मुझसे आपने यह कितनी बार नहीं कहा कि मैं सामयिकता से ऊपर उठकर, स्थायी साहित्य लिखना स्वीकृत करूं, जो आगे भी जिन्दा रहे। यह बात मुझसे मेरे अपने आसपास के निजी मित्रों ने भी खूब कही है। मुझ गरीब से ऐसी बड़ी आशाएँ तो, मेरे साथ बिना जाने किया गया विनोद मात्र थी। मैं यह मान लेता हूँ कि साहित्य यदि भारत के छोटी उम्र के बच्चों की तरह मरे, तो यह सचमुच बुरी बात है। किन्तु अमर साहित्य के निर्माण मे समायिकता की जरूरत नहीं है, यह नहीं मानता।

आपका
माखनलाल चतुर्वेदी

[८]

खडवा, सी० पी०
४-७-३१

भाई बनारसीदासजी, सादर प्रणाम !

आपका एक कार्ड कुछ पक्तियाँ लिखे हुए, कुछ दिन पहले मुझे मिला था। बहुत कठोर समाचार से वह भरा था। आपका अपनी मातृ देवता को खो देना और हृदय देवता को भी खो बैठना, आपको विधि की ऐसी कड़वी मार है कि आप जैसे धैर्यशील और सात्विक जीवन के लोग ही उसे सह कर हंस सकते हैं और लोग कदापि नहीं। उक्त दैवी प्रहारो मे एक का मैं भुक्त भोगी हूँ और मैं जानता हूँ जिस समय आपके हृदय की मधुर स्मृति जग उठती होगी, उस समय वह हृदय तोडकर, न जाने भूतकाल की किस-किस दुनिया मे ले जाती होंगी और भावी की आशाओ के महलों को असमय खण्डहर बन जाने पर, उनके भग्नावशेषो पर बैठकर, आपका मौन रोदन न जाने क्या-क्या गाता होगा? यहाँ के कर्त्तव्य-कुम्भीपाक से कुछ दिन छूट कर यदि मैं उन आंसुओ की घडियो मे आपके साथ बैठ सकता तो . . .पर मैं स्थिति का गुलाम राजनैतिक तर्क से विवश होकर ही क्यों न हो विचरनेवाला आपकी स्मृतियों की मधुर दुनिया से, खोये हुए को ढूंढनेवाले जीवन के पास जब पहुंच सकू तब न। आपके कार्ड ने कितनी बार प्रायः तीन बार मुझे नहीं रुला दिया? मेरे भी हृदय था, हृदयेश्वरी भी थी और थी आशाएँ, दीपक सी स्पष्ट सुवर्ण सी चमकीली और हा आंसुओ सी मैली पर तरल, चल पर द्रवित।

आपके इन सुखों ने मोजी हुई साधना और उग्र प्राप्त अनुभव पर अपने चरण चिह्न छोड़ दिये हैं। आपके कष्टों का क्या कहना, पर भाई, शाब्दिक उठाईगीर आपके हृदय को धैर्य कैसे दे, जिसने उपकारी के प्रति भी अपकार सोचे हों, त्याग में भी तृष्णा जिससे छूट न पाई हो, जिसका रुदन उसके पतन में हो और जिसकी वीरता उसकी जबान मे हो और जो कीर्ति के मदिरा पान के लिये अखबारों के कालमों पर मक्खियों की तरह भिनक सकता हो उस मुझ जैसे नगण्य के परस न स्नेह का अमृत हो सकता है न लय का जादू जो आपके हृदय-तल को छू कर आपके हृदय को सेहत दे सके। मैं जानता हूँ आत्म-निन्दा प्रशंसा ही की तरह नैतिक दुनिया मे दण्डनीय है। किन्तु मेरी कमी, मेरे जीवन का कड़वा साथ है, आत्म निन्दा नही। तिस पर भी आपसे यह तो कह ही सकता हूँ कि भाई जब मौन होकर आंसू बहाना, तब शोक न करने के लिये, आपसे मनुहार करनेवाले एक नगण्य प्यारे की भी कल्पना कर लिया करना। और माँ के लिये क्या कहूँ माँ, तो आपने भी खोई, आपके बच्चों ने भी। इन दोनों मातृहीनों में किसे समझाया जाय? माँ पर तो पीछे कभी कुछ लिखूं तो लिखूं। मेरे लिये तो माँ, मेरे जीवन का काव्य है, मेरी उदासीनता का पुरुषार्थ, मेरी बेचैनी की सेहत, मेरी रूखी रोटियों का मिठास, फटी चिंथियों की शोभा और टूटी झोपडी पर चढ़ी हुई कल्पवृक्ष की वल्लरी। जब भगवान दूर दीखने लगते हैं तब मैं माँ की ओर देख लेता हूँ। जब मुझ पर विधाता रूठता है, तब मैं एक बार मां की गोद मे सर रख लेने की इच्छा करता हूँ और जब मुझे अपने सुखी दिनों पर सन्तोष का मुकुट चढ़ाना होता है तब मैं माँ को चिढ़ाकर उसके मुँह की दो चार गालियाँ खा लिया करता हूँ। मैं अपने अभाव से आपके अभाव की माप करता हूँ तब जी घबड़ा जाता है। क्या खो बैठे आप?

गणेश (स्वर्गीय गणेशशंकर विद्यार्थी) क्या खो गये, मेरे जीवन का तो सब कुछ खो गया। विश्व मे चार प्राणियों को चिढ़ाया करता था, एक मेरी माँ, दूसरे गणेश और तीसरे आदमी का नाम आपको बताना नही चाहता, चौथे प्राणी में मेरी स्त्री थी। खैर—

डाक आ गई मेरा प्रणाम लीजिये,
छोटे भाई को मेरा शुभाशीष पहुँचाइये,
और छोटे बच्चे-बच्चियों को प्यार।

आपका,
माखनलाल चतुर्वेदी

[६]

'कर्मवीर' कार्यालय,
खंडवा, १२-१२-३१

श्री प्रियवर, सादर प्रणाम

जेल मे हमे गद्दार समझकर अलग-अलग रखा गया था। मेरे सब साथियों को भी। जब-जब साथी चले गए, तब लगातार गिरफ्तारियो का ताँता लग गया। मेरा निश्चय था कि

मैं जेल में भी खद्दर ही पहनूंगा। अतः जेल में मुझे अलग ही रखा गया, अपने साथियों के पास न जाने दिया गया। इस खुली बैरक में मई की गर्मी और फिर रोज सारे कपड़े छीन कर 'दिगम्बर बसन' कर दिए जाने की धमकियाँ। उन्हीं दिनो, रात को जेल की दीवार से दीखने वाले एक शाम के झाड़ की शाखा पर कोयल बोली। शुक्ला सप्तमी का चन्द्र डूब गया था। कोयल की इस कूक को सुनता मैं ४ बजे प्रातः तक बैठा रहा। उसी प्रातः यह तुकबदी लिखी गई।[1] इस लम्बी कैफियत को आप अपनी ही जान की जेब में रखें। इसकी दुकान न कीजिये।

आपका अपना,
मा० लाल चतुर्वेदी

हाँ, यह कह दूं कि खद्दर की लडाई मे सफलता मिल गई थी। खद्दर मुझे भी मिला और साथ ही प्रान्त के दूसरे उन A & B Class के कैदियो को भी, जिन्होने खद्दर का अपना व्रत बताया।

[१०]

सेंट्रल जेल जबलपुर से लिखा गया चतुर्वेदीजी का एक अधूरा पत्र—

यह विषय लिखने के लिये तो और भी अधिक परन्तु इस पत्र के बढाने से, दूसरी सब चिट्ठ्या रह जाएँगी। कैदी की परिमितताओं का स्मरण रखना जरूरी है।

'विशालभारत' मेरे नाम पर, यदि आप कर सके तो द्वारा सेंट्रल जेल, जबलपुर, इस पते पर मेरे नाम पर पोलिटिकल प्रिजनर लिखकर भिजवाने की कृपा करे। इसी तरह मेरे नाम पर 'माडर्न रिव्यू' भी भिजवाने का प्रबन्ध कर दें। 'माडर्न रिव्यू' का मूल्य खण्डवा से भिजवाने के लिये श्री लौंधेजी से कह दिया है। इसी तरह से पुस्तकें आप मेरे नाम पर भिजवा दें। मेरे पास जो कुछ लिखा आपके पास पहुँचे, उसमे यदि वह कोई लेख या आलोचना हो तो उसके नीचे सिर्फ 'कैदी' लिख दे, गद्य की कोई रचना या कहानी हो तो उसमे बनवासी लिखें, और यदि तुकबन्दी रहे तो उसमे एक भारतीयआत्मा लिख दें। जेल मे, काम करने के कारण लिखने तो कहाँ पाऊँगा परन्तु यदि समय, सूझ और वक्त पा सका तो कर्मवीर, प्रताप, विशाल-भारत और. . .के पास पहुँचा दूंगा। मैं यहाँ प्रसन्न हूँ। मेरे साथी बाबू गोविन्ददासजी, पं० द्वारकाप्रसादजी मिश्र, श्रीयुत रविशकरजी शुक्ल आदि सज्जन भी प्रसन्न हैं।

इस वर्ष मैं बीमार अधिक रहा था, अतः मेरा वजन ११० पौण्ड से घटकर ९२ पौण्ड तक हो गया था। पिछले डेढ़ महीने मे वह ९६ पौण्ड तक हो पाया है, बस इसके बाद जेलखाने में आ गया।

१. 'कैदी और कोकिला' चतुर्वेदीजी की सुप्रसिद्ध कविता।

आप जानते हैं हम लोगों ने कौन-कौन से अपराध किये हैं? १—कानून तोड़ने के लिये षड्यन्त्र, २—राजद्रोह, ३—राज विद्रोह का कानून भंग, ४—नमक का कानून भंग और ५—जंगल का कानून भंग करने का षड्यन्त्र।

आशा है आप कुशलपूर्वक होंगे। सामाचार पत्रों पर जो सरकारी सेन्सर आया है, आशा है आपतथा अन्य सज्जन जो हिन्दी के पत्रकारो के हित-रक्षा मे यत्नशील हैं, अवश्य हिन्दी-पत्रकार जगत् को एक खास गतिविधि के लिए तैयार कर लेंगे।

यह न लिखें कि ये बातें आपने मेरे पत्र से पाई।

[११]

उज्जैन
दिनाक २८-१-३२

श्रीमान् भाई चतुर्वेदीजी,

...आपका शान्तिनिकेतन पहुँचने का न्यौता यहाँ मिला। मैं स्वयं उस स्थान को देखने के लिये बहुत उत्सुक हूँ और इधर आनन्दभवन की अपेक्षा शान्ति निकेतन का वातावरण मुझे अधिक खीचने लगा है। किन्तु चारो तरफ ज्वाला जल रही है। आज एक जेल जा रहा है कल दूसरा। ऐसे समय जेल से बाहर रहना मुझे उस तरुणाई का अपमान करना प्रतीत होता है जिसे जेल मे भिजवाने का शासन खेल खेल रहा है। तो भी मन इधर-उधर खिंच रहा है, यदि आ सका तो खबर दूंगा। यों मेरे मन की विजय हुई तो मध्यप्रदेश की कोई जेल ही मेरे लिये शान्तिनिकेतन बनेगी।

अभी उस दिन कोई १०-१२ दिन पहले सतपुड़ा के एक ग्वालिन डोह नामक झरने पर गया था। दोनो तरफ पर्वतमालाएँ थी। बीच मे राजगति से झरने महाशय जा रहे थे। उस समय जब मैं एक कऊ के झाड के नीचे से झुक कर निकल रहा था, एक तरुण ने मेरी आँखो को थोड़ी देर के लिए प्रकृति के उस आनन्द से गैरहाजिर देख लिया। उसने पूछा, "तुम इस समय क्या सोच रहे हो दादा?" मैंने कहा, "मैं चाहता हूँ मेरे साथ इस समय बनारसीदास जी, होते।" इसके पश्चात् और चर्चाएँ हुई जिनको यहाँ देकर उन चर्चाओ के आधारों को बाजार मे नही रखना चाहता।

जबलपुर जेल से भी कुछ लिख कर लाया हूँ और फिर से भी जाने की तैयारी हो रही है। क्या आप लिखेगे कि संग्रह के कार्य में आप क्या कर रहे हैं? जबलपुर जेल से जो रचना आपके पास 'तरुण कलिका' शीर्षक भेजी थी, मैंने झासी मे पढ़ दी थी। यदि आप कहे तो वह पूरी रचना आपके पास भिजवा दूं?

क्या आपने तय किया है कि आप अपत्नीक रहें? बड़ी इच्छा थी कि आप झासी में

मिल जाएँगे। किन्तु आप वहां नहीं आये। मेरे कलकत्ता आने में तो बड़े पहाड़ आड़े हैं, तिस पर भी यदि भाग आ सका तो देखूंगा, किसी समय किसी तरह।

आशा है आप कुशल से हैं। कृपया इन दो पतों पर विशालभारत भिजवाने की व्यवस्था कर दीजिये। मुझे जेल में पढ़ने को मिलता रहेगा।

१—संचालक सेवा सदन विद्या मन्दिर, हिरनखेड़ा, व्हाया इटारसी, जी० आय० पी०। २—ए० जी० खेवडे द्वारा श्री देओसरक, हाइकोर्ट वकील, धतौली, नागपुर।

एक काम मेरा आपसे और है। मैं चाहता हूँ 'माडर्नरिव्यू' की बंधी हुई या खुली हुई पुरानी जिल्दें मुझे मिलें, जेल में। मैं उन्हे एक-एक कर पढना चाहता हूँ किन्तु मैं उन्हें खीदना चाहता हूँ यदि बाबू रामानन्द चटर्जी मान जायँ तो वे जिल्दें आप मेरे पास उक्त हिरनखेड़ा के पते पर चि० रामदयाल के नाम पर भिजवा दें। पैसा मैं किश्तों मे चुका सकूँगा। तीन या चार किश्तो मे यदि यह काम आप से हो सके तो आप अवश्य कर दें। मैं इस काम मे १०० रुपये तक खर्च कर सकूगा। अधिक लगेंगे तो भी खर्च करूँगा। पत्रोत्तर आने पर मैं रु० २५ पच्चीस भिजवा दूगा। मुझे यदि पत्र लिखने का आप अवकाश पावें तो पत्र पर रामदयाल का पता लिखकर हिरनखेड़ा के उक्त पते पर पत्र डलवा दें। मेरा पता कही भी न लिखे। यदि मैं बाहर रहा तो वह पत्र मुझे मिल जाएगा। अभी तो मिल ही जाएगा। भीतर रहा तब भी संबाद पा लूंगा।

आपका अपना
मा० ला० चतुर्वेदी

[१२]

'कर्मवीर' कार्यालय
जबलपुर

भाई चतुर्वेदी जी,

आप प्रवास करते हैं, महज्जनो से मिलते हैं, यह आपको शोभनेवाली बात है। पर कहाँ आप मेरे पापी जीवन का स्मरण करते हैं, यह मेरे उस जीवन के लिए जिसमें अपनी बातो पर लाभ पडने के पापी भाव काफी तादाद में अभी भी मौजूद हैं, बुरी बात है।

मैं बेहूदा पथ का एक निर्बल पथिक हूँ। यदि यों कठिन परीक्षाओ में डाला जाऊँगा तो बहुत सम्भव है गिर जाऊँ। हाँ जानता हूँ, मेरे आप और श्री गणेश जैसे हृदय अपनाने और कुछ महान् हृदय कृपा करनेवाले हैं, पर मैं जानता हूँ इस सब कुछ का मैं अधिकारी नही हूँ।

मैं यह जानकर हर्षित हूँ कि पूज्य एंड्रूज़ महोदय श्री कविरत्न सत्यनारायण जी के तैलचित्र का उद्घाटन करेंगे। और मैं यह भी जानत हूँ कि एंड्रूज साहब यह सब कुछ आपकी प्रेरणा से करने के लिये तैयार हुए होंगे।

मैंने जो लकीरें कभी कभी लिख दीं उन पर आप फिदा हैं, क्योंकि कदाचित् आप नहीं चाहते कि कोई हृदय ऊँचा उठकर इन लकीरों को नगण्य कर दिखाये। यह आप का स्वार्थ है।

मैं हिन्दी-जगत् के ऐसे जीवों का विरोधी हूँ। महाराज, इन लकीरें को तुच्छतम सिद्ध करते रहनेवाले भी हैं, प्रसिद्धि चाहिए, नहीं और सामयिकता का उन्हें अवसर नहीं मिला। इसी से आपका यह सब कुछ "अव्यापारेषु व्यापारम्" चल रहा है।

मैं आपसे एक बिनती करना चाहता हूँ, आप उसे मान लें। यदि मान लें तो लिख भेजूंगा।

मैंने जब जब जो लकीरें लिखी, उनका अधिकार श्रीयुत पं० शिवनारायण जी मिश्र को दे दिया है, उन्हें आप जो चाहें करें, और इस सम्बन्ध में उन्हीं से पत्र-व्यवहार करें।

मेरे भाग्य में अभी शान्तिनिकेतन पुण्यस्थल के दर्शन नहीं दीखते। जिस दिन हो, भगवान् की बड़ी कृपा का वह दिन होगा। शेष बातें फिर कभी लिखूंगा, यह पत्र अधूरा लिखकर ही बाहर चला गया था। आज इसे भिजवाता हूँ।

लेखक
मा० ल० चतुर्वेदी

[१३]

खंडवा
१७ फरवरी १९३३

प्रिय चतुर्वेदीजी,

चिट्ठियाँ मिल गयी। यह फारवसगंज क्या बला है? आखिर आप मुझे हकीम बनाये बिना न मानेंगें। श्रद्धामयी आर्यभावना मे यह तो होगा ही कि मुझ जैसे सड़क के पत्थर को पास रखकर उस पर सिन्दूर चढ़ाया जाय और फिर उसी पर यह बिना सोचे कि यह पत्थर है शिर झुकाना प्रारम्भ कर दिया जाए और घटा बजा-बजा कर एक पथरे के आसपास भक्तजन बटोरे जायें।

गाय का दूध अधिक पीने के कारण मेरा स्वभाव पूजा चाहनेवाले शिववाहन... स्वाभाविक ही है, किन्तु आप में यह प्रवगपा क्या ओवलटाइन ने ला दिया?

कार्ड मिला लिखूंगा। शेष दूसरे पत्र में। द्विवेदीजीवाले लेख का उल्लेख 'विशाल भारत' में दीजिये। उस पर द्विवेदीजी का बड़ा करुणापूरित पत्र आया है। मेरी तो आँखें भर आईं।

आपका अपना
मा० ल० च०

[१४]

श्री गोपाल

रंगमहल, इन्दौर
२६-३-३३

आपके कृपा पत्र मुझ पर खूब उधार हो गये हैं। मोटर की कृपा से कमर मे चोट आ गई थी। उसी का इलाज कराने यहाँ आया हू। मैं रेल मे चलता हूँ, मेरी बेबसी कार मे चलती है परन्तु मेरा शारीरिक स्वास्थ्य मजे मे छकडा गाडी मे चलना चाहता है।

लीजिये, अब विशालभारत की सख्या मे हाजिर रखिये। मैं अपना कूडा करकट भिजवाता हूँ। सुनता हूँ मेरी 'जेल का साथी' कहानी पर 'सरस्वती' मे कोई महाशय बिगड़ पडे हैं। मैंने 'सरस्वती' नही देखी है। सयोग देखिये। मुझसे सरस्वती मे लिखने के लिए तकाजे किए गए। आप जानते हैं अपनी चीज छपवाने के लिए उत्सुक हूँ, सो इधर मेरी चुप्पी हुई, उधर सरस्वती मे कृपा हो गई। सरस्वती के दोष-दिग्दर्शन मे यदि कुछ नसीहत हो गई होगी तो सीखूंगा और कृतज्ञ हूँगा।

हाँ, श्यामसुन्दर जी की पुस्तक पर कुछ लिख दूंगा। आपकी यह इच्छा है कि लोगो की . . चाहे भले बिगडे, पर आपके मित्र का नाम वहाँ आ जाना चाहिए। न जाने श्यामसुन्दरजी जैसे लोग आप पर विश्वास ही क्यो करते हैं?

जी मिलने को चाहता है। निपटकर कलकत्ता आऊँ या आप इधर आवे। जब बद्रीप्रसाद जी मिले तब उनसे वन्दे कह दीजिएगा और पत्र न देने पर मेरी ओर से क्षमा प्रार्थना कर दीजिएगा। उत्तर इदौर ही के पते पर दीजियेगा।

आपका अपना,
मा० ला० चतुर्वेदी

[१५]

श्री गोपाल

'कर्मवीर'
खडवा ११-१-३५

श्री प्रियवर, सादर नमन

मैं अपना साहित्यिक कूडा करकट लेकर कुछ दिनों के लिये कलकत्ता आ रहा हूँ। जिससे आपको न वैराग्य लेने की जरूरत पडे, न गुरु करने की। भाई श्यामसुन्दरजी की पुस्तक पर भी या तो वही आकर लिखूगा या यही से भेज दूंगा। ४२वी वर्ष गाँठ पर मैं आपको स्नेह-पूर्वक बधाई देता हूँ। गालियाँ आपके सरल जीवन का पुरस्कार हैं, उन्हे आप ग्रहण करें।

४२ वर्ष में बुढ़ौती की ओर मुझ पर आप न रूठते शोमते हैं न बोलना या लिखना बन्द करते। कृपया लिखिये कब आऊँ? वहाँ जाड़ा तो अधिक नहीं पड़ता? मैं १५ दिनों पश्चात् कभी भी चल सकूंगा। आशा है मेरा यह पत्र पाकर आपके क्रोध का कुछ पारा कम हो जायेगा। बाकी मैं वहाँ आकर अनुनय-विनय कर लूंगा। हाँ, वर्माजी से कहिये कि कलकत्ता आकर भी मैं विशाल भारत आफिस में न आऊंगा, यदि उनका कोई पत्र न आया, श्री धन्यकुमार जी से मेरा वन्दे कहिये।

मेरी यह खबर आप श्री विष्णुदत्त जी को भी भिजवा दें तथा निवासी सहृदय श्री बद्री प्रसाद जी को भी। तारीख तथा समय निश्चित करना आप पर रहा।

आपका अपना,
मा० ला० चतुर्वेदी

[१६]

श्री गोपाल

कर्मवीर, खडवा
२९-६-३५

श्रीमान्

कृपा-पत्र मिला, या यों कहूँ कि मिले। एक बार आपने लिखा था कि मैं कविताओं का संग्रह आपके पास नही भेजना चाहता। अब आपने लिखा है कि मैं श्री श्यामसुन्दरजी की कविता पर कुछ नही लिखना चाहता। यदि आप भी राजनीति के भारवाहकों मे एक होते और 'थक्यो बोझ ढोबो करै शीत घाम समझे' प्राणी की सी आपकी हालत होती तो कदाचित् यह वाक्य न लिखते। मुझ मे तो अपनी योग्यता, दूरबीन से देखने पर भी कही न दीखी फिर वह कौन-सा भाग्य है, जिससे मैं श्यामसुन्दरजी की कविता पर 'नाचीज' कहकर मनहु उत्तर भारत के एक तरुण और विद्वान मित्र ने मुझसे इजाजत चाही कि वे अपना सुन्दर कविता संग्रह मेरे पर अर्पित करें।

मैं अपने मे वह योग्यता ही नही ढूढ़ पाया कि उनको स्वीकृति भेज सकता। मेरी कठिनाई यह है, मैं कोई बात लिखूं, तभी श्यामजी की पुस्तक के सफेद पत्रों पर कालिमा पोतूं। जब तक कहने की कोई बात नही सूझती, तब तक मैं अपने ही सामने परवश रहता हूँ, किन्तु किसी मित्र को यह बात इसलिए भी नही लिखता, क्योकि इसमे वे आडम्बर मानेंगे। किन्तु जब मेरी बेबसी ही मेरी उपेक्षा मानी जाती है, तब मैं यह कैफियत लिखने को बाध्य हूँ। आप श्यामसुन्दरजी से मेरी ओर से निवेदन कर दें कि वे मुझे गलत न समझे मैं उनकी कृतियों मे अपने को ढूंढा करता हूँ।

'हाँ, आप 'मुझको कहते हैं माता' शीर्षक तुकबन्दी छाप लें। मेरे पास जो प्रति आपने

भेजी थी, वह तो नही मिलती। मेरी कविताओं पर आपका एकछत्र राज्य है, वह तो जो चाहें करें। इस माता वाली कविता के छापने में, आप दो-दो पंक्तियो का क्रम रखें। हाँ जहाँ एक ही विचार कहीं-कहीं १२ या १८ पंक्तियों में समाप्त हुआ है वहाँ एक पैराग्राफ अलग रख दें।

यदि उसकी प्रति न मिली हो तो फिर से कापी कराके भिजवाता हूँ। इस तरह का आज्ञापालन आप चि० हरिप्रसाद के पते पर भेजा करें। अब कविता संग्रह के सम्बन्ध में एक निवेदन है। उसमे 'दुलार' 'व्याहत' तथा दो तुकबन्दियाँ और हैं जिन्हे मैं संग्रह में नही देना चाहता। यो संग्रह मे से मुझे आशा है बहुत-सा कूड़ा कचरा आप कम कर देगे। हाँ, वह महाराष्ट्र युवा आपके पास अभी काम करते हैं या चले गए?

विश्वास है आप प्रसन्न हैं।

आपका अपना,
मा० ला० चतुर्वेदी

[१७]

श्री गोपाल

कर्मवीर
८-७-३५

श्रीमान् चतुर्वेदीजी,

'मुझको कहते हैं माता' शीर्षक तुकबन्दी आपकी सेवा मे भिजवाता हूँ। इसकी नकल ही इस तरह की गई है जिस तरह इसे छपना चाहिये। जहाँ-जहाँ एक विचार दो पक्तियों मे चला हुआ है, वहाँ दो-दो पक्तियो को अलग छापा जाय। जहाँ दो से अधिक पक्तियो मे एक ही विचार व्यक्त किया गया है, वहाँ वह एक पैराग्राफ की तरह अलग छापा जाय। जहाँ-जहाँ कापी मे एक-एक पंक्ति छोडी गई है, जगह छोड़ने के लिए। पैराग्राफो मे भी इसी तरह जगह छोड़ने के लिए लकीर छोडकर सकेत किया गया है। एक स्थान ऐसा भी है जहाँ पैराग्राफ तो पाँच रहेगे, परन्तु उन पैराग्राफो के बीच की जगह नही छूटेगी, क्योकि माता और उसकी सखी के बीच की बातो का विचार एक ही है। किन्तु उसमे भिन्न-भिन्न बातें कही गई हैं। जहाँ से यह विचार शुरू हुआ है, वहाँ से जहाँ यह विचार खतम हुआ है वहाँ तक बीच मे। इन पैराग्राफो के बीच मे जगह न छोड़ी जाय। केवल प्रारम्भ करने की जगह. . .होने पर ही जगह छूटे।

आपका अपना,
मा० ला० चतुर्वेदी

[१८]

श्री गोपाल

कर्मवीर

खंडवा, ता० २–८–३५

भले आदमी जी,

शान्तिनिकेतन से भेजा हुआ आपका कार्ड मिला। क्या जबर्दस्ती है? आपसे कहा किसने कि आप मेरे दिमागी कूड़े को यहाँ वहाँ लिए घूमें?' तिस पर 'ब्याह', 'श्रीपूजा' और 'दुलार' ये तुकबन्दियाँ मेरी अपनी वस्तु हैं, मैं उन पर न छापेखानों की कीलों के दाग लगने देना चाहता हूँ न उनके द्वारा किसी हृदय को दुखाना ही चाहता हूँ। परन्तु चि० हरिप्रसाद ने कहा कि चतुर्वेदीजी के पास तो अब सब कुछ भेज दिया जाएगा। आप उन्ही को लिख दें, कौन-सी कविता न छापी जायगी। चूंकि संग्रह आपके पास जा चुका था अत. मन मारकर बैठ रहा। अब आपने मेरे उन्ही निजी कमजोर हिस्सो को लेकर न जाने कौन-कौन 'अव्यापारेषु व्यापार' शुरू कर दिए हैं? आप उक्त तीनों तुकबन्दियों को संग्रह से बचाइये। उनमे इतिहास है और वह मेरे पास रहने ही के लिए हैं। नही तो मैं लड़ पड़ूंगा। आजकल श्यामसुन्दर जी की कविताएँ पढ़ रहा हूँ। मैं उनकी पुस्तक की भूमिका में अपनी गालियों का बदला आपसे चुका लूंगा।

शेष शुभ। कृपया 'विशाल भारत' का वह लेख पुनः भिजवा दीजिए, जिसमे आप ने श्यामसुन्दर पर लिखा है।

सदैव आपका,

मा० ला० चतुर्वेदी

[१९]

श्री गोपाल

कर्मवीर

२२–८–३५

श्रीमन्

एक सज्जन मेरे पास बैठे हैं। विद्वान हैं, उद्योगी हैं, उत्साही हैं, मराठी भाषी हैं। इनका पूरा नाम है श्रीयुत गंगाधर केशव किरालकर। ये इन्दौर राज्य के स्कूलों के डिप्टी इन्सपेक्टर हैं। ये जो कुछ चाहते हैं कुछ इनकी भी तो सुनिये। मैंने सुना, आपके नक्कारखाने में, इनका पत्र ही गायब हो गया। इन्हें ऐसे बंगाली, सज्जनों के नाम दीजिये, जो बंगाली भाषा में बंगाली कविता की विस्तृत समालोचना लिख दें।

ये इसी मावी मराठी साहित्य सम्मेलन के समय अनुवाद करके पढ़ावेंगे। आपके साहित्य-परिचय के लिये आप इस कार्य के लिये श्रीमान् सुनीतिकुमार जी को कष्ट क्यों न दें? उनका लेख छपेगा, यहाँ बंगला में, पर लिपि होगी देवनागरी। फिर मराठी अनुवाद होगा। कृपया आप इन्हें सूखा ही न लौटावें। शेष फिर।

'माता' वाली कविता छाप दी आपने। क्या कृपा के लिए धन्यवाद दूं? कृपया विशालभारत की इस सख्या की पाँच प्रतियाँ मेरे पते पर मिजवाने का दण्ड सहें।

आपका अपना,
मा० ला० चतुर्वेदी

[२०]

कर्मवीर, खंडवा
२—१०—३५

श्री प्रियवर,

कृपा-पत्र मिल गये। श्री महादेवी जी वाला लेख 'कर्मवीर' मे लिख दिया गया है। मैं भी इस विषय मे कुछ अवश्य लिख दूगा। आखिर आपसे लाठी चार्ज रोक भी नही सकता। किन्तु लाठी-चार्ज की यह स्तुत्य दिशा है। हमारी बहिनो और बेटियो के सम्बन्ध मे इसमे हृदय-हीनता-पूर्ण जो उपेक्षा है उसी का परिणाम है कि हमारे साहित्यिक वातावरण मे गुडाई उपदेशिका बन जाती है। अब इस विषय मे हिन्दी ससार मे जितना किया जा सके कम है। पर मैं तो गाली खाने का ऐसा आदी हो गया हूँ, कि गाली देने की तबीयत भी नही चाहती। हाँ, स्त्रियो के सम्बन्ध मे तो मैं भी चुप न रह सकूंगा। आशा है आप प्रसन्न हैं।

आपका अपना,
मा० ला० चतुर्वेदी

[२१]

श्री गोपाल

कर्मवीर
खंडवा ता० ३०—१०—३७

भाई बनारसीदास जी, सादर प्रणाम

मैं बिस्तरे पर हूँ कोई ३ महीने से। ३३ दिन तो केवल मुसंबी के रस पर रहा। पेट का आपरेशन हुआ था। अभी भी बिस्तरा साफ, सुविधाजनक, सुरक्षित-सा है। आपने कलकत्ता एकदम ही क्यों छोड़ दिया? कुछ भी नही लिखा। इधर मैं कहानियाँ लिख

रहा हूँ। सोचा था, आपको ३, ४ कलकत्ता भेज दूंगा, परन्तु अब वे मेरे ही पास रहेंगी।

कविता-संग्रह मिल गया। आपने लड़-लड़कर लिया था, और मैंने भेज दिया था। आपने लौटा दिया है। मैं उन्हें सुरक्षित रख देता हूँ।

विशालभारत मे वर्माजी से १० मिनट मिला था और अज्ञेय जी को भी पढ सुनकर जानता हूँ। पहले ही कम लिखता था, अब आपके वहाँ न होने पर और उक्त सज्जनों के निकट परिचित न होने के कारण मैं शायद ही लिखूं।

आप सतपुड़ा विन्ध्या के अंचल मे अवश्य आवें। कहिये कब आ रहे हैं, थक गया हूँ अब फिर लिखूंगा। विशालभारत छोडने का कारण लिखिये।

आपका विनम्र
मा० ला० चतुर्वेदी

[२२]

श्री गोपाल

कर्मवीर
खंडवा, ३०-७-३८

श्रीमान् चतुर्वेदी जी,

कृपा पत्र दो मिल गये। दूसरा आज ही मिला । मुझे आश्चर्य हुआ कि 'कर्मवीर' आपके पास नही पहुँच रहा है। लोग कहानी की तरह कहते हैं कि अमरकोष के रचयिता अमरसिंह नीबू के झाड के नीचे बैठकर अपना कोष लिख रहे थे और अपने कोष के वनौषधि वर्ग में, वे नीबू का ही नाम लिखना भूल गये।

हमारा प्रान्त आजकल खूब नेकनाम हो रहा है। त्याग को जीने देने और भोग की भर्त्सना करने की शक्ति, ज्यों ज्यों हमारे आदमी कांग्रेस मे खोते गये, त्यो-त्यों कांग्रेस अपना नैतिक प्रभाव खोने लगी। बडे-से-बड़े नेताओ के आसपास जो वातावरण देखा जाता है, उसमे शुभ्र के प्रति अशुभ्रता और अशुभ्र के प्रति शुभ्रता की गंध आती है। जिस तरह पराधीनता की जंजीरें तोडने के लिए शासन की जंजीरे . .करनी और पहननी होती हैं, उसी प्रकार परम शान्ति की उपासना में भी, एक व्यवस्था माननी होती है। व्यवस्था की तरह द्रुत परिवर्तन न भी हो तो भी अजगर की तरह करवट लेकर बदलनेवाली तो होती ही है। और उसकी उसी धीमी-धीमी परिवर्तनशीलता मे सुख और अकर्मण्यता को समानार्थी बना लेनेवाले बहुजन समाज की आशा जीवित रहा करती है।

अस्तु। आपको क्रान्ति का स्पष्ट हिमायती पा कर आज मेरा आपके प्रति रहनेवाला गर्व अधिक जवान और स्फूर्ति प्राण हो आया है। यों विचारों का सूत कातने और मोटा-झोटा

खद्दर बनानेवाली मेरी वृत्ति तो वही है जो थी। मैं तो व्यवस्था के बीच परिवर्तन का उपासक रहा हूँ। इसी गति, इसी पगडंडी को मैं क्रान्ति की ओर जानेवाली मानता आया हूँ। सी० पी० का झगड़ा, मुझे तो बिछडते हुए मीलो का एक पत्थर भी नही मालूम होता। इस नित्य प्रकरीकरण मे भी मैं इस प्रान्त की नवीन तरुणाई की भावी विजय की रूपरेखा देखता हूँ।

मैंने आपके अन्दर का कवि देख लिया है। अतः मेरे सामने कीडे-मकोड़े की गिनती गिनाकर आप किसकी तस्वीर बना रहे हैं? क्या हम दोनो की? मेरी तस्वीर कीड़े-मकोडों मे भले बन जाय किन्तु आपका विशालभारत तो खूब खूबसूरत है। आपकी उंगलियाँ तो उपनिवेशों तक पहुँची हुई हैं। कही इतना लम्बा चौड़ा भी किसी ने कोई कीड़ा देखा है?

मेरा स्वास्थ्य? हाँ अच्छा है। यमराज को धोखा दे दे कर जीने की करामात मे सफल होता जा रहा हूँ। वनमाली की यह वनकुंज के पत्रों की पुंगी जै दिन बजती चली जाय।

इस बजने मे स्वर की कडवाहट मेरी हो, किन्तु श्वास वायु तो प्रभु की है। इस तरह यह जीवन तो राम-रावण युद्ध है, यह यम-यदुपति संग्राम है। मैं तो उम्र की रेलगाडी मे बिना टिकिट के यात्री की तरह बैठ गया हूँ और मजे से देखता हूँ कि लोग कहते हैं कि मैं फी घटा न जाने कितने मील की दौड से दौडा चला जा रहा हूँ। किन्तु 'हम सज्जन' जानते है कि केवल सासों, मित्रो और अन्न पानी की कृपा से, रेल के डिब्बे मे बिना एक फर्लांग चले, उम्र की मंजिल की सैकड़ों मील की यात्रा, यह पूरी होती चली जा रही है।

आप जैसे कुली-प्रथा-विरोधी से डर मालूम होता है। मजे का आनन्द-भवन छुड़ाकर आप न जाने किस शान्ति निकेतन से ईंट पत्थर जोडने मे लगा दें।

इस तरह मैं अच्छा हूँ। मेरी पीठ पर न साहित्यिक पुस्तकों का बोझ है न राजनैतिक पहुँच, प्रभुता और युद्धो का। मेरी पीठ तो अपनी ही अकर्मण्य साँसो के बोझ से बोझिल है।

हा, एक बार आपको पकड़ कर खडवा लाना तो है। सी० पी० भी दिखाना है। नर्मदा, ताप्ती, बेतवा, महानदी, विन्ध्य, सतपुडा, पचमढी और हमारे अन्नदाता ये गौंड भील गँवारो का यह गढ एक बार देख लें। गँवारो की यह माँग आपको स्वीकार करनी है। देखें कब यह सुयोग आता है? उत्तर दीजिये।

विनम्र
मा० ला० चतुर्वेदी

[२३]

कर्मवीर, खंडवा
३ : ९ : ३९

श्री प्रियवर,

कृपा-पत्र मिला। किसे कहूँ......

अधिक ईमानदारी की बात होगी। गत २६ जनवरी से बीमार हूँ। आपरेशन टालने की ४ महीने कोशिश करने के बाद आखिर ता० २२ मई को खंडवा अस्पताल में आपरेशन हुआ। फिर फिर मवाद आ जाने से ता० ९ अगस्त को तीसरी बार आपरेशन हुआ है। दूसरा ता० २५ जून को हुआ था। गरब की जगह अब गरीबी ने ले ली है। खूब तकलीफ में रहा हूँ। अब तक डर में ही अपनी कठिनाइयाँ को कम-से-कम बोल सकता था। मैं आपकी श्री चगताई वाली छोटी सी आज्ञा पालन न कर सकने के लिए बहुत शर्मिन्दा हूँ। प्रभु पर विश्वास करता हूँ, अतः उसकी 'रजा' में नजीर की नजर से राजी हूँ।

इन प्रदेशो मे तो आपको घूमना ही पड़ेगा, हाँ, आज दाँतों के वक्त चनों का गायब होना जरूर अखरता है।

भाई, समय .....मेरे काबू से बाहर उल्टी करवट अभी से बैठे, और मैं चिट्ठियों द्वारा जाहिर न कर पाऊँ तो नाराज होने की जगह दया, स्नेह करना।

अस्पताल मे हूँ। डाक्टरों से सुनता हूं कि अब अच्छा हो गया। मैं तो घर पर पहुँच कर और अपनी पट्टियो बन्द होने पर ही अपने को अच्छा समझूँगा। निराशा के कारण नही यथार्थता के कारण।

विशाल भारत मे कुछ लिखूँ? जरा ठहर कर लिखूँगा। पत्रोत्तर न देने पर श्रीराम जी से अवश्य मेरी ओर से क्षमा प्रार्थना कीजिए। मैंने उनकी गणेशजी वाली टिप्पणी पढ़ी थी। आँसू के अर्घ्यदान का ही आजकल पात्र हूँ। वही किया।

कठोर मु० ..वादी हो गया हूँ। उद्दण्ड आशाओं पर डोलता हूँ और...चढाने वालों के सपने देखता हूँ। अस्पताल के बिस्तरे पर।

इस बीमारी का इलाज, महात्मा वाला तो अब असर नही करता। कोई और इलाज है? चौबेजी को, खाने की कोई बात तो लिखी ही नही। हाँ, जब मेरे जंगली सूबे में आइये तो, दवा खाने, आयें। खूब अच्छी, ताजा मानसून की या मौसमी जैसी आप चाहेंगे मिलेगी।

अपना आपका
मा० ला० चतुर्वेदी

[२४]

कर्मवीर, खंडवा
१५-९-३९

श्रीमान् चतुर्वेदी जी,

क्या अब आपके मौन रहने का मुहूर्त आया है। जो आप उत्तर न देकर बदला चुका रहे हैं। मेरा स्वास्थ्य अब अच्छा होता जा रहा है। परसो मेरे डाक्टरो ने मुझसे मजाक करते हुए कहा, "आपका इतना पुराना साथी रोग आपसे बिदाई चाहता है, उससे गुडबाई करने की तैयारी कीजिए।" मैंने कहा, "कही वह आपकी तरह गुडमानिंग" न कर बैठे, इसी से उस रोग से मैं नही बोलता। अस्तु।

एक बात। कर्मवीर के लिए कुछ लिख कर भिजवाइये। यदि न भिजवाइयेगा तो फिर विशालभारत वाला सौदा नही पटेगा।

आशा है कि आप प्रसन्न हैं।

आपका अपना,
मा० ला० चतुर्वेदी

[२५]

श्री गोपाल

खडवा
२२-१-४०

श्री प्रियवर,

राजगिरि से भेजा पत्र पहुँचा। किलि मजारो सा स्वाद उसमे ढूँढना बेकार है। हाँ, मैंने राजगिरि अभी तक नही देखा, किसी समय दिखा दीजिए। पधारिये किसी भी दिन, पर खबर देकर, नही तो आप यहाँ और मैं कही बाहर। मालूम होता है, आजकल आपकी लिखास बहुत कम हो चली है, यह क्यो? आपकी नौजवानी पर आपको बधाई। चाहे वह यात्रा भर के लिए ही क्यो न हो? अब तो मिले बहुत दिन हो गए, डर है इसी बीच आप कही बडे आदमी होने का अभिशाप न पा गये हों। 'विशाल भारत' मे लिखने लगूँगा। अज्ञेयजी के युग मे विशालभारत मे न जाने कैसी दूरी दीखने लगी थी, सोचता था उससे जरा और दूर रहूं तो अच्छा। परन्तु श्रीराम जी ने, अपने और श्री हरिशकर जी ने बासुरी बजाकर फिर मेरी क्षुद्रता को बाबी से बाहर आ जाने के लिए उसकाया है! मेरा प्रणाम।

आपका,
मा० ला० चतुर्वेदी

[२६]

खंडवा
१–९–४१

श्री प्रियवर चौबेजी महाराज, जै गिरजि जी।

ता० ११–८–४१ का कृपा पत्र और लेख मिला था। मैं १८–८ को काशी और जबलपुर होकर लौटा। लेख तो छप गया, आपने देखा होगा।

महाकवि रवीन्द्र की महायात्रा, निश्चित वस्तु होकर भी असह्य हुई। मेरे एक तरुण मित्र ने, अपने द्वारा सम्पादित, अपने अंग्रेजी साप्ताहिक मे लिखा है, "विश्व विधाता के लिये भी यह सरल और शायद सम्भव नही है कि वह अपनी इतनी अनोखी वस्तु को तोड़कर, इसे पुन: बनाने मे सफल हो सके।" जब ता० ७ को मैं काशी मे था, मुझे भी उस भेंट की याद आई। अच्छा हो, आप अपने नोटों पर से कुछ लिख ले। लिखकर एक प्रति मुझे भी भेज दे। मैं शीघ्र ही लौटा दूँगा।

आखिर ग्वालियर मे आप यह क्या कह आये? घासलेटी साहित्य जो कुछ किया है, आपने किया है। वह आपकी ही तपस्या थी। अब उसके खिलाफ आप कुछ भी बोलने को बाध्य नही। आगे मर्जी।

नर्मदा तट पर आपका आना, अब नाटक देखनेवालो के द्वारा कहा जानेवाला "वन्स मौर' कहने योग्य हो गया। आप कहे कि मैं नर्मदा तट पर आता हूँ और मैं कहूँ कि फिर एक बार कहिये। आखिर आइये भी, यह क्या विलम्ब लगा रखा है। इतना दरबारी स्वभाव है? इतना धीमा? टीकमगढ निवास का ही यह परिणाम दीखता है। शेष कुशल।

आपका,
मा० ला० चतुर्वेदी

[२७]

श्री गोपाल

कर्मवीर खंडवा
२–१–४१

बन्धन, दण्ड कारा, बन्धन, दण्ड कारा,...एक माला है जो रोज दायें-बायें, साँसों के साथ घूम रही है। क्या बताऊँ कि इस घूमती माला के मौसम मे कहाँ रहता हूँ? घर नही रहने पाता यह सच है।

मेरे पत्र न देने का कारण, मेरी नाराजी के सिवा क्या कोई नही होता? मेरी कपाल रेखाओं में संकट भी तो किसी रेखा का नाम हो सकता है। बढ़ते खून मे वह रेखा घटी

रहती थी, घटते खून मे वह बढ़ने का उपद्रव क्यों न करे ? एक पुराना किस्सा है कि एक महाशय ने अपनी धीमी चलनेवाली घड़ी सुधरवाई । वह तेज चलने लगी । सुधारनेवाले से शिकायत की तो उसने जवाब दिया कि "बाबूजी जितने दिन धीमे चली थी उतने दिन तो वह तेज चलेगी ही, फिर बराबर चलने लगेगी।" किन्तु हाँ, मैंने कपाल-रेखाओं के बनाने बिगाड़नेवाले से कभी कुछ नही कहा। वह तो बैठे बिठाए ही उसे शायद बड़ी करने लगा हो।

कविता-संग्रह और मेरी अन्य पुस्तकों के सम्बन्ध मे तो आपसे पहले बात कर ली होगी। फिर प्रेमी जी से बात होती रहेगी। आप तो सी० पी० आने मे खूब ही सुस्त निकले। अब कृपया १४-१५ फरवरी तक आइये भी नही। मैं मिलूगा नही। किन्तु उसके बाद अवश्य आइये। चलिये सी० पी० के किसी मन्दिर मे साथ-साथ बोल बोल कर उम्र की घड़ियाँ बितावें।

मैं शायद किसी भी दिन झाँसी पहुँचकर आपके पास आने का आयोजन करूँ, या फिर आपको ही झाँसी बुलवाऊँ। मिलना बहुत आवश्यक हो गया है। आशा है कि आप प्रसन्न हैं। मेरे योग्य सेवा लिखिये।

आपका अपना,
मा० ला० चतुर्वेदी

[२८]

कर्मवीर खडवा,
२४-१०-४६

धन्यवाद,

उधर आप मेरा भरतपुर वाला भाषण ढूंढ रहे होगे, इधर मैं भी ढूंढ रहा था। जनाब, दो महीने हुए, वह भाषण मिल गया। उसकी कापी भी हो गई। कोई स्थान ६० मील हो, आपकी सहृदयता पर तो सैकडो मीलो का असर पडता है। मेरे बड़े दादा अफीम खाया करते थे। बड़े दादा यानी पिता जी के बडे भाई। छोटा-सा जब मैं वृक्षो पर पक्षियों का बोलना सुनकर रुक जाता और देर से घर पहुंचता, तथा मेरे कारण घर भर को देरी होती, तब बड़े दादा कहा करते अफीम तो मैं खाता हूं और नशा तुझे आता है, जो कि झाडो की तरह पागल जैसा देखता खडा रह जाता है। क्या तूने चिड़ियाँ और तोते कभी देखे हैं या आज ये नये हो गये हैं ? स्वर्गीय बड़े दादा का त्रैराशिक उधार लूँ तो, भले ही स्थान विशेष श्रीरामजी के जिले मे हो, किन्तु उमकी याद 'श्रीमान्' की ही आई। खोजने से भाषण मिल गया, अत: बलिया, होशियारपुर, भोपाल, मूळापार (सी० पी० जिला होशगाबाद) मे किसी के आजमाने की जरूरत नही।

उत्तर मे मैंने दूसरे मसले का उत्तर प्रथम दे दिया है। पहले मसले के तिलों में कोई तेल मुझे नजर नही आता। किन्तु मेरा यह मत छापने के लिए नही है। प्रेमीजी के अभिनन्दन-

दिवस पर एक सज्जन हुकुमचन्द भाई नागपुर जा रहे थे। मैंने उन्हें ही अपना पत्र दे दिया। वे आज लौटकर मेरा पत्र दे गये। यह कह कर कि जिनसे मिलना था वे आकोला स्टेशन पर मिल गये। पुनः वे नागपुर नहीं गये और पत्र श्री यशपालजी को न मिल सका। नागपुर वाला पत्र मैंने ठीक समय पर मिल जाने की ही आशा से उन्हें दिया था।

विनम्र

मा० ला० चतुर्वेदी

[२९]

कर्मवीर, खंडवा,

१८-४-४७

प्यारे भाई चतुर्वेदीजी,

कृपा कार्ड मिला। वह टीकमगढ़ की मुहर ला कर चला है। आपने उसे १४-४ को लिखा है। मुझे कलकत्ता १८-४ को मिला है। उसमें आपने 'शेष स्वस्थ होने पर' लिखकर मजमून पूरा किया है। यही चिन्ता का कारण हुआ है। कृपया लिखिए, अस्वस्थता क्या है और कब से आप बीमार हैं?

श्री हरगोविन्दजी की रचना तथा श्यामसुन्दरजी की रचना दोनों रखी हैं। शीघ्र ही भिजवा दूंगा। श्री हरिगोविन्दजी की रचना पर मैंने जो लिखा था उसकी प्रति आपको भिजवा दी थी। आपने उस पर अपना मत ही नहीं भिजवाया, कृपया भिजवाइये। श्यामसुन्दरजी की रचना पर भी कुछ लिख रहा हूं बहुत छोटा-सा। अच्छा होता आपके Idtroduction के पश्चात् मे लिखता। आप तो दिल्ली थे, पुनः टीकमगढ़ कब आ गये?

मेरे योग्य सेवा व स्वास्थ्य का हाल किसी से लिखवाइयेगा।

आपका

मा० लाल चतुर्वेदी

[३०]

खंडवा,

तारीख : २३-१-५६

निजी

भाई बनारसीदासजी, सादर प्रणाम।

बिना तारीख पड़ा, आपका कृपा पत्र मिला, कृतज्ञ हूँ। आप अपनी तीस वर्ष पुरानी प्रतीक्षा पूर्ण करने जा रहे हैं, यह जानकर प्रसन्नता होना कितना स्वाभाविक है, कैसे कहूँ।

किन्तु मुझे तो आपके आने मे तब तक सन्देह रहेगा, जब तक आप खंडवा रेलवे स्टेशन पर पहुँच जायें, और मेरे गरीबखाने तक न आ पहुँचे, जी हाँ। आपकी अस्वस्थता के समाचार पढ़कर दुखी हुआ, अब कैसे हैं? कृपया लिखिए। चूँकि आपके कृपा-पत्र पर तारीख नहीं है, मेरा पत्र मैं आपके दिल्ली ही के पते पर भिजवाऊँ, यही ठीक लगता है।

खंडवा पहुँचकर आप जो-जो सुनावेंगे वह सब सुनूँगा। आप एक बार यहाँ आ तो जायें। कृपया लिखिये कौन-सी तिथि निश्चित रही? या फिर से आप 'तिडी' देंगे?

आपके विषय में दो शब्द लिख कर हिन्दी-जगत् मे कोई आज उऋण नही होता। आप बहुत कर चुके, बहुत सुन चुके, बहुत सह चुके। अब तो लोगों को बहुत लिखना चाहिए। क्या कभी श्री जैनेन्द्रजी आपको मिलते हैं? उनके गृह-जीवन के शुभ समाचार कभी-कभी अवश्य दें। फिरोजाबाद मे कौन-कौन हैं?

आपका

मा० ला० चतुर्वेदी

[३१]

श्री गोपाल

खंडवा,

ता० १२-४-५८

श्रीमान् भाई चौबेजी, सादर सप्रेम प्रणाम।।

आपको मेरे लिये कितना करना और सहना पड़ा। किन्तु एक मैं हूँ सत्तर वर्ष की उम्र तक कुछ कर ही न पाया। दुखी हूँ, क्षमार्थी।

आपके दोनो कृपा-पत्र मिल गये। एक कार्ड दूसरा लिफाफा। सब हाल जाने। रहस्य इससे भी थोड़ा-सा आगे है। जब कभी दर्शन होंगे रूबरू इजहार करूँगा। यह तो लिखिये कि आपका स्वास्थ्य अब कैसा है?

आपको कष्ट न हो तो, एक बात कृपा कर कर दें। मैंने कानपुर की एक चिट्ठी से जाना कि चि० बालकृष्ण दिल्ली मे बीमार हैं। मेरे पत्र का वहाँ से कोई उत्तर नही आया। कृपया उन तक मेरे प्रणाम-भरे आशीष पहुँचा देवें और मेरी ओर से उन्हें धैर्य दें। मैं इतना अपाहिज न हो गया होता और चलता-फिरता होता तो अभी तक चि० बालकृष्ण को देखने और चि० भैया की खबर लेने पहुँच जाता।

उन्हें क्या शिकायत है? अब कैसी हालत है? आप खंडवा कब तक तशरीफ ला रहे हैं। सचमुच आ रहे हैं। सचमुच आ रहे हैं या यह भी पुराने वृत्तों का नया संस्करण मात्र है?

रही बधाई, उसके लिए मैं आपसे क्या कहूँ? आपमे तो अभी एक से दो, और उससे

आगे शायद एक के अनेक हो, हो उठने की उमंग है। धन्य हैं आप। जय जय गिरिजि की।

मैंने सुना है दिल्ली आजकल बड़ी ही आकर्षक हो गई है। क्या यह सच है?

कोई डेढ़ वर्ष प्रथम, आचार्य चतुरसेन शास्त्री के दो एक दिन खंडवा में दर्शन हो गये। पुराने लोगों में दिल्ली के क्या हाल हैं? कष्ट न हो तो कृपया उत्तर दीजिएगा।

विनम्र,

मा० ला० चतुर्वेदी

[३२]

श्री

(सर्वथा निजी)

कर्मवीर, खंडवा, म० प्र०

२-११-५९

मान्य भाई चौबेजी, सादर प्रणाम।

क्या कहूँ? कैसे कहूँ? पर आप हैं कि लिखे जा रहे हैं। जनाब। मैं १९३२ के दिसम्बर में या १९३३ की जनवरी की पहली दूसरी तारीखों को आपसे किताब मंगाकर लाया था। वह ब्रिटिश शासन का युग था। उसके पश्चात् कितनी ही बार मेरी तलाशियाँ हुई? और ये युनिवर्सिटियो के लड़के बला के होते हैं। ये लोग पुस्तक देखते-देखते उड़ा देते हैं। जनाब ये किसी की किसी तलाशी से कम थोडे ही होते हैं। किन्तु आप भी क्या पहली एप्रिल की सी बातें करते हैं? इन तरुणों ने हिन्दी को क्या नही दिया? फिर जरा इन २६ वर्षों के पुराने पन पर ध्यान दीजिये। जिस पर आपकी तरह विधुर जब जेल गया तब झोपडा अल्लामियाँ के लिये छोड गया, सो महर्पिवर तकाजे न कीजिये। कही किसी प्रकाशक के पास उक्त पुस्तक मिल जाय तो ले लीजिये। भला दिल्ली की किसी लाइब्रेरी मे आपको वह पुस्तक नही मिली।

किमाश्चर्यमतः परम्। अच्छा नमोनम हाँ, मेरे नाम की वी० पी० करके किताब मँगा दीजिये। यदि कही मिल जाय। पर वह शायद ही मिले।

विनम्र,

माखनलाल चतुर्वेदी

[३३]

श्री

कर्मवीर, खंडवा,

१०-११-५९

प्यारे चौबेजी, सादर सप्रेम नमन।

दैनिक हिन्दुस्तान मे आप पर पं० गोपाल प्रसाद व्यास का लेख देख कर प्रसन्नता हुई।

मेरे यार ने कहा पर बहुत कम कहा। हाँ आपका शेर जरूर अच्छा है। यदि दैनिक हिन्दुस्तान के कालमों का बन्धन न हो तो आपकी मरम्मत खूब की जानी चाहिये। हिन्दी को आप जैसा पुत्र (?) देकर भगवान् ने बहुत दिया है। कृपा रखें,

विनम्र,
माखनलाल चतुर्वेदी

[३४]

श्री गोपाल

कर्मवीर, खंडवा,
५-६-६०

प्यारे भाई,

बहुत दिनो के पश्चात् आपकी मेरे पास भिजवाई हुई मेरी तुकबदी राष्ट्रीय झडे का भेंट लौटा रहा हूँ। हिन्दी दैनिक प्रयाग-पत्रिका के दर्शन तो नही हुए। शायद इस तुकबदी के छपने के पश्चात् हो जायें।

निसंदेह नर्मदा की शहीद सख्या का मैं स्वागत करूँगा। आप तो प्रयाग-पत्रिका मे मेरी रोज-रोज खबर लेने वाले थे? वह पत्रिका क्या हुई? कृपा रखिये। कृपा-पत्र के सद्भावो के लिये मेरे नम्र नमन। शेष फिर कभी।

विनम्र,
माखनलाल चतुर्वेदी

[३५]

कर्मवीर, खंडवा
२३-१२-६०

श्रीमान् चतुर्वेदीजी, नमोनमः

अभी-अभी साप्ताहिक 'हिन्दुस्तान' मे आपके ६९वें वर्ष पर लिखे आपके लेख को पढ़कर बहुत प्रसन्न हुआ। परन्तु औघड़दानी यह क्या किया? मेरा और बहिन महादेवी जी का नाम आपने क्यों दे दिया? क्या ईमान से कह सकते हैं कि मैंने आपको पत्र नही लिखें? यों तो मैं विनोबा के इस कथन को मानता हूँ कि आत्म-निन्दा आत्म-प्रशंसा ही की तरह त्याज्य है, किन्तु इस लेख को पढ़कर तो तुलसीदास की इन पक्तियों का उद्धरण देने की इच्छा हुई—

प्रभु सप्रेम पछितान सुहाई।
हरहु भगतमन की कुटलाई॥

खैर अपने को दोषी बता-बता कर आप के दिन अपनी खैर मनाइयेगा ? कोई आपकी आत्म-निन्दा को मानने से इंकार कर दे तो उसका आप क्या कीजियेगा ?

अस्तु। मैं बिस्तरे पर हूँ और वहीं से आपके उन्हत्तरवें वर्ष पर आपको बधाइयाँ भिजवा रहा हूँ। कृपया स्वीकृत कीजिये।

विनम्र
माखनलाल चतुर्वेदी

[३६]

खंडवा,
२८-१०-६१

माननीय भाई चतुर्वेदीजी,

एक दिन तो आपको खंडवा आना ही है। आपका बहुत पुराना वादा है, वह पूरा होना चाहिए। इस समय एक कार्यवश यह पत्र लिख रहा हूँ। मेरे छोटे भाई चि० बृजभूषण चतुर्वेदी ने इस वर्ष खंडवा लोक-सभा सीट के लिए आवेदन पत्र दिया है, इसके पहले उस जगह पर श्री पं० बाबूलालजी तिवारी थे, परन्तु अब उन्होने विधान सभा के लिए आवेदन पत्र किया है, अतः अब चि० बृजभूषण ने आवेदन किया है। आपके कान तक यह बात डाल देना अपना कर्त्तव्य समझता हूं।

आपका स्वास्थ्य कैसा है सूचित करें।

विनम्र
माखनलाल चतुर्वेदी

[पत्रों में उल्लिखित चतुर्वेदीजी की दो कविताएँ]

अपराधी हूँ

[भारतीय हृदय के द्वारा 'श्रद्धा के फूल' निर्दयतापूर्वक फेंके जाने से व्यथित होकर लिखी गयी कविता।]

कल्पना की कुटिया में बैठ तेज की करता था मनुहार।
हृदय-बूँदों की माला देख, सिमट कर बिखरी अगणित बार।
प्रतीक्षा की मस्ती पर चढ़े, वरण ऋतुराज, निदाघ अपार
बताओ बरबादी के यार, खटखटाऊं कब तक यह द्वार?
खीझकर आँखड़ियाँ कह उठीं पतित का हाजिर जीवन-मूल।
सिसक से महँगी बशी बजो, चाहिए; हैं श्रद्धा के फूल?
असहनीय हो उठा तुम्हारा यह श्रद्धा-संकेत सखे,
ऊसर है पाषाण-पूर्ण अपने जीवन का खेत सखे।
कैसे हलधर के हल से मैं अन्तस्तल झकझोर उठूं।
अरे श्याम बरसाने को कैसे तुझे निहोर उठूं।
यहाँ धूल उड़ी है माधव लतिकाएँ क्यों फूल उठें?
कैसे फूल बता—चट्टानों में—श्रद्धा के फूल उठें?
कौन? एक गुमराह, भूल में अतुल भाग्यशाली आया।
वनमाली की कृपा उपल में विमल 'हृदय' माली आया।
टूट चुके थे तार और तर्जनी, किन्तु ले बैठा तान।
साबरमती प्राण की बाजी पर यह तेरा जीवन दान।
मैं तोड़ूँगा नहीं, आत्म-कृतियों के सारे शूल रहें।
उनके मस्तक पर लहराते ये श्रद्धा के फूल रहें।
अफरीका, सुर मिल जाने दे, मत कर मन म्लान अरी।
पतित पराजित अपमानित का है मीठा अभिमान 'हरी'।
किलिमंजारो, हेमांचल से ऊँची उठकर बोल सखी,
जल थल नभ हिल जाने दे, तू किंचित् मत डोल सखी।
अरी श्याम दुनियाँ, लका ढा देने की अब बारी हो,
हूलों पर श्रद्धा के फूलों से पहिली तैयारी हो।
सखे सिखा दे, कैसे गाऊं? अमृत मौत के दाम न हो।
जगे एशिया, विश्व हिले, पर राजनीति का नाम न हो?
व्यथित बाँसुरी से कहता हूँ ही-तल हूक मचा दे तू,
अरी गरीबिन रण डंका बन, कस कर चोट लगा दे तू।

स्वप्न कार्य में अंगुली में मनसूबे उठते शूल।
अपराधी हूँ, फेंक नहीं निर्दय श्रद्धा के फूल।
"त्यागात्मिका, चढ़ाई तूने, प्यारी प्यारी अँजलियाँ,
यहीं कुली-सेवक कर दे वरदे वरदे भारत बलियाँ
वह मेरे अन्तर तम का स्वर, वह मेरे उपहार बहिन,
कड़ियाँ जोड़, तोड़ दे ले, परतन्त्र जगत् का हार बहिन।
आँख मूँद कर देख रहा हूँ, साबरमती तुम्हारा कूल।
हृदय, तपोवन पण की कुटिया, और?
मौन श्रद्धा के फूल......

श्रद्धा के फूल

[एक भारतीय आत्मा की सेवा में, 'एक भारतीय हृदय' द्वारा समर्पित]

रजत मुकुट धारणी धवल शिखर शिरोमणि कल मंजीर
विटिश सूर्य जिस पर प्रकटाता अन्धकार भीषण गंभीर
उस आकाश विचुम्बित नग पर सुमन मनोहर करते वास
हिम की हृदयहीन शीतलता कर न सकी कोमलता नाश
प्रेम-अश्रु से सदा सींचते रहते अपना जीवन-मूल
सूखे किन्तु हरे जीवित हैं फिर भी ये श्रद्धा के फूल।
श्वेतकाय पुरुषों के जिसने सहे सैकड़ों अत्याचार
जिसके काले कंधे सहते हैं गोरी प्रभुता का भार
वह अधिकारहीन अफ्रीका करती विनती बारम्बार।
जग-जननी है भारत माता, कीजे अब मेरा उद्धार।
चार मील ऊँचे से लेने तेरे चरण-कमल की धूल
भारत अबला आज भेजती है कुसुमित श्रद्धा के फूल।
'कविता' कुली प्रथा का जग में हो सकता है क्या सम्बन्ध?
पद्म पद्म नहिं हुआ प्रफुल्लित लगी न पिंगल पवन सुगंध।
नीरस है यह हृदय सरोवर सदा यहाँ रहता है ताप
पुष्प नहीं आकाश-पुष्प ही इसमें पा सकते हैं आप।
शुष्क पत्र, ये नहीं पत्र को, इनमें कोरे भरे त्रिशूल।
कविता कली कदापि नहीं है ये सूखे श्रद्धा के फूल।

चंद्र-भाद्रपद, १८९२ शक]

कूरा कुलटा राजनीति की कुटिल गती ही भाती है
कूट कूट कर कवि का कोमल हृदय कुचलती जाती है।
कभी किया कमनीय कंठ से जिस कोकिल ने सुन्दर गान
राजनीति चंचला चरण का चंचरीक बन करता ध्यान।
कौंसिल, नो-कौंसिली—कलह में कविता देवी को मत भूल।
इसीलिए अर्पित करती वह प्यारे ये श्रद्धा के फूल।

'नर नारायण समर'[१] तुम्हारा देता है मन को सन्तोष
'जीवित जोश'[२] भरा करता है भव्य भाव का सीकर कोष
दिया हृदय को बेध 'हृदय'[३] ने लगा प्रेम का तीखा शूल
तब 'बलिदान'[४] वारि करता है सिंचित मेरा जीवन-भूल
'जीवन-फूल'[५] चढ़ाता रहता साबरमती नदी के कूल
हे कविगण कीजिये स्वीकृत ये मेरी श्रद्धा के फूल :[६] :
साबरमती स्कूल —एक भारतीय हृदय
१७–१–२५

अथवा

कविता की कमनीय कलम कलियों में अलि करता गुंजार,
राजनीति चंचला चाल से चंचरीक अम्पा का यार।

१—कृष्णार्जुनयुद्ध
२, ३, ४, ५, ६—कविताओं के नाम

डाक्टर हरीश

प्रेमाख्यानकार कवि जान और उनका कृतित्व

भारतीय साहित्य में प्रेमाख्यान-काव्यों की परंपरा बड़ी प्रशस्त रही है। यह परंपरा सूफी, असूफी और दक्खिनी तीनों प्रेमाख्यानों के रूप मे मिलती है।[1] यही नहीं, भारत की अनेक प्रादेशिक भाषाओं में भी अनेक प्रेमाख्यानक काव्य लिखे गये हैं, जिन पर विद्वानों ने यत्किंचित् प्रकाश डाला है।[2] इधर प्रेमाख्यानक काव्यों पर पर्याप्त शोधकार्य भी हुआ है।[3] इस दिशा में अनेक महत्वपूर्ण निर्णय निष्कर्ष भी लिए गये हैं।

हिन्दी साहित्य के (विशेष कर उत्तरी भारत के) प्रेमाख्यानों में सूफी प्रेमकाव्यों का अपना एक विशिष्ट स्थान है। इनमें चंदायन,[4] मृगावती,[5] पद्मावत,[6] चित्ररेखा,[7] मधुमालती,[8] चित्रावली[9], ज्ञानदीप[10] आदि काव्य प्रमुख हैं।

सूफी प्रेमाख्यानों के साथ असूफी प्रेमाख्यानों का भी योगदान कम महत्व का नहीं। इन असूफी प्रेमाख्यानों में अनेक महत्वपूर्ण काव्यों के नाम गिनाये जा सकते हैं जो हिन्दी साहित्य

---

१. देखिए—भारतीय प्रेमाख्यान की परम्परा: पृ० ६९; श्री परशुराम चतुर्वेदी; राजकमल प्रकाशन।
२. वही, पृ० १०८।
३. मध्ययुगीन प्रेमाख्यान; पृ० ८२, डॉ० श्याममनोहर पांडेय; मित्र प्रकाशन, इलाहाबाद। तथा भारतीय प्रेमाख्यान-काव्य; डॉ० हरिकान्त श्रीवास्तव, प्रकाशक—हिन्दी प्रचारक, वाराणसी।
४. सूफी काव्य-संग्रह; पृ० ७८; श्री परशुराम चतुर्वेदी; हिन्दी साहित्य सम्मेलन प्रयाग।
५. जायसी ग्रंथावली, पृ० ३, आचार्य रामचन्द्र शुक्ल तथा जर्नल ऑफ दी बिहार रिसर्च सोसाइटी; १९५५ में प्रो० एस० एच० अस्करी का लेख—"कुतुबन्स मृगावत।"
६. जायसी ग्रंथावली; आचार्य शुक्ल तथा डॉ० माता प्रसाद गुप्त।
७. चित्ररेखा : सम्पादक श्री शिवसहाय पाठक; पृ० १०७।
८. त्रिपथगा, १ जुलाई १९५९, मंझन का जीवन वृत्त—लेखक, श्याममनोहर पांडेय।
९. चित्रावली : श्री जगमोहन वर्मा।
१०. ज्ञानदीप : डॉ० उदयशंकर शास्त्री।

की अमूल्य निधि हैं। उदाहरणार्थ ढोला मारूरा दूहा,[१] सदयवत्स सावलिंगा,[२] लखमसेन पद्मावती[३] सत्यवती कथा,[४] छिताई वार्ता तथा मैनासत,[५] नल दमयंती कथा[६] नल दमन,[७] माधवानल कामकंदला[८], मधुमालती,[९] वेलिकृष्ण रुक्मणी[१०], रसरतन[११], प्रेम विलास प्रेमलता,[१२] प्रेमप्रगास[१३], चन्द्र कुंवर री बात[१४], पहुपावती[१५] और बीसलदेव रास[१६] आदि। इस परंपरा की उक्त सभी कृतियों पर विद्वानों ने विस्तार से लिखा है और सूफी असूफी दोनों प्रेमाख्यानो पर कई शोध कृतियां सामने आई हैं।

असूफी काव्यो के सृजन में राजस्थान के कवियों का अप्रतिम योगदान है। ढोला मारू रा दोहा, रुक्मणी हरण (सायां झूला), मूमल महेन्द्र, सुपियार दे आदि सैकड़ों प्रेमकथाएँ हैं, जिन पर अभी और कार्य होना बाकी है। इधर राजस्थानी प्रेम कथाओं का एक संग्रह

---

१. ढोला मारू रा दूहा : सभा संस्करण, काशी।
२. गुजरात एण्ड इट्स लिटरेचर, के० एम० मुंशी; पृ० २१२। तथा राजस्थान भारती, अप्रेल १९५० पृ० ४७, श्री अगरचंद नाहटा का लेख।
३. लखमसेन पद्मावती, पृ० १७; श्री प० नर्मदेश्वर चतुर्वेदी; प्रयाग संस्करण।
४. ईश्वरदास कृत सत्यवती कथा तथा अन्य कृतियाँ, पृ० ६६–६७। डॉ० शिवगोपाल मिश्र, विद्यामंदिर प्रकाशन, ग्वालियर।
५. छिताई वार्ता; डॉ० माता प्रसाद गुप्त : सभा संस्करण तथा हिन्दुस्तानी अंक जु०–सि० १९५९; डॉ० गुप्त का लेख और साधन कृत मैनासत; विद्या-मंदिर प्रकाशन, ग्वालियर संस्करण ।
६. नलदमयंती कथा; ह० प्र० सम्मेलन संग्रहालय में विद्यमान।
७. सूरदास कृत नल दमन काव्य; सम्पादक डॉ० वासुदेवशरण अग्रवाल, हि० विद्यापीठ आगरा संस्करण।
८. देखिए माधवानल काम कन्दला; गायकवाड़ ओरिएन्टल सीरीज बड़ोदा पृ० ५०९, तथा हिन्दी अनुशीलन अं० दिस० १९५८ में श्री नाहटा जी का लेख।
९. नागरी प्रचारिणी पत्रिका; हीरक जयन्ती अंक; सं० २०१०; पृ० १८७–१९२।
१०. वेलिकिसन रुक्मणी री, हिन्दुस्तानी ऐकेडेमी; संस्करण प्रयाग।
११. रसरतन; ह० लिखित प्रति-सभा काशी में विद्यमान—पुहकर कृत।
१२. प्रति सम्मेलन संग्रह में सुरक्षित।
१३. मध्ययुगीन प्रेमाख्यान : पृ० ११३, डॉ० श्याममनोहर पांडेय।
१४. शोध पत्रिका; खंड ३ भाग २; हंसकवि कृत। राजस्थानी रचना।
१५. पुहुपावती संत दुख हरनदास कृत—प्रति ना० प्र० सभा काशी में सुरक्षित।
१६. बीसलदेवरास सभा संस्करण तथा डॉ० माताप्रसाद गुप्त, परिषद्-संस्करण ।

नाहटा जी द्वारा प्रकाशित किया गया है।[1] फिर भी सभी राजस्थान के भंडारों में अभी ऐसे अनेक काव्य हैं, जिनसे प्रेमाख्यान-रचनाओं के इतिहास में अभीष्ट वृद्धि होगी, ऐसा हमारा विश्वास है।

शोध कार्य करते हुए सन् १९६० से ही मध्ययुग के एक चूडात प्रेमाख्यानकार मे मेरी रुचि हुई। सामग्री संकलन और प्रतियों के पाठ-संग्रह में जुटा रहा। इधर-उधर इस सम्बन्ध मे लेखों की सूचनाएँ श्रद्धेय नाहटा जी, नारायणसिंह जी भाटी, सौभाग्यसिंह शेखावत एवं अन्य सूत्रों से ज्ञात भी हुई तो देखा कि इस महान् कवि पर यत्र-तत्र मात्र छुटपुट लेख प्रकाशित हुए हैं। इनमें श्री कमलकुलश्रेष्ठ ने इस ओर एक लेख 'हिन्दुस्तानी' मे प्रकाशित कराया[2]। और भी कुछ सामग्री ब्रजभारती[3], धूमकेतु[4], आदि में मिल जाती है। कुछ लेख वरदा[5], विश्ववाणी[6] एवं सरस्वती[7] मे भी प्रकाशित हुए हैं परन्तु इन सभी लेखों ने कवि का ऊपरी आवरण ही स्पर्श किया है। इस महान् प्रेमाख्यानकार की आत्मा का संस्पर्श करने का प्रयत्न किसी ने नही किया। यह प्रसिद्ध कवि जान न्यामत खाँ हैं।

जान शेखावाट (राजस्थान) के फतहपुर नामक कस्बे मे उत्पन्न हुए और वे वहाँ के चौहान-वंशीय राजपूतो की शाखा के कवि हैं, जिनको आक्रमण कर्त्ता सेनापति सैयद ने मुसलमान बना लिया था। अतः जान कवि वंश से चौहान थे एवं धर्म से मुसलमान। ये वहाँ के शासकों में से रहे है। इनका वंश नवाबों के नाम से इस प्रदेश पर शासन करता रहा। जान न्यामत खाँ इनका पूरा नाम था। जान के वंशधर आज भी इस कविवर को बड़ी श्रद्धा से स्मरण करते हैं। उनके ऐसे परिजनों से लेखक का सम्पर्क हुआ है।

जान की कृतियों का लेखक ने यथावसर अध्ययन करने का सौभाग्य प्राप्त किया है और इस उपेक्षित कवि के साथ न्याय हो, इस दृष्टि से जान के कर्तृत्व पर विस्तार मे लिखा है, जो जान-ग्रथावली के रूप में शीघ्र ही विद्वानो के सामने आयेगा।

---

१. राजस्थानी प्रेमकथाएँ, श्री अगरचंद नाहटा; प्र० सार्दूल रिसर्च इन्स्टीट्यूट, बीकानेर।
२. हिन्दुस्तानी; भाग १५ अंक १, सन् १९४५ श्री कमल कुलश्रेष्ठ का लेख।
३. ब्रजभारती; वर्ष २; अं० ११ सं० १९९९, श्री अगरचंद नाहटा का "कवि जानकृत ज्ञानदीप" शीर्षक लेख।
४. धूमकेतु : अगस्त १९३९—हिन्दी संसार का अपरिचित कवि जान—श्री शेखर का लेख।
५. वरदा; वर्ष ५; अंक ३; १९६२ श्री श्रीलाल मिश्र का लेख—"कविवर जान विरचित एक अज्ञात ग्रंथ संगीत गुनदीप"।
६. विश्ववाणी; वर्ष; ५; अंक ५; श्री रावत सारस्वत का लेख—"हिन्दी के विस्मृत मुसलमान कवि जान।"
७. सरस्वती, भाग ४६; खंड १; सन् १९४५; कविवर जान, श्री रावत सारस्वत।

इस संबंध मे एक महत्वपूर्ण बात यह कहना चाहता हूँ कि उत्तर प्रदेश तथा इतर प्रान्तीय अन्य विद्वानों को तो जाने दीजिए, राजस्थान के अनेक विद्वानों ने भी इस कवि को अंधकार में रखा और अपने ग्रन्थों में इनका बहुत सामान्य सा परिचय देकर ही इस श्रेष्ठ प्रेमाख्यान-कर्त्ता-कवि को चलता कर दिया। डा० मोतीलाल मेनारिया[1] जैसे राजस्थानी भाषा और साहित्य पर काम करने वाले विद्वान् ने भी इस कवि के सृजन पर सिर्फ चार पंक्तियाँ लिखकर जैसे अपना फर्ज पूरा किया है। कवि जान जैसे मध्ययुग के अनेकों कवि ऐसे हैं, जिन पर विद्वानों द्वारा लिखना तो दूर, आँख उठाकर ताका तक नहीं गया है। उदाहरणार्थ—नरहरि बारहट, कुलपति मिश्र, महाराज जसवंतसिंह, दुरसा आढा, ईसरदास, सग्रामसिंह, (इन्दरगढ़) आदि अनेकों नाम उद्धृत किए जा सकते हैं। डॉ० मेनारिया ने उन पर जो कुछ लिख दिया वही जैसे लक्ष्मण-रेखा हो गई। उसे लाँघने का प्रयत्न नहीं किया जाता और यही कारण है कि इन कृतिकारों पर विद्वानों की दृष्टि नहीं जाती। लेकिन मुझे यह कहने मे कतई सकोच नही है कि डॉ० मेनारिया के ग्रन्थों से इन कवियो के लिए केवल अधूरी सूचनाएँ मात्र एकत्रित की जा सकती है। इसके अतिरिक्त उनके ग्रन्थों मे किसी भी कवि पर, (केवल कुछेक को छोड़कर), आलोचनात्मक अध्ययन तक नहीं है और यही कारण है कि कवि जान उनकी कलम के शृगार न बन सके। जान के लिए डॉ० मेनारिया लिखते है —"जैसा कि उक्त सूची से स्पष्ट है कि जान कवि ने प्रेमाख्यान अधिक लिखे हैं, अतएव इनकी रचना में शृगार रस का प्राधान्य है। बहुत ऊँची काव्य-प्रतिभा इनमें नहीं दिखाई देती। परन्तु वर्णन की स्वाभाविकता तथा सजीवता और कथा-प्रवाह की धारावाहिकता द्वारा पाठक का ध्यान इधर उधर न भटकने देने की जो कला-क्षमता एक कुशल कहानीकार मे होनी चाहिए, वह इनमे पूरी-पूरी विद्यमान थी। इस दृष्टि से इनके प्रेमाख्यानों की जितनी भी प्रशंसा की जाय वह थोड़ी है।"[2] डॉ० मेनारया का जान के पूरे कर्तृत्व पर यही कथ्य है। उनके सभी ग्रन्थो मे कवियो के साहित्यिक मूल्याकन की यही स्थिति है। डॉ० मेनारिया अपने इन सक्षिप्त कथ्यों को भले ही सागोपाग मानते हों, पर हमारा मत है कि इस तरह के निर्णय एकदम एकागी एव अपूर्ण हैं तथा ये इस दिशा में, इस पथ पर चलने वाली भावी शोध-पीढ़ी को और भी भ्रम मे डालने वाले निर्णय है। यह बात हम बिना किसी पूर्वाग्रह के कह रहे हैं।

इधर पिछले कुछ वर्षों मे जान कवि पर कुछ उल्लेख और हुए हैं। इन शोध-कृतियो मे कुछ कृतियाँ ध्यान देने योग्य है। इन कृतियों के लेखक अधिकाश उत्तर प्रदेश और बिहार के हैं, परन्तु इन्होंने जितना और जो कुछ भी कवि जान पर लिखा है, वह हमारे राजस्थान के

---

१. राजस्थान का पिंगल साहित्य; डॉ० मेनारिया; पृ० ८०-८३; ग्रन्था-रत्नाकर, बम्बई संस्करण।

२. राजस्थान का पिंगल-साहित्य; पृ० ८२; डॉ० मेनारिया।

उक्त कथ्यों से अधिक वजनी है। इन विद्वानों में हम पूज्य पं० परशुराम चतुर्वेदी[1] डॉ० हरिकान्त श्रीवास्तव[2], डॉ० श्रीमती सरला शुक्ला[3], डॉ० कमल कुलश्रेष्ठ[4], डॉ० श्याम मनोहर पाण्डेय[5], आदि का नाम देना चाहेंगे। प्रयाग से कोई श्री रामकिशोर[6] जान के प्रेम काव्यों पर अपना शोध कर रहे है, इसकी भी सूचना मिली है, पर वह ग्रन्थ प्रकाशित नही है अतः तदर्थ उस पर कुछ भी नही कहा जा सकता।

उक्त सभी ग्रन्थों और शोधकर्त्ताओं के जान सम्बन्धी मूल्यांकन कर यह निर्णय सरलता से किया जा सकता है कि इन्होने जान को स्मरण तो किया है और किसी-किसी उदारमना ने तो जान के कुछ काव्यों से कुछ उद्धरण-पाठ भी दिए हैं, परन्तु उनके ग्रन्थो का मूल्याकन किसी ने नही किया। जान के साथ आज तक न्याय नही हो पाया और सैकड़ों वर्ष हो गए यह असाधारण प्रतिमा विद्वानों की कृपाकिरण की ओर निर्निमेष दृष्टि से देख रही है कि शायद कोई दृष्टि-निक्षेपण उस पर भी हो जाय।

उक्त विद्वानों मे डॉ० कुलश्रेष्ठ ने अपने शोध प्रबंध में जान के २० ग्रन्थों का परिचय दिया[7], जो कई भ्रांतियाँ पैदा करने वाला है। उन्होने जान के ग्रन्थो का वर्गीकरण भी किया, जो बहुत सामान्य हैं।[8] डॉ० मेनारिया ने उनके ७५ ग्रन्थों की सूची बनाकर प्रस्तुत करने में ही अपने कार्य-कर्त्तव्य की इतिश्री समझ ली।[9] श्री रामकिशोर ने अपने एक लेख मे जान

---

१. सूफी काव्य संग्रह; पृ० १५४–१६८; श्री पं० परशुराम चतुर्वेदी, हि० सा० सम्मेलन, संस्करण तृ०।
२. भारतीय प्रेमाख्यान काव्य; पृ० ३० तथा १४८; डॉ० हरिकान्त श्रीवास्तव, हिन्दी-प्रचारक, वाराणसी।
३. जायसी के परवर्ती हिन्दी सूफी कवि और काव्य; पृ० ३७४–४१५, डॉ० रसाल शुक्ल; प्रकाशन—लखनऊ विश्वविद्यालय, लखनऊ।
४. हिन्दी प्रेमाख्यानक काव्य: पृ० २२–३६ डॉ०कमल कुलश्रेष्ठ; चौधरी मानसिंह प्रकाशन अजमेर।
५. मध्ययुगीन प्रेमाख्यान; पृष्ठ ११२–११३ तथा २६५; डॉ० श्याममनोहर पांडेय— प्रका० मित्रा प्रकाशन, प्रा० लि० इलाहाबाद।
६. हिन्दुस्तानी : भाग २४; अंक ४; १९६२; श्रीरामकिशोर का लेख—कविजान—और उनकी रचनाएँ।
७. हिन्दी प्रेमाख्यानक काव्य; पृ० २२२६; डॉ० पृथ्वीनाथ कमल कुलश्रेष्ठ, अजमेर संस्करण १९५३।
८. हिन्दुस्तानी भाग १५; अंक—१; कवि जान शीर्षक श्री कमल कुलश्रेष्ठ का लेख।
९. राजस्थान का पिंगल साहित्य : पृ० ८२; डॉ० मोतीलाल मेनारिया; ग्रंथरत्नाकर बम्बई, संस्करण।

के ७८ ग्रन्थों का परिचय दिया है, जो यो तो बहुत सामान्य है,[1] पर उक्त सभी विद्वानो के वर्णन-विवरण से अधिक श्रमपूर्वक लिखा गया लगता है, पर उनके वर्गीकरण से भी हमारा मतभेद है[2] तथा ऐसा वर्गीकरण डॉ० श्याममनोहर भी कर चुके हैं।[3] अतः श्री रामकिशोर पर बहुत कुछ छाया डॉ० श्याममनोहर पाण्डेय की ही है।

इस प्रकार अनेक विद्वानों द्वारा प्रेमाख्यानो पर लेखन-कार्य होने पर भी जान कवि के व्यक्तित्व एवं कृतित्व की श्रेष्ठ एवं न्यायोचित प्रस्तुति आज तक कोई नही कर सका और यह विदग्ध कवि आज तक उपेक्षित पड़ा रहा है।

जान कवि को सर्व प्रथम हिन्दी जगत के समक्ष विस्तार में प्रस्तुत करने का श्रेय राजस्थानी साहित्य के प्रसिद्ध शोधक श्री अगरचंद नाहटा तथा श्री रावत सारस्वत को है यह कार्य दोनों ने दो प्रकार से किया है—

(१) पत्र पत्रिकाओ मे जान कवि पर दोनो ने कई लेख लिखकर।[4]

(२) कवि जान के दो प्रसिद्ध ऐतिहासिक काव्यो का सम्पादन एवं प्रकाशन द्वारा।[5]
ये ग्रंथ हैं :—क्यामखा रासो तथा अलिफ खा की पैडी।[6]

(श्री नाहटा जी द्वारा)

श्री रावत सारस्वत के भी जान पर लिखे लेख स्मृतव्य है पर रावत जी ने कवि जान का कोई सम्पादन प्रस्तुत नही किया, जिसकी हमे उनसे पर्याप्त आशा थी। अस्तु–श्रद्धेय अगरचंद नाहटा का कवि जान सबधी कार्य स्तुत्य कहा जाना चाहिए, ऐसा हमारा मत है। कवि जान असूफी कवि थे। विद्वानो ने उनमे सूफी दर्शन भी बताया है, पर जान के प्रेमाख्यानो मे सूफी विचारधारा या सूफी दर्शन का एकदम अभाव है। यो सामान्यत. सूफी और असूफी काव्यो मे कथा-शिल्प मे कुछ साम्य मिल जाता है, पर जान मे शुद्ध सूफी-दर्शन का हमे तो नितान्त अभाव ही लगता है। हो सकता है हमारी विचारधारा से विद्वान् असहमत हो। जान की इन सभी विशेषताओं पर हम अन्यत्र विस्तार मे विचार करेंगे। यो जान की कृतियो

---

१. हिन्दुस्तानी; भाग २४; अंक ४; श्री रामकिशोर मौर्य का लेख—जान कवि और उनकी रचनाएं।

२. देखिए अन्य लेख में लेखक द्वारा प्रस्तुत वर्गीकरण (परिषद् पत्रिका में शीघ्र प्रकाश्य)।

३. मध्ययुगीन प्रेमाख्यान : पृ० १५, निवेदन के अन्तर्गत डॉ० श्याममनोहर का ग्रंथ पर प्रस्तावित वक्तव्य।

४. श्री अगरचद नाहटा के हिन्दुस्तानी, ब्रजभारती तथा राजस्थानी भारती के लेख तथा विश्ववाणी, सरस्वती आदि में श्री रावत जी के लेख।

५. क्यामखां रासो : सम्पादक श्री अगरचंद नाहटा, प्रकाशक प्राच्य विद्या प्रतिष्ठान, जोधपुर।

६. देखिए—क्यामखां रासो के परिशिष्ट में जान कृत ऐतिहासिक काव्य अलिफ खां की पैंडी।

में फारसी की मसनवी शैली अवश्य है, पर शेष सब उनका अपना है। हम सबमें एक विचित्र भ्रांति यह है कि हम अपने प्रेमाख्यानों का मूल सम्बंध प्राकृत अपभ्रंश से न जोड़कर सूफियों से जोड़ते हैं और भारत में जितने प्रेमाख्यान लिखे गये हैं उन्हें आँख मीच कर सूफी कहने लगते हैं।

राजस्थान में असूफी काव्यों की एक अच्छी खासी सृजन-परंपरा रही है। इनमें ढोला मारू से लेकर बीसलदेव रास (१७वी शताब्दी) तक यह परंपरा अपने प्रशस्त सृजन को स्पष्ट करती है। इसी कड़ी मे कवि जान पड़ते हैं, जिन्होंने राजस्थानी व ब्रज में शुद्ध प्रेमाख्यानों का सृजन किया है।

कवि जान का रचना काल सं० १६६९ से १७२१ वि० तक पडता है। कवि जान ने कुल ५३ वर्ष तक साहित्य का अजस्र सृजन किया। जान की सर्व प्रथम कृति तथा कबलावती सवत् १६६९ में रची गई[1] तथा अतिम कृति जफरनामा[2] है, जिसका रचनाकाल सं० १७२१ है। जान के इस समस्त काव्य-वैभव से स्पष्ट होगा कि उनका कर्तृत्व अत्यन्त विशद हैं। उनके सृजन मे से सिर्फ प्रेमाख्यानों को ही लिया जाय, तो यह निस्संकोच कहा जा सकता है कि भारतीय साहित्य मे ही नही, समस्त विश्व के प्रेमाख्यान साहित्य में सर्वाधिक (संख्या में) प्रेमाख्यानो की रचना करने वाले कवि जान ही है। उन्होंने कुल २७ शुद्ध प्रेमाख्यानों की रचना की है और कई शुद्ध विरह-काव्य लिखे हैं। इस तरह जान की सभी कृतियाँ कुल मिलाकर ७८ हैं। जिनमें से एक कृति "संगीत गुण दीप" है जिसकी सूचना दे वर्ष पूर्व प्रकाशित हुई। इस ग्रंथ के शोध करने का श्रेय राजस्थान के श्री श्रीलाल मिश्र को है।[3]

कवि जान के संबंध मे हिन्दी साहित्य के सभी प्रमुख इतिहासकार मौन हैं। गार्सां द तासी (अनु० डॉ० लक्ष्मीसागर वार्ष्णेय)[4], आचार्य शुक्ल,[5] डॉ० रामकुमार वर्मा[6] आदि सभी इतिहासकारों ने अपने इतिहास-ग्रन्थो मे इस महत्त्वपूर्ण कवि का आंशिक जिक्र भी नहीं किया। हाँ, डॉ० हजारी प्रसाद द्विवेदी ने इनके ग्रन्थों की चर्चा कर, उनके गुरु का परिचय दिया

---

१. प्रति—हिन्दुस्तानी एकेडेमी उत्तर प्रदेश इलाहाबाद में संगृहीत।
२. वही।
३. वरदा; वर्ष ५; अंक ३; १९६२ श्री श्रीलाल मिश्र का लेख।
४. हिन्दुई साहित्य का इतिहास (तासी की कृति का अनुवाद); प्रकाशक हिन्दुस्तानी ऐकेडेमी, इलाहाबाद।
५. हिन्दी साहित्य का इतिहास, पृ० १०६–२९, आचार्य रामचन्द्र शुक्ल, सभा संस्करण सं० १९९९।
६. हिन्दी साहित्य का आलोचनात्मक इतिहास; पृ० २९९–३३२ चतुर्थ संस्करण; १९५८ डॉ० रामकुमार वर्मा।

है।[1] आश्चर्य है सभी इतिहासकार जान कवि के संबंध में इतने अनुदार कैसे रहे ? जब कि खोज रिपोर्टों में जान के उल्लेख मिल जाते हैं।[2]

जो हो, जान मध्ययुग के सबसे उपेक्षित कवि रहे हैं। जान कवि के उपलब्ध ग्रन्थों के संबंध में अनेक विद्वानों ने भिन्न-भिन्न संख्याएँ निर्धारित की है। डॉ० मेनारिया ने उनके ७५ ग्रन्थों का उल्लेख किया है।[3] डॉ० कमल कुलश्रेष्ठ ने अपने ग्रन्थ में २१ कृतियों का नाम गिनाया है।[4] राजस्थान में हिन्दी के हस्तलिखित ग्रन्थों की खोज में इनके ग्रन्थों की क्रमशः एक, दस, दो तथा एक नये ग्रन्थों की सूचनाएं मिलती हैं।[5] अपने प्रबंध मे डॉ० सरला शुक्ला[6] ने तथा डॉ० हरिकान्त श्रीवास्तव ने क्रमशः १५ तथा १८ ग्रन्थों का नामोल्लेख किया है।[7] 'कुछ ग्रन्थों का उल्लेख पं० परशुराम चतुर्वेदी ने किया है।[8] डॉ० श्याममनोहर[9] ने तथा श्री रामकिशोर मौर्य[10] ने क्रमशः अपने प्रबंध और अपने लेख मे ११ और ७८ ग्रन्थों का नाम दिया है। इन सभी सूचनाओं[11] से जान के कृतृत्व का ज्ञान तो हो जाता है पर उसके प्रामाणिक ग्रन्थो की पूरी जानकारी नही हो पाती। आजतक कवि जान की सिर्फ तीन काव्य कृतियाँ प्रकाशित हैं और शेष सभी हस्तलिखित एवं अप्रकाशित हैं।

---

१. हिन्दी साहित्य; पृ० २७७; सन् १९५५; डॉ० हजारीप्रसाद द्विवेदी।
२. संक्षिप्त खोज रिपोर्ट; विवरण पृ० ३३९–४०; प्रथम भाग सभा संस्करण, वाराणसी।
३. राजस्थान का पिंगल साहित्य; पृ० ८२; डॉ० मोतीलाल मेनारिया।
४. हिंदी प्रेमाख्यान; पृ० २२–२६; डॉ० कमल कुलश्रेष्ठ।
५. राजस्थान में हिन्दी के हस्तलिखित ग्रंथों की खोज— विद्यापीठ उदयपुर प्रकाशन में
   (१) भाग—१ पृ०—१६८, में रस मंजरी, संपादक—डॉ० मेनारिया।
   (२) भाग—२ तथा ४ में क्रमशः १० और ४ ग्रन्थ, संपादक—श्री अगरचंद नाहटा।
   (३) भाग ३ में सिर्फ १ प्रति कथा सतवंती, संपादक—श्री उदयसिंह भटनागर
६. जायसी के परवर्ती हिन्दी सूफी कवि और काव्य, पृ० (३७४–४१५) डॉ० सरला शुक्ल।
७. भारतीय प्रेमाख्यान काव्य; पृ० ३० तथा १४८; डॉ० हरिकान्त श्रीवास्तव।
८. सूफी काव्य संग्रह, पृ० १५४–१६८, श्री परशुराम चतुर्वेदी।
८. मध्ययुगीन प्रेमाख्यान : पृ० ११२–१३ तथा २६५, डा० श्याममनोहर पांडेय।
९. हिन्दुस्तानी, भाग २४; अंक ४ पर श्री मौर्य का लेख।
१०. हिन्दुस्तानी, भाग २४; अंक ४ पर श्री मौर्य का लेख।
११. देखिए—(१) ब्रजभाषा : रीतिशास्त्र ग्रंथ-कोश पृ० ५३, ५५ तथा ६१, श्री जवाहर लाल चतुर्वेदी, प्रकाशक हिन्दी साहित्य सम्मेलन सन् १९६५।
   (२) हिन्दी साहित्य : पृ० २७७ डॉ० हजारीप्रसाद द्विवेदी ने ७० ग्रन्थों की सूचना दी है।

श्री अगरचंद नाहटा

क्या 'हियहुलास' तानसेन की रचना है ?

'सम्मेलन पत्रिका' भाग ५४ संख्या ३–४ में डा० मदनगोपाल गुप्त का 'संगीतज्ञ तानसेन की दुर्लभ कृतियाँ' नामक लेख प्रकाशित हुआ है। उसमें उन्होंने औरंगाबाद में प्राप्त 'रागरत्नाकर' की प्रति के उत्तरार्द्ध में तानसेन कृत 'संगीतसार' और 'रागमाला' के साथ 'हियहुलास' भी लिखा मिला है। इसलिये इन्होंने उसे तानसेन की रचना मान लिया और हियहुलास के सम्बन्ध में यहां तक लिख दिया कि 'अभी तक हिन्दी साहित्य के खोजी विद्वानों के लिये अज्ञात प्रायः है।' 'हियहुलास' को केवल ३४ दोहों की रचना उन्होंने बतलाई है और लिखा है कि "यह रचना तानसेन की 'रागमाला' तथा 'संगीतकार' की तुलना में आकार के दृष्टिकोण से लघुतर है किन्तु विवेचन के दृष्टिकोण से कहीं अधिक महत्वपूर्ण है। अनेक दृष्टिकोणों से इसका अपना निजी महत्व है क्योंकि केवल ३४ दोहों की इस रचना में उपयुक्त दोनों कृतियों में आनेवाले विवेचन के अतिरिक्त आमेजी रागों का भी वर्णन है। इसकी संक्षिप्तता का कारण अपूर्ण या न्यूनतर विवेचन नहीं है, अपितु उसका सूत्रशैली में लिखा जाना है। इसके महत्व का द्वितीय कारण राग-रागनियों के परस्पर मिश्रण से नये रागों के निर्माण द्वारा संख्या विस्तार का है। इतनी अधिक संख्या और प्रस्तार विवेक का विवेचन इत्यादि विशेषताएँ अन्य ग्रन्थों में नहीं मिलती।"

वह तानसेन की अन्य रचनाओं में पाई जाने वाली कलागत दृष्टिकोण की तात्पर्य एकता के साथ-साथ 'हियहुलास' के तानसेन की प्रमाणिक रचना होने की पुष्टि करते हैं। अन्त में डॉ० मदनगोपाल गुप्त ने अपना निष्कर्ष इन शब्दों में निकाला है कि "हियहुलास संगीत सम्राट तानसेन की प्रमाणिक रचना है और इसका अनुपक्षणीय महत्व है। 'हियहुलास' अब तक अज्ञात प्रायः रचना ही है।"

वास्तव में डॉ० मदनगोपाल गुप्त का यह विवेचन भ्रमपूर्ण है। हियहुलास तानसेन की रचना नहीं है और न अज्ञात प्रायः ही है तथा ३४ दोहों मात्र में ही यह रचना समाप्त नहीं है। इनमें ७० गद्य हैं जिनमें ६ सवैये भी हैं।

'हियहुलास' अवश्य ही संक्षिप्त होने पर भी महत्व की रचना है। इसीलिये हिन्दी साहित्य में सुप्रसिद्ध लल्लूजी लाल ने अपने 'सभा बिलास' ग्रंथ में इसे संग्रहीत किया, और 'सभा बिलास' बहुत प्रसिद्ध ग्रन्थ है। संवत् १९१७ का छपा हुआ इसका एक संस्करण हमारे

संग्रह में है जिसके अन्त में 'हियहुलास' के ७० पद्य छपे हैं। दूसरा संस्करण श्री वैंकटेश्वर प्रेस से संवत् १९७८ मे प्रकाशित हमारे संग्रह में है जिसे खेमराज श्रीकृष्णदास ने बदरका निवासी पं० कृष्णबिहारी शुक्ल से शुद्ध करवा के प्रकाशित करवाया। इसमें भी 'हियहुलास' के ७० पद्य छपे हैं। इसके बाद लल्लूजी लाल की 'सभा विलास' की प्रशस्ति प्रकाशित हुई है जिससे मालूम होता है कि उन्होंने यह सग्रह-ग्रन्थ सवत् १८७७ के माघ सुदि ९ को तैयार किया था—

संग्रह कर कवि लाल ने, रच्यो काव्य रस रास।
धरयो नाम या ग्रन्थ को, याते सभाविलास ॥१
यदपि काव्य भूषण सहित, दुर्जन दोषत ताहि।
बिगरे बेत बनाय है, सज्जन साधु सराहि ॥२
नग ऋषि वसु चन्द्र ही गनो, संवत को परमाण।
माघ शुक्ल ५ रवौ, कियो ग्रन्थ निरमाण ॥३

इतिश्री लल्लूजी ब्राह्मण गुजराती सहस्र अवदिच आगरे वासी कृत सभाविलास संम्पूर्ण।

'हियहुलास' का खोज रिपोर्टों मे सबसे पहला उल्लेख सन् १९२९ की ३१ वी १४वी त्रैवार्षिक विवरण के तृतीय परिशिष्ट मे अज्ञात रचनाकारो के ग्रन्थो की सूची में न० ३८८ मे हुआ था। इसके रचयिता के अज्ञात होने से विवरण नही दिया गया। पर सन् १९४१ की रिपोर्ट मे इसका केवल विवरण ही नही दिया, परपूरा 'हियहुलास' ग्रन्थ ही प्रकाशित कर दिया गया। उसमें इसका रचयिता लाल कवि (सग्रहकार) और रचनाकाल स० १८७० दिया गया है। प्रकाशित पद्यो की सख्या ७० है। उसके बाद प्रकाशित सस्करण वाले ३ दोहे दिये हैं जिसमें ग्रन्थ की रचनाकाल वाला वाक्य कुछ अशुद्ध एवं गडबड है, पर है वह 'सभाविलास' इसका का ही अन्तिम अश । लल्लूजी लाल का स्पष्ट उल्लेख न होने से अन्तिम पद्य के अनुसार रचयिता यहाँ लाल कवि मान लिया गया है।

उपरोक्त खोज करने के बाद बीकानेर के बडे उपाश्रय के 'महिमा भक्ति ज्ञान भण्डार' में मुझे 'हियहुलास' की एक सटीक प्रति मिली जिसमे ६७ पद्य हैं और सक्षिप्त टीका मे ग्रन्थ के भावो को गद्य मे स्पष्ट किया गया है। इस प्रति के प्रारम्भ मे इसका नाम "राग' रूपमाला और अन्त मे 'हियहुलास ग्रन्थमाला' दिया हुआ है। टीका के आदि और अन्त की दो-दो पक्तियाँ नीचे दी जा रही है—

आदि—अथ रागमाला की टीका लिख्यते—याको विचार याही मे याकी मूर्छना याही में तीन ग्राम सप्त स्वर याहि मे ग्राम १ ग्राम २ ग्राम ३। दूहा—(प्रथम हि ताको समझिये।)

अन्त—रागिनी पाचमी केदार वखत घटी २ मारज्या १ मारु वखत घटी २। इति रागमाला राग ६ रागिनी ३० मारज्या ४८ सर्व मिलि ८४ नाम सपूर्ण।

'हियहुलास का' एक और संस्करण लक्ष्मी वेंकटेश्वर प्रेस से (१ रुपए में प्रकाशित) 'बृहद् रागरत्नाकर' नामक ग्रन्थ मे प्रकाशित हुआ है। इस ग्रन्थ को लाला भक्तराम ने संगृहीत किया इसके पृष्ठ २८५ से ३००में 'हियहुलास' ग्रन्थ का परिवर्द्धित बृहद् सस्करण छपा है। डॉ० मदनगोपाल गुप्त ने तानसेन की 'रागमाला' की एक प्रति का उल्लेख करते हुए लिखा है कि "रागमाला की जो प्रति लेखक के देखने मे आई है उसके अन्त मे ५५५ आमेजी राग-रागिनियों की सख्या का निर्देश है जो कि अन्य प्रतियों मे नही मिलती। इस सुप्रसिद्ध तथा दुष्प्राप्य प्रति मे राग-रागिनियों का विस्तृत वर्णन है जिसमे सबसे अधिक उल्लेखनीय बात विभिन्न रागों के मिश्रण से निर्मित अनेक शकररागों का शास्त्रीय विवेचन है। तानसेन ने इन्हे आमेजी राग कहा है। रचना के अन्त मे प्रतिलिपिकाल के साथ ही ६ राग, रागिनी ३०, राग-रागिनी ३६, ए मिलिकें आमेजी राग-रागिनी ९९९ मियाँ तानसेन गाईं। सवत् १८५५ चैत्र बदि २ शुक्रवार इति।"

उपरोक्त 'बृहद् रागरत्नाकर' मे 'हियहुलास' के ७६ पद्य देने के बाद आमेजी राग वर्णन ७७वें पद्य से १२७ पद्य तक मे है। उसके आदि और अन्त के दो पद्य नीचे दिये जा रहे हैं:—

अथ आमेजी रागवर्णन

दोहा— राग रागनी सब कहे, जैसी जाकी रीति॥
अब आमेजी राग को, सुनौ सकल करि प्रीति॥७७॥
अन्त— आमेजी ये राग हैं, कहैं गरतिजन गाय।
भेद राग अरु रागिनी, ए सब दिये बताय॥१२७॥

डॉ० मदनगोपाल गुप्त ने तानसेन सम्बन्धी जिन प्रकाशित (डॉ० अग्रवाल और नर्मदेश्वर के) ग्रन्थो का उल्लेख किया है। इन ग्रन्थों मे तानसेन पद के और 'सगीतकार' तथा रागमाला प्रकाशित हुई हैं, पर इनके अतिरिक्त जिन दो महत्वपूर्ण ग्रन्थो की डॉ० गुप्त को जानकारी नही है—वे है सगीत कार्यालय हाथरस से प्रकाशित, तानसेन ग्रन्थ और श्री प्रभुदयाल मित्तल का सगीत-सम्राट तानसेन (जीवनी और रचनाएँ)। मित्तलजी का ग्रन्थ पूर्व प्रकाशित ग्रन्थों से अधिक महत्व का है। उसमे तानसेन के २८८ पद, संगीतसार (पद ३३०) और रागमाला (पद ३०८) तथा परिशिष्ट मे तानसेन के पुत्रों की रचनाएँ भी दे दी गई हैं। यहाँ एक आवश्यक सूचना दे देना भी जरूरी समझता हूँ कि 'सगीतकार' और 'रागमाला' मे बहुत से पद्य एक ही हैं। मालूम होता है कि किसी पिछले संगीतज्ञ ने कुछ परिवर्तन-परिवर्द्धन करके अपनी रुचि के अनुसार दो अलग-अलग ग्रन्थ तैयार कर दिये। अत: दोनों रचनाओ का तुलनात्मक अध्ययन आवश्यक है।

यह तो अत्यन्त स्पष्ट है कि 'हियहुलास' (जैसा कि डॉ० गुप्त ने माना है) तानसेन रचित नही है। क्योंकि 'सगीतकार' और 'रागमाला' दोनों रचनाओं के कई पद्यों में तानसेन का नाम मिलता है, पर 'हियहुलास' मे कही भी तानसेन का नामोल्लेख नही है।

तानसेन के पद मित्तलजी ने जितने भी प्राप्त हो सके, अपने ग्रन्थ मे सग्रहीत कर लिये और सुसम्पादित करके प्रकाशित कर दिये। पर हस्तलिखित फुटकर प्रतियों में इनके अतिरिक्त और भी कई पद मिलते हैं, जिनमे से कुछ को मैंने 'मध्यप्रदेश संदेश' में कई वर्ष पहले तानसेन सम्बन्धी अपने लेख मे प्रकाशित किये थे, उसके बाद भी कुछ पद प्राप्त हुए हैं। विभिन्न प्रतियों मे तानसेन के पदो में पाठ भी काफी भिन्न मिलता है। अतः हस्तलिखित प्राचीन प्रतियों की खोज करके पाठ-भेद के साथ तानसेन के पदों का प्रकाशन किया जाना आवश्यक है। बीकानेर की 'अनूप संस्कृत लाईब्रेरी' मे १८वी शताब्दी की एक प्रति है, जिसमें जगन्नाथ एवं तानसेन के ध्रुपद लिखे हुए हैं। वैसे अन्य प्रतियो मे भी अन्य कवियो के पदादि रचनाओं के साथ तानसेन के पद मिलते हैं। हस्तलिखित प्रतियाँ अनेक स्थानो मे बिखरी पडी है। तानसेन के पदो का काफी प्रचार रहा है। विशेषतः संगीतप्रेमियो ने तो तानसेन के जो भी पद जहाँ सुने, कंठस्थ कर लिये और किसी ने लिख लिये। इसलिये विभिन्न संग्रहालयो की हस्तलिखित प्रतियो के साथ-साथ संगीतज्ञो के घरानो मे जो गायकी के पद कंठस्थ हों, उनका भी प्रयत्न पूर्वक सग्रह करना चाहिए।

सम्भव है तानसेन की अधिक प्रसिद्धि के कारण कुछ पद उनके नाम से अन्य संगीतज्ञों ने भी बनाकर प्रकाशित कर दिये हो, इसलिये कौन से पद वास्तव मे तानसेन रचित हैं। इसका निर्णय सूक्ष्म विवेक और विशेष सावधानी से किया जाना अपेक्षित है।

तानसेन की जीवनी के सम्बन्ध मे भी कई बातें विचारणीय हैं। किंवदन्तियो की प्राचीनता और प्रमाणिकता अन्वेषणीय है। बहुत सी बातो में जो मतभेद है, उसकी भी जाच कर, तटस्थवृत्ति से विचार करके निर्णय करना आवश्यक है।

ग्वालियर मे प्रतिवर्ष तानसेन सम्बन्धी समारोह मनाया जाता है और उसमे काफी संगीतज्ञ इकट्ठे होते हैं। उन सबका ध्यान भी तानसेन की जीवनी और रचनाओ की खोज की ओर जाना चाहिए। इस समय विद्वानो को बुलाकर एक गोष्ठी का आयोजन किया जाय जिसमे विवादग्रस्त विषयो पर गहराई से विचार किया जाय। इससे नई खोज मे विशेष प्रगति होगी। 'वादे-वादे जायते तत्वबोध'।

तानसेन की जीवनी के सम्बन्ध मे आइने-अकबरी आदि मुसलिम इतिहास-ग्रन्थों को ही विशेष महत्व दिया जाता है, पर हिन्दुओं के इतिहास-ग्रन्थो मे भी तानसेन सम्बन्धी कुछ उल्लेख खोजने पर प्राप्त हो सकते हैं। आखिर अपने समय के इतने बड़े और प्रसिद्ध संगीतज्ञ का सम्बन्ध उस समय के बहुत से लोगो के साथ रहा होगा। उनमें से कुछ ने या उनके आश्रित विद्वानो ने तानसेन का उल्लेख किया होगा, उनकी ओर विशेष ध्यान देना आवश्यक है। तानसेन के समकालीन संगीतज्ञों की पदादि रचनाओ की भी भली-भाँति खोज की जानी चाहिए जिससे तत्कालीन भाषा, शैली आदि की ठीक से जानकारी मिल सके। सम्राट् अकबर, जहाँगीर आदि के भी कुछ पद अनूप संस्कृत लाइब्रेरी आदि की प्रतियो में पाये जाते हैं। तानसेन के पदों का सांगोपाग अध्ययन करने से कुछ नवीन जनानकारी प्रकाश में आ सकती है।

डाक्टर हर्षनन्दिनी भाटिया

नारी-प्रसाधन में सोलह शृंगार की परम्परा का विकास

'प्रसाधन' या 'शृंगार' एक कला है। 'शृंगार' शब्द का प्रयोग सामान्यतः वस्त्रा-भूषण द्वारा स्त्रियों के शरीर को सुसज्जित करने, अलंकार धारण करने या सजावट के अर्थ में होता है। सौभाग्य और सौन्दर्य का प्रतीक 'सिन्दूर' भी शृंगार का पर्यायवाची समझा जाने लगा। मानव में प्रसाधन की प्रवृत्ति आरम्भ से ही पायी जाती है। बुद्धिवादी मानव अपने शरीर की ओर से नितांत निरपेक्ष नहीं रह सकता। सृष्टि की प्रारम्भिक रचना से ही सभी स्थानों पर मानव मे प्रसाधन की ओर झुकाव पाया जाता है। सिन्धु घाटी की सभ्यता का अध्ययन करने से भी जान पड़ता है कि लोग शरीर की स्वच्छता को भी उतना ही महत्त्व देते थे जितना धर्म को। मोहनजोदड़ो तथा हड़प्पा की खुदाई से प्राप्त अवशेषों मे अनेक ऐसे प्रमाण मिले है, जिनसे सिद्ध होता है कि उस आदि युग में भी मानव का ध्यान प्रसाधन तथा अलकरण की ओर गया था। प्राकृतिक वातावरण मे सर्वप्रथम ध्यान प्रकृति मे प्राप्त तथा सुलभ वस्तुओं की ओर ही गया था। वातावरण मे प्राप्त वस्तुएँ ही उनके अलंकरण का माध्यम बन गई। सोने, चाँदी, नगो आदि से निर्मित अनेक प्रकार के गहने प्राप्त हुए है। प्राप्त गहनो[1] के प्रकार ये है—अ. माथे पर गोलाई मे बाँधने के लम्बे सुनहले पात जो पतले फीते की भाँति हैं। इनके दोनों सिरों पर बाँधने के लिए महीन सूराख हैं। आ. सोने के कुलफीनुमा कर्णाभरण, कटि प्रदेश की मेखला, हरियाले यशब के मोटे मनको को पिरोकर बनाये हुए हार, सोने के मटर जैसे दानों की मटरमाला, अँगूठियाँ, कानो की बाली, हाथ के कंगन और कड़े।

सबसे महत्त्वपूर्ण तथ्य यह है कि जूड़े में प्रयुक्त होनेवाले विभिन्न प्रकार के काँटे[2]

---

१. डॉ० वासुदेवशरण अग्रवाल—भारतीय कला, पृथिवी प्रकाशन, वाराणसी, १९६६ ई०, पृ० ३९।

२. डा० अग्रवाल ने इन काँटों के सात प्रकार बताये हैं। (१) दो कृष्ण मृग पीठ फेरे हुए—आकृति (२) सिरे पर आमने-सामने दो चिरारे, (३) हाथी दाँत के बने एक मूने के सिरे पर एक बड़े सींगवाली पहाड़ी बकरी की आकृति (४) तीन बन्दर गलबहियों की मुद्रा में (५) कमल के फुल्ले की कर्णिका, (६) कुत्ते जैसे सिर की आकृति, (७) अन्य विभिन्न आकृति।

तथा हाथी दाँत की सुरमे की शलाकाएं, कघी, दर्पण की मूठ, डिबिया आदि भी मिलती हैं, जिनसे उस युग की प्रसाधन-कला के स्पष्ट रूप का पता चलता है।

महाभारत काल मे प्रसाधन-कार्य मे पटु महिला 'सैरन्ध्री' कहलाती थी। (विराट पर्व ३।१८।१९) द्रौपदी का यही रूप विराट पर्व मे मिलता है। अनेक प्रकार के अलकारों के प्रयोग मिलते हैं—स्वर्णमाला, कुडल, मणिरत्न, निष्क (गले का हार), कम्बू, केयूर। भौंवो के बीच मे कृत्रिम चिह्न बनाने की प्रथा थी। यह कृत्रिम चिन्ह 'पिप्ल' कहलता था। अस्या ह्येष भ्रुवोर्मध्ये सहज. पिप्लुरुत्तम.। (वन पर्व ६९।५) सभा पर्व मे चन्दन के लेप की, आदि पर्व मे तुग नामक सुगधित द्रव्य मे काले अगरु को मिलाने की प्रथा का उल्लेख है। चन्दन, बेलफूल, तगर, बकुल आदि पुष्पो से सज्जित होने की प्रथा का उल्लेख मिलता है। केश-प्रसाधन तथा अजन का स्पष्ट उल्लेख मिलता है—[1]

प्रसाधनञ्च केशानामांजनं दन्तधावनम्।
पूर्वाह्न एव कार्याणि देवतानाञ्च पूजनम्॥

आरण्यक मे उल्लेख मिलता है कि नारी बहुमूल्य मालाएँ, आभूषण और अगरागो से तथा पवित्र सुगन्धित द्रव्यो मे शोभित होकर अपने पति की आराधना करे—

महार्हमाल्याभरणाङ्गरागा भर्तारमाराध्यति पुण्यगन्धा।

पति की अनुपस्थिति मे नारी की मनोदशा खिन्न रहती है। अनुशासन मे इसका उल्लेख मिलता है जिसमे स्पष्ट रूप से 'प्रसाधन' शब्द का प्रयोग मिलता है. पति के जाने पर अजन, रोचन, स्नान, मालाएँ, उबटन और प्रसाधन मे नारी की रुचि नही रहती—[2]

अंजनं रोचनां चैव स्नानं माल्यानुलेपनम्।
प्रसाधनं च निष्क्रान्ते नाभिनन्दामि भर्तरि॥अनु० २८५।३०

शरीर को रमणीय बनाने की प्रक्रिया सदा से समाज मे महत्त्वपूर्ण रही है। इस प्रक्रिया से शरीर को स्वच्छ रखना तथा उसकी सौन्दर्य-वृद्धि करना मुख्य उद्देश्य रहा है। कालान्तर मे स्वास्थ्य की दृष्टि से भी इसको हितकर समझा जाने लगा। प्रकृति-प्रदत्त वस्तुओ का ही उपयोग प्रारम्भ मे किया जाता था। मन.शिला, सिन्दूर, अजन आदि मुख्य है। अजन से नेत्रों की ज्योति बढ़ती है और साथ ही नेत्रों का सौन्दर्य भी बढ़ता है। श्रीमद्भागवत मे भी सुन्दर वस्त्र, आभूषणो के साथ अजन का स्पष्ट उल्लेख मिलता है—

---

१. सुखमय भट्टाचार्य— महाभारतकालीन समाज, लोकभारती प्रकाशन, इलाहाबाद, सन् १९६६।

२. डा० बनमाला—महाभारत में नारी, अभिनव साहित्य प्रकाशन, सागर, सं० २०२१ पृष्ठ ३४४।

आत्मानं भूषयाञ्चक्रुर्वस्त्राकल्पाञ्जनादिभिः । १०।५।२९

कृष्ण भी मुरली की ध्वनि सुनकर किस प्रकार श्रृंगार करती हुई गोपियाँ कृष्ण के पास चली गईं, उसका वर्णन करते हुए श्रृंगार का स्पष्ट उल्लेख मिलता है :—

लिम्पन्त्यः प्रमृजन्त्योऽन्या अञ्जन्त्यः काश्च लोचने।
व्यत्यस्तवस्त्राभरणाः काश्चित्कृष्णान्तिकं ययुः ॥१०।२९।७

(कोई चन्दन लगा रही थी, कोई उबटन मल रही थी और कोई नेत्रों में अजन आँज रही थी—वे सब अपना-अपना श्रृगार छोड़कर चल दी, कोई उतावली के कारण शरीर मे उल्टे-सीधे वस्त्राभूषण पहन कृष्णचन्द्र के पास चली गई।)

बौद्धकालीन समाज मे सभी प्रकार के प्रसाधनों का उल्लेख मिलता है। नेत्रों की सुरक्षा के लिए अजन प्रायः लगाते थे—कालाँजन, रसाजन, स्रोताजन, गेरूक तथा कप्पल कोटि के द्रव्यों का उपयोग होता था (महावग्ग ६ ११)। कप्पल दीपशिखा से उत्पन्न काजल था। गेरुक स्वर्ण गैरिक था। स्रोताजन नदियों के सोतो से निकलता था। अजनों को सुगन्धित करने के लिए उनमे चदन, तगर, मद्रमुक्तक आदि द्रव्य मिलाये जाते थे। नेता अञ्जनमक्खिता (थेर० १६।४), आँखो मे अजन इस प्रकार आकर्षक ढग से लगाया जाता था कि नेत्रो के किनारे पर अजन की बारीक रेखा अकित हो जाती थी (चुल्ल ०३८७)[1]। अजन के अतिरिक्त 'विलेपन' का विशेष उल्लेख मिलता है। नारियाँ तेल, घी, मक्खन आदि से शरीर की मालिश करती थी, तत्पश्चात् लोध्रचूर्ण तथा लोध्रपुष्प आदि सुगन्धित द्रव्यों से शरीर को सुवासित करती थी। तदनन्तर स्नान किया जाता था। प्रसाधन की दृष्टि से हरिचन्दन को उत्तम माना जाता था।[2] चेहरे पर मैनसिल लगाकर रजित किया जाता था। ओठों पर लालिमा लाने के लिए नन्दी चूर्ण का प्रयोग किया जाता था।[3]

मुखं चुण्णोन्ति मनोसिलिकाय मुखं लञ्छेन्ति। चुल्लवग्ग ३८६।
नन्दी चुण्णगाइ पाइराहि। सूयगडं १।४।२।१७।

कपोल पर विशेष चिह्न विशेषक कहलाता था। विसेसक करोन्ति।

पालि ग्रथ 'ब्रह्मजाल सुत्त' मे बीस प्रकार के प्रसाधन[4] का उल्लेख मिलता है—

---

१. डा० रामजी उपाध्याय—प्राचीन भारतीय साहित्य की सांस्कृतिक पृष्ठभूमि, ।
२. डा० कोमलचंद जैन—बौद्ध और जैन आगमों में नारी जीवन, सन् १९६७, पृष्ठ २०५-२०६ ।
३. वही, पृष्ठ २०७ ।
४. डा० भुवनेश्वर प्रसाद गुरुमैता—वर्णरत्नाकर का सांस्कृतिक अध्ययन, पंजाब वि० वि०, अप्रकाशित शोधप्रबन्ध, १९६५, पृष्ठ ९९४ ।

१. उत्पादन (सुगंधित लेप को शरीर पर मलना), २. परिमर्दन (शरीर को दबाना) ३. स्नान, ४. संवाहन, ५. आदर्श, ६. अंजन लगाना, ७. मालाधारण करना, ८. मुख पर चूर्ण लगाना, ९. मुखालेपन, १०. हस्तबंध, ११. शिखाबंधन, १२. दण्डधारण करना, १३. नालिका धारण, १४. खड्ग धारण १५ छत्र धारण, १६. उपानह पहनना, १७. उष्णीश बाँधना, १८. मणि-रत्न धारण, १९. पंखा या चंवर, २०. सोने-चाँदी के तारों की कलाबत्तू।

सुश्रुत-संहिता में शरीर को स्वस्थ तथा नीरोग रखने के लिए २४ प्रकार के कार्यों का उल्लेख मिलता है जिनमें से कुछ प्रसाधन ही हैं, जैसे, दन्तधावन, आँख और मुख का प्रक्षालन, अंजन लगाना, पान खाना, सिर पर तैल की मालिश, बालों की कंघी, उत्सादन, स्नान, अनुलेपन, रत्न, फूल और धुले हुए वस्त्र पहिनना, आलेप, नखो पर पालिश या रँगना आदि। शुक्रनीति में स्पष्ट उल्लेख है कि मनुष्य को प्रति दिन स्नान करना चाहिए। अग्निपुराण मे शरीर की दुर्गन्धि को दूर करने के लिए जो आठ प्रकार बताये गये हैं, वे प्रसाधन ही हैं।[1]

वात्स्यायन के कामसूत्र में नागरिकों के शृंगार का विस्तार से वर्णन मिलता है। प्रथम अधिकरण के चौथे अध्याय में प्रसाधन (अलक्तक) का उल्लेख मिलता है। पति के पास जब आने की इच्छा हो तो अनेक प्रकार के आभूषण, विविध प्रकार के सुगन्धित लेप और अंगराजग धारण कर चमकते हुए धवल वस्त्र पहन कर जाना चाहिए—

'बहुभूषणं विविधकुसुमानुलेपनं विविधांगरागमुज्ज्वलं वास इत्याभिगामिको वेष:'

मेघदूत की टीका मे मल्लिनाथ ने प्रसाधन के विविध प्रकारों का एकचारिणी वृत्त प्रकरणम् ४।१।२४ में स्पष्ट उल्लेख किया है .

कचधार्यं देहधार्यं परिधेयं विलेपनम् ।
चतुर्धा भूषणं प्राहुः स्त्रीणामन्यच्च दैशिकम् ।

कचधार्य—वेणी या केश रचना। देहधार्य—शरीर का शृंगार करना। परिधेय—वस्त्रों को धारण करना तथा उनको सजाना। विलेपन—विभिन्न प्रकार के अंगराग, उबटन, तेल आदि लगाना जिससे शरीर के स्वास्थ्य तथा सौन्दर्य की वृद्धि हो।

शिशुपालवध, कादम्बरी, हर्षचरित, कर्पूरमंजरी, अमरुशतक आदि ग्रन्थों में नारी-शृंगार तथा प्रसाधन संबंधी विपुल सामग्री भरी पडी है। हर्षचरित मे प्रसाधन का चित्रमय वर्णन मिलता है—समुण्डमालिका., सकर्णपल्लवा , सचन्दनतिलका', समुच्छ्रिताभिर्वलयावलीवाचालाभि. बाहुलतिकाभिः सवितारम् इव आलिंगयन्त्य· कुङ्कुमप्रसृष्टिरुचिरकायाः (सिर

---

१. अत्रिदेव विद्यालंकार—प्राचीन भारत के प्रसाधन, भारतीय ज्ञानपीठ, काशी, सन् १९५८, पृष्ठ २९।

पर पुष्पमाला, कानों में पल्लव, माथे पर चन्दन-तिलक लगाये, चूड़ियों से भरी हुई भुजाओं को ऊपर उठाये पैरों में पड़े हुए बाँके नूपुरों (पदहंसक) को बजाती हुई)। इस ग्रन्थ में ही सिन्दूर की डिबिया, कर्णाभूषण कर्णपूर तथा धम्मिल का विशद वर्णन मिलता है। दृष्टिदोष की रक्षा के लिए 'कौतुक' चिह्न काजल से अंकित किया जाता था। प्रत्येक प्रसाधित नारी माल्याभरण को अवश्य धारण करती थी। जम्बूद्वीप प्रज्ञप्तिटीका, निशीथसूत्र आदि जैन सूत्र ग्रन्थो में १४ प्रकार के आभूषणों का उल्लेख मिलता है। प्रसाधन सामग्री सुरमेदानी, लोध्रचूर्ण, लोध्रपुष्प, होंठ रचाने का चूर्ण (नंदिचूण्ण), सिर धोने के लिए आँवला (आमलग) माथे पर बिन्दी लगाने के लिए तिलककरणी, आँखों को आँजने के लिए सलाई (अंजनसलागा) क्लिप (संजासग) कंघा (फणिह) रिबन (सीहलिपासग), शीशा (आदसंग), सुपारी (पूयफल) तथा तांबूल का विवरण मिलता है।[1]

ललितविस्तर में अनुलेपन के अतिरिक्त सुगन्धित जल, सुगन्धित तैल, चन्दन के सुगन्धित चूर्ण और अन्य मधुर गन्धवाले द्रव्यों का उल्लेख मिलता है। पुरुष की अपेक्षा नारी की प्रसाधन सामग्री बढ़ती गयी और कालान्तर में 'षोडश शृंगार' की परम्परा का विकास हुआ। यह सख्या सोलह ही क्यों मानी गई और किसने इसका सर्वप्रथम प्रयोग किया, यह नहीं कहा जा सकता पर इतना निश्चित है कि अनेक प्रकार के प्रसाधनों का विवरण मिलता है। संभवतः १०वी शताब्दी के अनन्तर किसी ने इनको सोलह की संख्या मे बाँध दिया। आगे चलकर संख्या की दृष्टि से सोलह चलती रही, चाहे सामग्री मे अन्तर क्यों न हो। आगे के विवरण से यह स्पष्ट हो जाएगा कि शृंगार-व्यवस्था में पर्याप्त अन्तर मिलता है। जहाँ तक षोडश शृंगार के अर्थ का संबंध है यह संख्यावाचक न होकर गुणवाचक या पूर्णतावाचक अधिक है। भारतीय धर्मशास्त्र में सोलह की संख्या का विशेष महत्त्व है। पूर्ण चन्द्र की सोलह कलाएँ मानी गई हैं। मानव षोडश कलात्मक है। संस्कारों की संख्या १६ है तथा भगवद्चर्या में षोडशोपचार को अर्चा की पूर्णता के रूप में स्वीकार किया गया है। संभवतः इसी आधार पर प्रसाधनो की संख्या भी पूर्णता की दृष्टि से सोलह स्वीकार कर ली गई।

उपर्युक्त विवरण से यह सिद्ध हो जाता है कि संस्कृत, प्राकृत तथा पालि भाषाओं में शृंगार की दीर्घ परम्परा का उल्लेख मिलता है पर षोडश शृंगार की परम्परा अधिक प्राचीन प्रतीत नही होती। अब तक की खोजों के आधार पर इसका सबसे पहला उल्लेख वल्लभदेव[2]

---

१. डा० जगदीशचन्द्र जैन—जैन आगम साहित्य में भारतीय समाज, चौखम्भा विद्याभवन, वाराणसी, सन् १९६५, पृ० १५४।

२. डा० पी० के० गोडे—द एन्टिक्युटी अव् द हिन्दू नोज आर्नामेंट काल्ड 'नथ'

एनल्स अव् भण्डारकर ओरियण्टल रिसर्च इन्स्टिट्यूट, जुलाई १९३८, ३१३-१३३४। प्रकाशित लेख से उद्धृत। गोडे महोदय ने वल्लभदेव को १५वीं शताब्दी से पूर्व का माना है जबकि पीय महोदय १५वीं शताब्दी का स्वीकार करते हैं—

चैत्र-माघयव, शक १८९२]

की सुभाषितावली (१५वीं शताब्दी)में मिलता है। यह श्लोक किस काल का है, यह बात भी निश्चयपूर्वक नहीं कही जा सकती है पर निश्चित रूप से वल्लभ से पूर्व रचित है और १०वी शताब्दी के बाद का है क्योंकि इसमें 'नासामौक्तिक'[1] का प्रयोग मिलता है। यह श्लोक इस प्रकार है—

आदौ मज्जनचीरहारतिलकं नेत्राञ्जनं कुण्डले
नासामौक्तिककेशपाशरचना सत्कञ्चुकं नूपुरौ।
सौगन्ध्यं करकङ्कणं चरणयो रागो रणन्मेखला
ताम्बूलं करदर्पणं चतुरता शृंगारकाः षोडशाः ॥

ये शृंगार इस प्रकार हैं : (१) मज्जन, (२) चीर, (३) हार, (४) तिलक, (५) अंजन, (६) कुण्डल, (७) नासामौक्तिक, (८) केशपाश रचना, (९) कंचुक, (१०) नूपुर, (११) सुगन्ध (१२) कंकण, (१३) चरणराग, (१४) मेखलारणन, (१५) ताम्बूल। (१६) करदर्पण, आरसी।

यहाँ यह उल्लेखनीय है कि रूपगोस्वामी ने उज्ज्वलनीलमणि[2] के राधाप्रकरण में जिन शृंगार-प्रसाधनों का उल्लेख किया है वे वल्लभदेव द्वारा उद्धृत शृंगारों से कुछ भिन्न हैं :

"वल्लभदेव ने सम्भवतः १५वीं शताब्दी में सुभाषितावली को १०१ खण्डों में संकलित किया, जिसमें ३५० कवियों के ३५२७ पद्य सन्निविष्ट हैं।" कीथ—संस्कृत साहित्य का इतिहास, अनुवाद, पृष्ठ संख्या २६७।

१. डा० पी० के० गोडे का उपर्युक्त लेख जिसमें उन्होंने विद्वत्तापूर्ण ढंग से यह सिद्ध किया है कि नाक के आभूषणों का प्रयोग ११वीं शताब्दी से पूर्व नहीं किया गया था। इस संबंध में डा० वासुदेवशरण अग्रवाल ने भी लिखा है,
'नाक की कील'—लौंगली या नथ का एक भी नमूना नहीं है क्योंकि यह गहना मुस्लिमकाल से पहले प्राचीन भारत में कहीं भी नहीं पाया जाता।' डा० वासुदेवशरण अग्रवाल—भारतीय कला, सन् १९६६ पृ० ३९।

२. रूपगोस्वामि—उज्ज्वलनीलमणि, सं०महा०दुर्गा प्रसाद, निर्णयसागर बम्बई, सन् १९३२, पृष्ठ ७७। वल्लभदेव तथा रूपगोस्वामी के आधार पर संभवतः चतुर्भुजदास ने 'मधुमालती' में सोलह शृंगार का वर्णन किया है—

सज्या कीनो सोला सिणगारा :
अंजन चीर रच्या उर हारा। कर कंकण नेवर झणकारा।
तिलक भाल नैना दिए अंगन। माला मुगताफल मनरंजन।
तन चंदन 'उर' कंचुकि तरकै। कटि पर छुद्र घंटिका चलकै ॥।
मुख तंबोल बीरी मुख डारी। मानुं फिर पंकज निरवारी।
अति चातुर मुख सोभा सोहै। जित चितवै तित ही मन मोहै ॥
ना० प्र० सभा, सं० २०२१, पृ० ४३

स्नाता नासाग्रजाग्रन्मणिरसितपटा सूत्रिणी बद्धवेणिः
सोत्तंसा चर्चितांगी कुसुमितचिकुरा स्रग्विणी पद्महस्ता।
ताम्बूलस्योरुबिन्दुस्तबकितचिबुका कज्जलाक्षी सुचित्रा
राधालक्तोज्ज्वलांघ्रिः स्फुरित-तिलकिनी षोडशाकल्पिनीयम् ॥

—उज्ज्वलनीलमणि, राधा-प्रकरण, श्लोक ९।

इस श्लोक में वर्णित १६ शृंगार इस प्रकार हैं: (१) स्नान, (२) नासामणि (संभवत· यही नथ का उद्गम हो), (३) असितपट (४) सूत्रिणी (करधनी), (५) वेणी बन्धन, (६) कर्णावतंस, (७) अंगों को चर्चित करना, (८) बालों में पुष्प-माला लगाना, (९) हाथों मे कमल लेना, (१०) माला धारण करना, (११) पत्रावली रचना, (१२) पान खाना, (१३) चिबुक मे बिन्दु अंकित करना, (१४) नेत्रों मे काजल लगाना, (१५) आलक्तक, (१६) तिलक लगाना।

रूपगोस्वामी जी का काल १५३३ ई० है। इससे प्रकट होता है कि वल्लभदेव के बाद रूपगोस्वामी तक आते-आते कितना अन्तर हो गया। इस ग्रन्थ की टीका में जीवगोस्वामी ने 'सूत्र', 'उत्तस', 'उरुबिन्दु' तथा 'चित्र' पर टिप्पणी लिखी है जो क्रमशः इस प्रकार है 'सूत्रं नीवीबद्धडोरीं प्रतिसरो वा', 'उत्तसः कर्णावतंसः' 'उरुबिन्दुः कस्तूरीरसनवकः' 'चित्रं मकरीपत्रभगादि।'

यहाँ यह भी उल्लेखनीय है कि इस ग्रन्थ मे पहली बार बारह आभरणों की संख्या भी पृथक् से गिनायी गई है जिसके आधार पर ही सूफी कवियों ने सोलह शृंगार तथा बारह आभरण की परम्परा का विकास किया।

'अस बारह सोरह धनि साजै।'—जायसी ३००।१

ढोला मारू रा दूहा तथा विद्यापति ने भी सोलह शृंगार का उल्लेख किया है पर उनका विवरण नहीं दिया है—

लये अभरन कए शोडश सजनि गे, पहिर तिम रंग चीर।

—विद्यापति पदावली

सुंदर सोल सिंगार साजि, गई सरोवर पाछे।

—ढोला मारू रा दूहा, छन्द ३९४

सोलह शृंगार तथा बारह आभरणों का विस्तार से प्रयोग तथा विवरण सूफी कवियों ने किया है। जायसी पूर्व भी कई कवियों ने इसका वर्णन किया है। मुल्ला दाउद ने 'चन्दायन' मे परंपरागत शृगार वर्णन की भाँति प्रथम शृंगार 'स्नान' को सर्वत्र महत्त्व दिया है। तत्पश्चात् वस्त्र-धारण करना और माँग भरना अनिवार्य है—

कूँ कूँ भरद चांद अन्हवाए। सेंदुरी चीर काढ़ि पहराए।
मांग चीर सिर सेंदुर पुरी। आनहु चांद फेर औतरी।[1]

मोतियों से माँग पूरने का प्रचलन था और इसी प्रथा के अनुसार जीतकर आने पर नायक मोती से माँग भरने की प्रतिज्ञा करता है—

मैनां मोतिन्ह मांग भरावउं।[2]

सिन्दूर के साथ काजल का भी उल्लेख मिलता है—

पाइ परीं अंकवारइं धरीं। काजर सेंदुर दोऊ करी।[3]

सुहाग-चिह्न के रूप मे प्रसिद्ध है माँग में सिन्दूर, आँख मे काजल तथा मुख में पान—

मुख तंबोलु, चखि काजर पूरहिं। आंकि मांग सिरि चीरि सेंदुरहिं।[4]

चौदहवी शताब्दी के इस काव्य मे नारी-प्रसाधन तथा आभूषणो का विवरण मिलता है पर 'सोलह' की चर्चा नही है जब कि इसके बाद १५०३ मे रचित कुतबन की मृगावती मे इसकी स्पष्ट चर्चा है। मृगावती में कई स्थलों पर सोलह शृगार के लिए 'नौ सत' 'सोलह' 'सपूरन' आदि शब्दो का प्रयोग किया गया है—

सेत चार कीसन चारी। खीन चार और चार जो भारी।[5]

सोलह शृगार के रूप मे कुतुबन ने शरीर के अवयवो का वर्गीकरण चार श्वेत, चार कृष्ण, चार पृथुल और चार क्षीण के रूप मे किया है—

यहाँ श्वेत के रूप मे माग, चख (नेत्र), चौक (दाँत) और नख है।

तथा कृष्ण के रूप मे कुच, दसन (दाँत), केश और चख (नेत्र) का उल्लेख हुआ है। यहाँ यह उल्लेखनीय है कि दाँत और नेत्र को दोनो वर्गों मे गिनाया गया है।

यहाँ क्षीण के रूप में नाक, अधर, कटि और पेट है।

तथा पृथुल के रूप मे गाल, कलाई, भौं और कुच का उल्लेख है।

---

१. डॉ० परमेश्वरीलाल गुप्त—चन्दायन, छन्द ५२, पृष्ठ १०९ सन् १९६४।
२. सं० माता प्रसाद गुप्त, चन्दायन, छन्द १०८, सन् १९३७।
३. सं० माताप्रसाद गुप्त, चान्दायन, छन्द ३९५, सन् १९६७
४. वही, छन्द ३५०, पृष्ठ ३४८।—'सोरह करां' का प्रयोग तो मिलता है जिसमें ध्वनि शृंगार की ही है।
५. वही, सं० परमेश्वरीलाल गुप्त, मिरगावती, पृष्ठ ७५।

'मृगावती' में 'सोलह' को अधिक मान्यता दी गई है, जैसे—

कही सिगार सहज के सोरह।

'मृगावती' में सोलह शृंगार के वर्णन की दृष्टि से स्नान, वस्त्र धारण, केश सज्जा, माँग भरना, आँख में काजल, हाथ मे मेंहदी, पैर में महावर, मुँह में पान का विशेष वर्णन मिलता है।

मृगावती के बाद जायसी ने पद्मावत में सोलह शृंगार तथा बारह आभरणों का स्पष्ट उल्लेख तथा वर्णन किया है। कुछ दूर तक मृगावती की परम्परा का निर्वाह कर जायसी ने भी चार-चार के चार भाग कर दिये हैं—

पुनि सोरह सिंगार जस, चारिहु चौक कुलीन।
दीरघ चारि, चारि लघु, चारि सुभर और खीन॥

चार दीर्घ—केश, अगुली, नयन, ग्रीवा। चार लघु—दशन,कुच, ललाट, नाभि। चार भरे हुए—कपोल, नितम्ब, जांघ, कलाई। चार क्षीण—नाक, कटि, पेट, अधर।

सोलह शृंगार की परम्परा के अनुसार जायसी ने भी सर्वप्रथम स्नान का वर्णन तत्पश्चात् चन्दन, चीर और माँग सँवारने का वर्णन किया है—

प्रथमहिं मंजन होइ सरीरू। पुनि पहरै तन चंदन चीरू।
साजि मांग पुनि सेंदुर सारा। पुनि लिलाट रचि तिलक संवारा।
पुनि अंजन दुहु नैन करेई। पुनि कानन्ह कुंडल पहिरेहई।
पुनि नासिका भल फूल अमोला। पुनि राता मुख खाइ तंबोला॥
गियं अभरन पहिरं जहं लाई। और पहिरं कर कंगन कलाई॥
कटि छुद्रावलि अभरन पूरा। औ पायल पायन्ह भल चूरा॥
बारह अभरन एक बखाने। ते पहिरं बरहौ असथाने॥

—दोहा २९६।

यहाँ जायसी की गणना मे कुडल, नकफूल, गिय-अभरन (हार), कंगन, छुद्रावलि या करधनी, पायल, चूड़ा या कड़ा सात ही आभूषण है इसमें ही शृंगार प्रसाधनों—चंदन-चीर, सिन्दूर, तिलक, अंजन और ताम्बूल की गणना करके बारह पूरा कर दिया है। इसमें से नासिका मे फूल या बेसर पहिनने की प्रथा मध्यकाल में मुसलमानों के आगमन के साथ प्रारम्भ हुई है। जायसी ने सोलह शृगार तथा बारह आभरण में गड्डमड्ड कर दिया है। जायसी ने शरीर की षोडश कलाओं के साथ शृंगारों का एकीकरण किया है।

कुतुबन तथा जायसी की परम्परा का निर्वाह आगे के सूफी कवि उसमान ने 'चित्रावली' मे तथा शेखनबी ने 'ज्ञानदीप' मे किया है।

सन्तों ने भी यत्र-तत्र सोलह शृंगार की चर्चा की है, जैसे कबीर ने कई स्थलों पर 'नव-सत' का स्पष्ट प्रयोग किया है, यद्यपि कही भी इन शृंगारों का विवरण नही दिया है, जैसे—

नवसत साजे कामिनी, तन मन रही संजोई।
—कबीर ग्रन्थावली पृष्ठ ४।७

'कबीर-ग्रन्थावली' के अनुसार पायल और बिछुआ के प्रचलन के साथ आँख मे काजल, मजन और माँग मे सिन्दूर का प्रयोग किया जाता था—

का काजल स्यूंदूर के दीयें
सोलह सिंगार कहा भयो कीयें
अंजन-मंजन करें ठगौरी
का पचि मरें निगौड़ी बौरी
जो पै पतिव्रता ह्वै नारी
कैसे ही रहौ सो पियहि पियारी।—पदावली स० १३९

यहाँ कबीरने स्पष्ट घोषित किया है कि पतिव्रता स्त्री के लिए सोलह शृगार करना अनिवार्य नही है। वह चाहे जैसी रहे प्रिय की प्यारी होती है।

नानक के अनुसार कंठ मे हार, हाथ मे कगन, अंगुली में अँगूठी, ललाट पर माँग टीका का वर्णन किया गया है। दाँतों मे मिस्सी और आँखो मे सुरमे का वर्णन किया गया है।

सूफी-सन्तों की इस परम्परा का और अधिक विस्तार से निर्वाह सगुण भक्तो ने किया है। सूर तथा तुलसी ने सोलह शृगार की परम्परा का निर्वाह किया है :

षट दस सहित सिंगार करति हैं, अंग अंग निरखि सँवारति।
—सूरसागर पद सं० २११५

चली लाई सीतहि सखी सादर सजि सुमंगल भामिनी।
नवसत साजे सुन्दरी सब मत्त कुंबर गामिनी ॥—रामचरितमानस।

सूर ने सोलह शृगार तथा आभूषणो का बडे विस्तार से वर्णन किया है जिसका विशद वर्णन यहाँ अपेक्षित नही है।

यहाँ यह उल्लेखनीय है कि मुगलकाल तक आते-आते नारी-शृगार मे सोलह शृंगार की परम्परा स्थिर हो चुकी थी। मुगलो के प्रभाव मे अनेक नये आभूषण नारी-शृंगार में स्थान

पा चुके थे। यह अपने में खोज का पृथक् विषय है कि कितने प्राचीन परम्परागत श्रृंगार तथा आभूषण चलते रहे और कितने बाह्य प्रभाव से आ जुड़े। सोलह श्रृंगार में 'हाथ में मेंहदी रचना' स्पष्ट प्रभाव है, यह बात दूसरी है कि मेंहदी का प्रचार किसी दूसरे प्रकार से भारत में चला आ रहा था। नाक में नथ पहनना सौभाग्य का विषय समझा जाने लगा जब कि इसका प्राचीन भारतीय साहित्य में न तो कहीं उल्लेख मिलता है और न किसी मूर्ति में इसका स्थान है।

सोलह श्रृंगार की परम्परा इतनी दृढ़ हो चुकी थी कि अबुल फजल ने आइने अकबरी[1] में नारी के सोलह-श्रृंगारों की सूची दी है। यह सूची इस प्रकार है : (१) स्नान, (२) तेल लगाना, (३) केश-बंधन, (४) लालट पर आभूषण धारण करना (५) चन्दन का लेप करना, (६) वस्त्र धारण करना, (७) ललाट पर जाति-चिह्न, सौभाग्य सूचक (८) आँखों मे अंजन लगाना, (९) कानों में कुंडल पहनना, (१०) नाक में नथ या मोती पहनना, (११) कंठ में आभूषण धारण करना, (१२) हाथों में मेंहदी रचना, (१३) कमर में क्षुद्र-घटिका धारण करना, (१४) पैरों में आभूषण धारण करना, (१५) पान खाना, (१६) सुन्दर स्वभाव।

आइने अकबरी मे आभूषणों भी एक लम्बी सूची दी हुई है जिसको यहाँ देना उपयोगी नही होगा। पहली बार स्पष्ट रूप से सोलह श्रृंगार तथा आभूषणों की सूची इस ग्रन्थ मे उज्ज्वलनीलमणि के समान प्रस्तुत की गई है।

षोडश श्रृंगार की परम्परा का विवेचन करते हुए डा० बच्चन सिंह ने निम्नलिखित निष्कर्ष निकाले हैं : १ षोडश श्रृंगार की धारणा मध्य युग की उपज है। २. इसमें किन सोलह श्रृंगारो को परिगणित किया जाय, यह कभी भी निश्चित नही हो सका। ३. समय समय पर षोडश श्रृंगार के अन्तर्गत नए श्रृंगारिक तत्त्वों का भी समावेश होता रहा। मेंहदी इसी प्रकार का एक नया तत्त्व है।

—रीतिकालीन कवियों की प्रेम व्यंजना, सं० २०१५ पृष्ठ ३११.

डा० बच्चन सिंह के निष्कर्ष वस्तुतः उचित हैं पर श्रृंगार की परम्परा मध्ययुग से काफी पहले चली आ रही थी और षोडश श्रृंगार भी निश्चित रूप से ११–१२वीं शताब्दी तक लोक में रूढ़ि प्राप्त कर चुके थे। यह बात सत्य है कि संख्या में समानता होते हुए भी विवरण भिन्न-भिन्न रहे। मध्यकाल तक आते-आते ही इसमें स्थिरता आ सकी। भक्तिकाल और रीतिकाल की सन्धि-रेखा पर स्थित कवि केशव ने सोलह-श्रृंगार का बड़ा स्पष्ट वर्णन प्रस्तुत किया है :

---

१. आइने अकबरी, भाग २, पृष्ठ १८३ से १८६ तक। एच० एस० जॅरट का अंग्रेजी अनुवाद, सन् १९४८, पृष्ठ ३४१ से ३४३।

प्रथम सकल सुचि, मंजन अमल बास,
जावक, सुदेस केस पास कौ सम्हारिबौ।
अंग राग, भूषन, बिबिध मुखबास राग,
कज्जल ललित लोल लोचन निहारिबौ।
बोलन, हँसन, मृदु चलन, चितौनि चारु
पल पल पतिव्रत प्रन प्रतिपालिबौ।
'केसौदास' सौं बिलास करहु कुंवरि राधे,
इहि बिधि सोरहै सिंगारन सिंगारिबौ॥

—कविप्रिया

इसकी टीका करते हुए सरदार कवि ने केशव के सोलह श्रृंगार मे उबटन, स्नान, अमल पट, जावक, वेणी गूथना, माँग मे सिंदूर भरना, ललाट मे खौर लगाना, कपोलो में तिल बनाना, अंग मे केसर मलना, मेंहदी, पुष्पाभूषण, स्वर्णभूषण, मुखवास (लंवगादि भक्षण) दंत मजन, तांबूल और कज्जल की गणना की है।

सन्त और सूफी काव्य के मर्मज्ञ विद्वान् श्री परशुराम चतुर्वेदी ने 'मध्यकालीन श्रृंगारिक प्रवृत्तियाँ' मे सोलह श्रृंगार की गणना इस प्रकार की है—(१) शौच, (२) उबटन, (३) स्नान (४) केशबन्धन, (५) अगराग, (६) अजन, (७) जावक (महावर), (८) दन्त रंजन, (९) ताम्बूल, (१०) वसन, (११) भूषण, (१२) सुगन्ध, (१३) पुष्पहार, (१४) कुंकुम, (१५) तिलक, (१६) बिन्दु।

डॉक्टर श्याम परमार

माच : मालव का एक लोकनाट्य

(गतांक का शेष)

१. बालमुकुंद गुरू : मालवा में प्रचलित माच के आदि प्रवर्तक अवन्तिका निवासी बालमुकुन्द गुरू हैं। किंवदन्तियों के अनुसार गुरू बालमुकुन्द उज्जैन के मागसीपुरे में ख्याल देखने जाया करते थे। उन दिनों नगर का आकर्षण इन्ही ख्यालों मे केन्द्रित हो रहा था। एक दिन भीड़ अधिक होने के कारण उत्सुकतावश वे मंच के एक छोर पर जा बैठे। पर कुछ कार्यकर्ताओं ने उन्हे वहाँ से उठा दिया। अपमान का कडवा घूंट पीकर, आवेश में, उन्होंने नगर के रुद्र सागर में बटुक भैरव की इष्ट साधना की, जिसका मंत्र उन्होने सुखराम यति से प्राप्त किया था। कहते हैं साधना से प्रसन्न होकर भैरव ने उन्हें दर्शन दिये। उन्होंने छंद और काव्य-ज्ञान का वरदान माँगा। संवत् १९०१ में 'सरसत हिरदे आयी' (सरस्वती हृदय में आई) और गुरूजी ने माच-रचना आरम्भ किया। इस किंवदन्ती से यह प्रकट है कि बालमुकुन्द गुरू के पूर्व अपने ग्रामीण रूप में मालवा मे एक रंचमंच था जिससे प्रेरणा प्राप्त कर गुरू की प्रतिमा ने उसका नया संस्कार किया। मुसलमानों के शासन के पूर्व ऐसे मंचों के संबंध मे कोई सूत्रबद्ध सामग्री के अभाव-वश इस विषय में अधिक प्रकाश डालना मात्र अनुभव-गम्य है। अतएव माच के सन्दर्भ में ग्रामीण मंच की स्थिति के वार्त्तालाप का वास्तविक आकलन करना कठिन भी है।

१९वी शताब्दी के द्वितीय-तृतीय चरण हिन्दी के रीतिकालीन पतनोन्मुखी समय के सूचक हैं। राज-दरबारों की बिलासिता भक्ति पर हावी होकर अपने विशुद्ध शृंगारी रूप में उभर रही थी। आर्थिक संघर्ष नही था। तो भी यंत्रों का प्रभाव आरम्भ हो गया था। लोग खाते-पीते, सुखी थे। वैचारिक संघर्ष के अभाव मे खाना-कमाना, आनन्द करना और जीवन के अन्त मे चिन्तन कर लेने में इतिश्री थी। मालवा प्रारम्भ से ही उपजाऊ रहा है, अतः यहाँ की भूमि से जागृति और भी दूर थी। ठीक ऐसे समय बालमुकुन्द गुरू ने मालवी के माध्यम से, लोकरंजन के उद्देश्य को लेकर, माच नामक नाट्यशैली का प्रवर्तन किया। भक्ति, वैराग्य, शृंगार और पौरुष भावनाओं का लोकग्राही रूप उनकी रचनाओ में लक्षित हुआ। प्रारम्भ में जिन पाँच माचों की उन्होंने रचना की है, उनमें उन्होंने 'निर्गुणी कथी' है अर्थात् उनकी पृष्ठभूमि निर्गुणी कथा-वस्तु से संबंधित है।

रचनाएँ—गुरू बालमुकुन्द ने कुल सोलह माच के खेल लिखे हैं। उनमें स्वयं गुरूजी

मुख्य पात्र का अभिनय भी करते थे। आज भी उन्हीं के वंशजों में वयोवृद्ध ही इस गुरुतर कार्य का अधिकारी है। उक्त सोलह ही रचनाओ की मूल प्रतियाँ गुरूजी की चौथी पीढ़ी के पास सुरक्षित हैं।

छापेखानों के आरम्भ होते ही गुरुजी के माचों की मुद्रित प्रतियाँ बाजार मे आ गईं। यह बीसवी शताब्दी के प्रथम दशक के पश्चात् सम्भव हुआ। यद्यपि उज्जयिनी में माच के खेलों की प्रतियाँ संवत् १९८२ के लगभग छपकर प्रकाशित हुईं। पर इसके पूर्व इन्दौर के किसी मुद्रणालय द्वारा इन्हीं माचों की प्रतियाँ मुद्रित कर प्रकाशित की जा चुकी थी। कहते हैं उज्जयिनी मे भी सवत् १९२० के लगभग माच के खेल छापकर बेचे जाते थे, पर उसका ठोस प्रमाण नही है। उज्जयिनी के दयाशंकर शालिग्राम बुकसेलर ने गुरू के कुछ माच २०×३० की साइज मे अलग-अलग छापे हैं। राजा हरिश्चन्द्र (जो पुस्तकाकार संवत् १९८२ मे प्रथम बार मुद्रित हुआ) के अन्तिम पृष्ठ पर प्रकाशक ने लिखा है—"अगर हों कि जो खेल पहले छपे थे उस पे से इन्दौर वाले ने जो खेल छपाये सो वह बेमतलब है। कडी में कडी नहीं मिलती काफिर बंदी से गलत कडी टूट है। किधर का हाथ किधर का पाँव किधर का धड़ किधर का मुँह लगाकर पूरा खेल ऐसा नाम घर के लोगों को धोखा देने वास्ते छपाया है. . ."

इससे प्रकट होता है कि संवत् १९८२ के पूर्व शालिग्राम बुकसेलर ने भी माच की कुछ पुस्तकें अवश्य छापीं थी। माच के अत्यधिक लोकप्रिय होने के कारण ही इन्दौर का कोई बुकसेलर उन्हे छापकर बेचने का लोभसंवरण नहीं कर सका। 'नागजी दूदजी' की तो उक्त संवत् मे तीसरी आवृत्ति प्रकाशित हो गई थी। उसमें भी उक्त सूचना छपी है।

बालमुकुन्द गुरू के उपलब्ध माचों की प्रतियों के आधार पर निम्न सूची संवत् एवं आवृति संख्या-सहित दी गयी है—

राजा हरिश्चन्द्र आवृति प्रथम संवत् १९८२ शालिगाम बुकसेलर उज्जैन। २ नागजी दूदजी तृतीय १९८२। ३ ढोला मारुणी छठी १९८५। ४. नकल गैंदातपरी प्रथम १९९०। ५. रामलीला प्रथम १९८२। ६ कुँवर खेमसिंह प्रथम १९८२। ७. सेठ-सेठानी षष्ठम २००७। ८. देवर-भौजाई दसवी २००९। ९. राजा भरथरी दसवी २००९। १०. सुदबुद सालगा दसवी २००९। ११ कृष्णलीला अप्रकाशित। १२ खेल रावत। १३. चारण बजारा। १४ हीर राँझा। १५. शिवलीला। १६. बैताल पच्चीसी।

गुरू बालमुकुन्द ने अपने सभी माचो का अभिनय उज्जयिनी के जयसिंहपुरा मे किया। आज भी वही, उसी स्थान पर बालमुकुन्द गुरू की परम्परा के माच होते हैं। यह स्थान उस भैरव मंदिर के सन्मुख है जिसे स्वयं गुरूजी ने बनवाया था। प्रत्येक माच के आरम्भ में दी गई 'भेरजी' की स्तुति मे इसका उल्लेख है।[1] जयसिंहपुर माचो के कारण गुरूजी के समय एक

---

१. रंगीला है भैरव का ध्यान सारदा दो हिरदा में ग्यान। टेक।
विशाल रूप छोटी सी मूरत करो दुश्मन की हान।

महत्वपूर्ण स्थान बन गया था। माच के आकर्षण से दर्शकों की एक बड़ी भीड़ व ी खिंच आया करती थी। अपने एक पात्र द्वारा स्वय गुरुजी ने इस बात को व्यक्त किया है—

'भोपाल सेर से चल कर आयो, उज्जैन सर देखूंगा बाती।
जैसिंगपुर मे माच बण्यो है, मुलकों की आलम वाँ ठसती।'[1]

गुरूजी बालमुकुन्दजी के जीवन काल मे ही माच का प्रचार दूर दूर तक हो गया था। उनकी मूल प्रतियों की प्रतिलिपि करके उन्ही के शिष्य गाँव-गाँव मे फैल गये। अत्युक्ति न ममझी जावे तो परम्परा हाथरम और पंजाब तक पहुँची। गुरुजी के ममकालीन सिन्धिया नरेश ने तो उन्हे ग्वालियर मे आमंत्रित कर माच का अभिनय करवाया था। निकटवर्ती होल्कर नरेश ने उनके माचों से प्रभावित होकर बहुत सी भूमि उन्हे दान मे दी थी।

गुरू बालमुकुन्दजी की मृत्यु संवत् १९३० में रविवार के दिन हुई।[2] कहते हैं उस समय वे गेंदायरी का अभिनय कर रहे थे। अन्धविश्वासी लोग गेंदायरी को ही गुरू की मृत्यु का कारण समझते है। मच से उठाकर ही उनका शव चक्रतीर्थ ले आया गया। शवयात्रा के समय अर्थी के आगे-आगे उनके शिष्य माच गाते हुए चलने लगे। माच के सगीत से ही उनके शव का अग्नि सस्कार किया गया। माच की प्रसिद्धि और माचकार के सम्मान का इससे बड़ा उदाहरण क्या हो सकता है?

गुरू का कंठ खुला हुआ और प्रभावी था। अभिनय के समय उनकी वाणी और व्यक्तित्व लोक हृदय को प्रभावित करने मे बेजोड़ थे। माच के प्रवर्तक के रूप मे गुरू की साधना मालवी लोक-नाट्य के क्षेत्र मे अविस्मरणीय घटना है।

२. **कालूराम उस्ताद** : बालमुकुन्द गुरू के माचो की लोकप्रियता ने उज्जैन के प्रतिभाशाली कवि कालूराम उस्ताद को, कुछ वर्षों के पश्चात्, नवीन माच की रचनाओं के सृजन की प्रेरणा प्रदान की। यह प्रेरणा वस्तुतः गुरू बालमुकुन्दजी की दूसरी पीढ़ी के साथ स्पर्धा के रूप मे विकसित हुई। गुरू की मृत्यु के लगभग बीस वर्ष के बाद होने पर भी अपनी प्रतिभा और परिश्रम के आधार पर कालूराम उस्ताद ने अपनी रचनाओ का अभिनय क्षेत्र उज्जयिनी के दौलतगंज में बनाया। दौलतगज माच के दूसरे अखाड़े का स्थान इसलिए भी

जैसिंगपुरा में राज तमारो और चारी खूंट में मान॥
कालो गोरो पालक मेरो, खेल सया चोगान।
साँचे का सनमान जो देव मार दुष्ट कू जान॥ टेक ॥

१. सत्यहरिश्चन्द्र, पृष्ठ ५।
२. 'गुरू बालमुकुन्द संवत १९३० के साल में बैकुंठ को प्राप्त भये।' नागजी दूबजी, पृष्ठ ६८।

बना कि स्वयं उस्ताद उसी मोहल्ले में रहते थे, जहाँ उनकी पीढ़ी के लोग आज भी रहते हैं। उनके लिखे माचों के नाम इस प्रकार है—

१. प्रह्लाद लीला २. हरिश्चन्द्र ३. रामलीला ४. चित्रमुकुट* ५. मधु-मालती* ६. चन्द्रकला ७. हीर राझा ८. निहालदे सुल्तान। ९ जान आलम* १०. नागमर्ना* ११. राजा छोगरतन* १२. सूरजकरण-चन्द्रकला* १३. ढोल सुल्तानी १४. राजा रिसालु १५. इन्द्र सभा १६. छबिली भटियारिन १७. त्रिया चरित्र १८. हीरामोती।

उक्त माचो का प्रचार बालमुकुन्द गुरू की रचनाओं के साथ होता गया। उक्त सभी रचनाएँ १९५० के पश्चात् आगामी ३५ वर्षों के बीच लिखी गई प्रतीत होती है। कहते हैं, उस्ताद की कुछ और भी रचनाएँ हैं, जो पूर्ण नही हैं और वे उसके वशज शालिग्राम जी के पास आज से दस वर्ष पूर्व तक सुरक्षित थीं। कालूरामजी के माचो के प्रचार का कारण यह भी था कि उन्होंने प्रथम बार बाबाजन[1] नामक एक सुन्दर गायिका को मच पर प्रस्तुत किया। बाबाजन अपनी सुस्पष्ट, ऊँची और मधुर आवाज के लिए प्रख्यात रही थीं। इस प्रकार कालूराम उस्ताद ने बालमुकुन्द गुरू की उस परम्परा को, जो स्त्री-पात्र को मच के लिये वर्ज्य समझती थी, तोड़कर नया आकर्षण आयोजित करने मे सफलता प्राप्त की।

कालूराम उस्ताद और बालमुकुन्द गुरू के अधिकांश माचों की कथावस्तु मे विशेष भेद नही है। गुरु की अपेक्षा उस्ताद की रचनाएँ शृंगारी अधिक हैं। गुरू और उस्ताद मे जो भेद है वही भेद रचनाओ की प्रवृत्तियो मे लक्षित होता है।

कालूराम और बालमुकुन्द गुरू दोनों के अखाड़े आज तक ग्रामीण जनता और नगर के लिये मनोरजन के साधन बने हुए है। दोनो के बीच स्पर्धा संबधी अनेक कथाए लोगों मे प्रचलित हैं। यह स्पर्धा यहाँ तक बढ़ी कि एक दूसरे के मच से खेलो के बीच-बीच मे पद्य-बद्ध अपमानजनक व्यग्योक्तियाँ कही जाने लगी।

कालूराम उस्ताद के प्रमुख साथियों में सुखदेव और पन्नालाल लावनीबाज मे काव्य-प्रतिभा थी। उनकी अनेक कविताएँ सवत् १९६६ के सिहस्थ में छपकर बहुत प्रसिद्ध हुई। उनमे तत्कालीन सामाजिक और राजनीतिक जागरूकता का प्रभाव स्पष्ट है जिनका कालूराम उस्ताद की रचनाओ मे भी अभाव है।

कालूराम का उपनाम 'दुर्बल' था। आप मे अभिनय की प्रतिभा न थी। केवल

---

*. प्रकाशित।

१. बाबाजन का ८४ वर्ष की अवस्था में सन् १९४८ की १५ जनवरी को देहावसान हुआ। दिल्ली की एक रेकार्ड कपनी ने उसके चार रेकार्ड तैयार किये थे जो कालूरामजी के पुत्र शालिग्रामजी के पास बहुत दिनों तक उपलब्ध थे। बाबाजन मर्दाने वस्त्र धारण करती और सिर पर साफा बांधा करती थी।

रचनाकार के नाते ही वे अपनी परम्परा चलाने में सफल हुए। लगभग ४० वर्ष की अवस्था मे आपकी मृत्यु हुई।

३. **भेरूगुरु** : कालूराम उस्ताद के समकालीन उज्जयिनी के ही नयापुरा का एक दल भेरुगुरू की प्रेरणा से अपनी अलग परम्परा लेकर माच खेलने लगा। भेरुगुरू रचित बारह माचो की जानकारी डा० चिन्तामणि उपाध्याय को अपने अनुसंधान के क्रम में प्राप्त हुई है। उनके कथनानुसार जो पुस्तकें उन्होंने देखी वे सभी हस्तलिखित एवं जीर्ण-शीर्ण अवस्था में हैं। नयापुरा का दल गुरू के पाँच खेल तो प्रतिवर्ष करता ही है, यद्यपि माचों की कुल सख्या बारह है जो निम्न लिखित हैं :

१. गोपीचन्द, २. राजा विक्रमाजीत, ३. पूरणमल, ४. हीर राँझा, ५. कुँवर केसरी, ६. लाल सेट, ७. छैल बेटा मोयना, ८. चम्पन कुँवर, ९. खेमसिंह आँवलदे, १०. मदन सेन ११. सीता हरण, १२. सिंगासन बत्तीसी।

स्पष्ट है, उक्त माच-रचनाकारो के नाम से माच की चार परम्पराओ का आरम्भ उज्जयिनी में हुआ जो आज भी विद्यमान है। उक्त पचपन माच के खेलों मे निम्न मुद्रित कथाओ को दो या दो से अधिक रचयिताओ ने अपनाया है।

१—हरिश्चन्द्र (बालमुकुन्द गुरू, कालूराम उस्ताद) २—रामलीला (बालमुकुन्द गुरू, कालूराम उस्ताद) ३—हीररांझा (बाल०, कालूराम, भेरू, राधाकिशन) ४—गोपीचन्द (भेरू और राधाकिशन) ५—खेमसिंह (बाल और भेरू) ६—त्रियाचरित्र (कालूराम और राधाकिशन)

प्राय सभी माचकारो की वही शैली और वही धज है जो बालमुकुन्द गुरू मे थी। इस बीच मालवा के गूजर गौड़ो ने भी अपनी परम्परा चलानी चाही किन्तु सफलता नही मिली।

नये माचकार

राधाकिशन गुरू की परम्परा मे नाथूसिंह उस्ताद ने (१) शनि महाराज और (२) सत्य नारायण की कथा पर माच लिखी है। दूसरा माचकार सिद्धेश्वर सेन है जिसने सवत् २००५ और २०१० के मध्य (१) सत्यवादी हरिश्चन्द्र (२) नल दमयन्ती, (३) नरसिंह मेहता अथवा नानीबाई को माहेरो (४) भक्त प्रह्लाद (५) दयाराम गूजर और (६) राजा रिसालू—खेलो की रचना नये ढग से की है। राधाकिशन गुरू के साथ कभी-कभी उक्त रचनाओ से किसी भी माच का अभिनय कर दिया जाता है। इन नये माचों मे अश्लीलता का तनिक भी स्पर्श नही है, यद्यपि कथाएँ प्राय: ख्यालों से प्रभावित शैली मे लिखी गयी हैं। इस परम्परा में 'छप्पन भैरव' की जय बोली जाती है।[1]

---

१. छप्पन भैरव बड़ा पोल बावन वीर अगवान।
हर दम हाजर रहे माच पे ले तीर कमान। —स्तुति की पंक्तियाँ

अन्य नये माचकारो मे सेधाराम परमार ने (१) ध्रुव प्रह्लाद एव (२) निहालदे की रचना की है। ग्वालियर के घासीराम उस्ताद के प्रह्लाद लीला, मोरध्वज, रामलीला, कंसलीला, सुदामा, उद्धव सवाद, सत्य हरिश्चन्द्र, राजा भरथरी, रुक्मणी मंगल तथा नरसिंह जी का मायेरा इन दस माचों की जानकारी और मिली है। नीमच के ख्यालकार बन्धु, लालजी नन्दराम, मुडवेवाले रामरतन दरक, बड़नगर के शिवरामजी व्यास भी उल्लेखनीय हैं। जहाँ तक परम्परा का प्रश्न है उक्त चार परम्पराएँ ही मालवा की जनरुचि को प्रभावित किये हुए है। यद्यपि स्थूल रूप से मालवा के माचो की प्रवृत्ति शृगारी है तथापि शिक्षा के अभाव मे लिखे गये स्थानीय भाषा के इस साहित्य का इसलिये महत्व अधिक है कि यह पिछले डेढ़ सौ वर्ष से लगभग साठ-सत्तर लाख मालवी-भाषा-भाषी लोगो को सतत रूप से प्रभावित करता आ रहा है।

वस्तु-विश्लेषण

कथा वस्तु की दृष्टि से उपलब्ध माच साहित्य १पौराणिक, २ प्रेम–कथात्मक, ३ ऐतिहासिक और ४ लोककथात्मक है। ऐतिहासिक कथानको मे शृगार वस्तु का बहुत महत्व है। शौर्य के साथ प्रेम की व्यजना कथानक का लक्षण है। धार्मिक वस्तु पौराणिक भेद के अन्तर्गत है। प्रेम कथात्मक एक लोक कथात्मक माच स्थूल रूप से लोकपरक है, जिसका स्वरूप या तो पूर्व प्रचलित ख्याल परम्परा से लिया गया है अथवा किवदंतियो के आधार पर जिनकी रचना की गई है। 'ढोला मारुणी' ऐतिहासिक और लोक काव्य दोनो है। बालमुकुन्द गुरु द्वारा प्रयुक्त कथावस्तु के स्थूल रूप से ज्ञात होता है कि उन पर लोहबन के मदारी रचित ढोला का अधिक प्रभाव पड़ा है। कथा की जो सक्षिप्त योजना मदारी के ढोला मे है वही सक्षिप्तता गुरु के 'ढोला मारुणी' मे पाई जाती है, फिर मदारी का ढोला निश्चय ही गुरु के पूर्व की रचना है जो ब्रजक्षेत्र मे खूब प्रचलित रही है।[1] गुरु को 'ढोला मारुणी' राजस्थानी 'ढोला मारुरा दूहा' अथवा 'छतीस गढी लोक गीतो का परिचय'[2] मे सकलित 'ढोला' अथवा ब्रज के ढोला काव्य की आत्मा से अनुप्राणित सगीत नाट्य मात्र है। प्रस्तुत माच मे कथा ढोला के आगमन से आरभ होती है। वह साँडनी (ऊँटनी) पर सवार होकर आता है। यद्यपि मच पर साँडनी नही होती, केवल बोल द्वारा उस साँडनी का आगमन अनुमानित कर लिया जाता है। उवर मार का वियोग, तोते द्वारा सदेह और रेवा द्वारा विघ्न पैदा करने की योजना की जाती है किन्तु अन्त मे सुखद मिलन मे कथा समाप्त होती है। प्रधानत राजस्थान ढोला के समस्त उपकरण—रेवा, दाढी, सुआ करहरा आदि कथा मे योग प्रदान करते हैं। मालवी के इस माच मे नल-

---

१. देखिए, डा० सत्येन्द्र का ब्रजलोक साहित्य का अध्ययन, पृष्ठ १०९ और ३७७।

२. श्यामाचरण दुबे, छत्तीसगढ़ी लोक-गीतों का परिचय।

दमयन्ती का प्रसग अस्वाभाविक रूप से जुड़ गया है और ढोला नल का पुत्र बताया गया है।

कथा के विस्तार का अभाव प्रायः सभी माच रचनाओं मे है। नागजी दूदजी, निहालदे सुल्तान, सुदबुद सारंगा, राजा भरथरी, आदि राजस्थानी ख्याल के कथानकों का निर्माण ख्याल के ढग पर ही है। कालूराम उस्ताद के माचो में प्राय. सभी कथानक शृंगारी हैं और उनमे प्रेमाश्रयी शाखा की मधुमालती, चन्द्रकान्ता, हीरराझा, जैसी कथा वस्तुओ का सदुपयोग किया गया है। कुछ ऐसी कथाएँ हैं जो माच के अतिरिक्त ख्याल की रचनाएँ अधिक हैं। राजा हरिश्चन्द्र, सेठ सेठानी, ढोला मारुणी, देवर भौजाई, सुदबुद सारगा, राजा भरथरी, चारण बनजारा, हीरराझा आदि माचो की कथाओं पर की कुछ ख्याल रचनाएँ मिलती हैं जिनमें इन कथाओं की लोकप्रियता का अनुमान किया जा सकता है।

चरित्र-चित्रण

माच मे चरित्र चित्रण के विस्तार के लिए सूक्ष्मतत्वो का आश्रय लेना सम्भव नही। संगीत शैली की सवाद योजना प्रत्येक चरित्र की उठान के लिए गायन के कौशल पर ही निर्भर है। मच पर जो पात्र अच्छा गा जाये वही जनता की सहानुभूति प्राप्त कर लेता है। आत्म-परिचय की पद्धति कभी-कभी चरित्र की अन्य विशेषताओं पर प्रकाश डालती है। प्राचीन रासो से यह प्रवृति विद्यमान थी। अत. माच में चरित्र-चित्रण का विस्तार थोड़ी ही मात्रा मे सभव है।

पात्र

माच के पात्र दो भाग मे विभक्त है। (१) स्त्री पात्र और (२) पुरुष पात्र। प्राय प्रत्येक माच मे पाँच स्त्री पात्रों का होना अपेक्षित है। अतएव पुरुष पात्र की अपेक्षा स्त्री पात्र की सख्या कभी-कभी अधिक हो जाती है।

नायक का प्रमुख साथी शेरमार खाँ कहलाता है (बालमुकुन्द गुरु के साथी ऊँकार जी थे)। शेरमारखाँ विदूषक का अभिनय भी करता है जिससे जनता का मनोरंजन होता रहे। नायक को विश्राम देने के लिये शेरमार खाँ नायक का प्रतिनिधित्व भी करता है। गुरु बाल-मुकुन्द जी के समय स्त्री के पात्र के अभिनय को गोविन्दा, कूका, टोडू लाल और लक्ष्मण की जोडे प्रसिद्ध थी। रामाजी कोली, बेनिया ब्राह्मण और भागीरथ पटेल ने भी बाद मे इस दिशा में प्रसिद्धि प्राप्त की।

अभिनय के समय पात्र का प्रवेश पूर्वपात्र द्वारा ही सूचित किया जाता है। अवांछनीय पात्र मंच के एक ओर बने रहते है। पात्र अपने बोल की समाप्ति पर स्वयं ही मच के एक ओर जा बैठते हैं।

संवाद

माच के संवाद, जैसा कि ऊपर बताया गया है, 'बोल' कहलाते हैं। ये बोल गेय

हैं। गद्यात्मक संवाद माच मे नही पाये जाते। प्रश्न भी पद्यबद्ध होते हैं और उनके उत्तर भी।

रस और अलंकार

माच के साहित्य में संगीत के अतिरिक्त बोल का विषय रस-सृष्टि का महत्वपूर्ण माध्यम है। श्रोता लोकसाहित्य की सहज आलंकारिता के बीच बोल की प्रत्येक उठान को ध्यान मे सुनते हैं। साधारण उपमा, रूपक, यमक और अनुप्रास के उदाहरण माच में मिलते हैं। करुण, शान्त और शृंगार का समन्वय रस की दृष्टि से उल्लेखनीय है। शेरमारखाँ नामक पात्र बीच-बीच में हास्य रस की सृष्टि करता है।

दृश्य योजना

दृश्य योजना श्रोता और पात्र दोनों के लिए परिकल्पित है। पर्दों के अभाव मे दृश्य का आभास कभी-कभी संवादो द्वारा प्राप्त हो जाता है। अन्यथा कल्पना मात्र से दृश्य की मानसिक उद्‌भावना की जाती है।

माच की बणगट

बणगट का तात्पर्य माच की छंद योजना और तंत्र से है। माच के लिये वैसे कोई निर्धारित छन्द नही है किन्तु उसकी विशेष संगीत शैली ही उसके तंत्र का आधार है। यद्यपि रंगतों के रूप में धुन की परिवर्तनशीलता व्यक्त होती है, तथापि छंद रचना की दृष्टि से माच दूहों पर लिखे गये हैं। दूहे 'लगड़ी', दोकड़ी और इकहरी रंगत मे गाये जाते है। 'झेला' की रंगत दूहों के बीच स्वर बदलने के लिये चलती है। जहाँ लोकगीतो का प्रयोग होता है वहाँ दूहों की बंदिश नही रहती। परम्परागत धुनों के बन्धन उसकी बणगट को प्रभावित करते हैं। इस तरह के गीत केवल प्रसग विशेष के बीच मे आते हैं और जो सामूहिक स्वरो मे ही गाये जाते हैं। दोहो के स्वरूप इस प्रकार हैं—

॥ रंगत दोहरी ॥

हूँ तो म्हारे तारा लोचनी नार। सत को कराँ सभी सिनगार।।टेक।।
पति म्हारा सतवादी हरिचन्द सत की बाँदो कार। सत धरम
की नाव बनई के उपराँगा सम्दर पार।।
टेक—३५ मात्राएँ, दोहा ३९ मात्राएँ।

ये जी म्हारों पीयू गयो परदेस। जाजम कहाँ बिछावाजो।।टेक।।
जाजम पर सतरंगी गदरा झीनो चादर वेस। तकिया और
गुलतकिया कंधे फूलाँ चुनीजो सेजा।।
टेक—३५ मात्राएँ। दोहा—दोहा—२६ और मात्राएँ।

दोहे की दूसरी दौड़ देखिये—

> अजी सत का राजा सत की रानी सत का जीमें असमान तानी ।
> अजी सत का पवन सत का पानी सत की राजे बानी ॥

और भी अन्य उद्धरणों के अध्ययन से ज्ञात होता है कि माच का दोहा २६ मात्रा में ४० तक दौड़ता है।

टेक के बाद दोहों में संवाद (बोल) की व्यवस्था होती है। प्रत्येक दोहे के बाद टेक दुहराई जाती है। जहाँ तक हस्तलिखित पोथियों का प्रश्न है प्रत्येक प्रसंग के दोहों पर धुन का निर्देश लिखा मिलता है। कभी-कभी एक ही बोल में टेक भी बदल जाती है। माच के संगीत के संबंध में उल्लेख करते हुए बताया गया है कि माच की बनावट रंगतों के अनुसार बदलती है। टेक से ही रंगत का स्वरूप ज्ञात होता है और अन्तरा दोहा बंद मे दौड़ता है।

संगीत-पक्ष

ढोलक माच का मुख्य वाद्य है। सारंगी साथिन है। ढोलक की थाप और सारंगी की मीड़ों पर बोल (संवाद) की लयकारी गमकती है। श्रोतागण बोल के कौशल पर 'कई की हैं' (क्या कहा है!) कहकर झूम उठते हैं। बालमुकुन्द गुरु का समकालीन बापू उस्ताद अपने समय का विख्यात ढोलकिया था और उसका भाई थावरजी सारंगी के तारों पर अपनी उगलियाँ इस अन्दाज से फेरता कि बोल और स्वरों मे भेद करना कठिन हो जाता था। माच में ढोलक की थापें अलग ही होती हैं जो बोल की टेक पर 'ढोलक तान फडक्के' अथवा 'ढोलक सच्ची बाजे' पदांश के अनुकूल द्रुत गति से 'तीये' में सम पर आती है।

बालमुकुन्द गुरु से लगाकर वर्तमान माचकारों तक कुछ प्रसिद्ध ढोलकियो और सारंगी-साजों की जानकारी निम्न क्रम से प्राप्त हुई है :—

(अ) ढोलकिये : बापू उस्ताद (बालमुकुन्द के समकालीन) आत्माराम (बापू उस्ताद के भानजे)—दुलीचन्द (आत्माराम का ज्येष्ठ पुत्र)—बुद्दिया; नागरजी गल्लाजी आदि। (अ) सारंगीसाज : थावरजी (बापू उस्ताद के भ्राता) आत्माराम (थावरजी और बापू के भानजे) भागीरथ (आत्माराम के छोटे पुत्र) आदि।

माच के बोल गाने की अपनी शैली है। उसमें लोक संगीत के अन्तर्गत प्राप्त सादी धुन और मालवा के ऋतु उत्सवों के गीतों की शैली है। टेक प्रायः लम्बी चलती है। माच के लोकोन्मुखी संगीत की विभिन्न धुनो को व्यक्त करने के लिये 'रंगत' शब्द का प्रयोग किया जाता है। शास्त्रीय संगीत मे जिस प्रकार रागों के नाम हैं, उसी तरह स्वच्छन्द रूप में माच-परम्परा में रंगतें भी अपनी विभिन्नता—रंगत इकहरी (टेक को दुहरा दुहरा कर कहना) रंगत मारवाड़ी, रंगत दोकड़ी (एक ही प्रवाह में सम्पूर्ण दोहा कहना) रंगत खड़ी, रंगत झेला की, रंगत छोटी चलन, रंगत ताल ठेका की, रंगत कलिंगड़ी, रंगत सिन्दू (छोटी-बड़ी), रंगत बड़ी

चलन, रंगत बदावा, रंगत उडाय, इकंग आदि साकेतिक पदों द्वारा ज्ञापित है। रंगतों के अतिरिक्त माचकारों ने लोकगीतों की शैली का भी समावेश किया है। राग हलूर (देखिये सेठ–सेठानी) में 'महाराराज' की टेक मालवी-राजस्थानी—गुजराती गीतों के कुछ लोक-गीतों की समान एवं प्रख्यात टेक है। इस दृष्टि से हलूर पूर्णतः लोकधुन है। रंगत दादरा के ढोल में 'र' का प्लुप्त उच्चारण और 'रंगत' बदावा' में मालवी 'बधावा' गीतों की धुन निहित है। जहाँ गजल का प्रयोग किया गया है वहाँ बोल का 'जुवाब' (प्रति संवाद) भी गजल मे ही कहा गया हैं। माहेरा के गीत 'रंगत मामेरा', गालगीत, दोहे और पारसियाँ (पहेलिकाएँ) भी गाये जाते हैं। प्रमुखतः लोकसंगीत के एक पक्ष को छोड़कर माच का अपना विशिष्ट संगीत है। उसमे ध्वनि की ऊँचाई, तान मारने की क्षमता, बोल में लहरावे की सुयोग्यता एवं ढोलक के साथ गाने का सामर्थ्य महत्व पाते हैं।

माच के बोल का प्रारम्भिक 'गेर' और अन्तरे की पंक्तियाँ 'उड़ापा' तथा तानों का प्रवाह 'चलत' कहलाता है।

(माच की प्रमुख धुन)

बोल : पियुजी हमारा छैला
पियुजी गया रे परदेस
अरे जाजम काँ तो बिछावा जी......

स्वर-सकेत

नी नी नी नी नी सा। सां सा रे सां नी सां सां।
पि यु ऽ जी ऽ। ह मा ऽ रा छै ऽ ला ऽ
ध नी ध ऽ प म ग म ग रे सा ग म ग म
पि यु ऽ ऽ जी ह मा ऽ ऽ रा ऽ ऽ पि यु जी ग
रे रे रे रे ग रे ग म। प प प प प।
या ऽ ऽ रे ऽ ऽ प र। दे ऽ ऽ स
सां ग रे। सा रे सा नी ध। नी ध प ध प
अ रे ऽ जा ऽ ऽ ज म ऽ ऽ का ऽ ऽ
प ध म प ग ग ग म ग रे सा रे
ऽ ऽ जो ऽ ऽ बि छा छां ऽ ऽ ऽ ऽ
सा सा सा सा
जी ऽ ऽ ऽ

राजा हरिश्चन्द्र नामक माच का एक अंश

॥ रंगत जोबना ॥

अजी रात का राजा सत की रानी सत की जीमों आसमान में तानी। अजी सत का

पवन सत का पानी सत की राजा बोलते बानी ॥ १ ॥ अजी रात को सूरज सत का चन्दा सत का न्याव देखलो छानी। सत के दंत बत्तीस बनें के सत की जबान जात है सारी। अजी सत के काज घड़ बनें के सत के नाम को जपत उमारी ॥२॥

॥ बोल राजा हरिश्चन्द्र को ॥

। रंगत छोटी ।

सतवादी हरिश्चन्द्र आये राजा सतवादी हरिश्चन्द्र ॥ टेक ॥ विक्र टुंड गणपत ने सुमरा मिट जाय मन को सन्द ॥ सरसत माता तुम्हें मनाता बार्द ब्रह्मा को छंद ॥१॥ तारालोचनी नार हमारी रहे मन में आनन्द ॥ सुन्दर सूरत बढ़ी है शोभा नजर करी बंद ॥२॥ पुरी अयोध्या में राज हमारा तपता सूरज चंद। सतजुग के सतवादी राजा सुन सुत मूरख अंद ॥३॥ नाम लिया से निरमल होवे कट जावे सब फंद। चन्द्र लोक में मान जिन्हों का ऋषी हुए सब मंद ॥ ४ ॥

॥ बोल तारालोचनी को ॥

। रंगत दोहरी ।

हूँ तोम्हारे तारालोचनी नार। सत को करां सभी शृंगार ॥टेक॥ पति हमारा सतवादी हरिश्चन्द्र सत की बाँदी कार। सत धरम की नाव बनाके उतरांगा सम्हर पार ॥१॥ झूंठ बोले तो सोई झखमारे सो नर नरक निहारे। सतजुग में सतवादी राजा हुआ मुलक में क्षार ॥२॥ मूक को भोजन मिल जावें दुनिया खड़े हजार। तन मन धन सोई हम देयां हेड़ा सिर को मार ॥३॥ पति नहीं परमेश्वर म्हास दिल में नेचो धार॥ नित उठ सेवा करां बंदगी रखो तुम्हारी लार ॥४॥

॥ बोल दूत को ॥

आयारे धरमराज का दूत देखने आया रे ॥टेक॥ हुकम करने सतवादी राजा, किन क्यां जावां। किन कूं लावां ॥ १ ॥ आयारे ॥ धरम पत्र में नाम लिखवां धरमी कूं बैकुंठ पोंहचावां ॥ लख चौरासी जिन्हे भुगतावां ॥ आयारे ॥२॥ ऊपर से गुरंज की मार लगावां। धर मुंडी पानी जो तावां ॥ आयारे ॥३ ॥ जहाँ सत होवे वहाँ हम जावां। जाकर हुक्म आज उठावां ॥ आयारे धरमराज का ॥४॥

॥ बोल तारालोचनी को ॥

। रंगत इकहरी ।

अजी या चीज पराई दो दिन बिलसी ने पाछी दई दीजो ॥ टेक ॥ कर करार बिलस जो बंदे फिर नहीं इस पर जोर। जगा करो भाड़ेती खाली देखो ठिकाना ओर ॥ १ ॥ कर करार ब्रह्मा शिव आये श्री भगवान। त्रेता जुग में राम भया है, द्वापर में भया कान्ह ॥२ ॥ हुक्म दिया हाकिम नहीं माने भेज दिया यमदूत। पकड़ हाथ आगे धर लीना कौन पिता कौन पूत ॥३ ॥ चंदा जायगा सूरज जायगा जायं पवन और पानी। एक चीज वो नहीं जावेगी कहे

—बालमुकुन्द ब्यानी ।।४।।

॥ बोल पदम नागनी को ॥

। रंगत छोटी ।

पुरी अयोध्या बाला म्हानें कोई सतवादी हरिश्चन्द्र बतावो ।।टेक।। कच्चा सूत कुम्हार का सो क्या कच्चा सूत कतावो। निरमल नीर भरा सागर से हीरा बाजी म्हानें जितावो। कोई राजा हरिश्चन्द्र बतावो ।। १ ।। धरमराज का दूत देख लो काला गोरा गुन जो गावां। नित उठ सेवा करां बंदगी दस दस केतो हुक्म उठावां ।।२।। कोई सतवादी हरिश्चन्द्र बतावो ।। पदम नागनी अरज करे हे उसको जा समझावो। परसूंवार थके काज आज तुम दुश्मन के घर आगं सिधावों ।।३।। कोई सतवादी हरिश्चन्द्र बतावो ।।

॥ रंगत झेला में ॥

अजी राजा मे तो आई आपके पास प्यासी दर्शन की ।।टेक।। तुम्हारा तीन लोक मे नाम मरजी परसन की। म्हारे उमग्यो नैन दयोब बढ़ लिया बरसन की ।। १ ।। दरवाजे आ कब की खडी हूँ सुनो जी हमारी बात। क्यों माया मे लिपट रया हो भूलो ना हात की हात। पुगी बजा सब मत्र सुना दिया नव कुलीसु बांदी गाय। कल्प नाग कालो बस कीनो जा बेटो टिपारी माय ।। २ ।। हम राजा उनसे उठ बोल्या क्यों छोड़ी जी परवार। पदम नागनी पल पल रोवे चल्या गया बाँदी गिरलार ।। ३ ।। राजा में तो आई आपके पास ।।

बोल पदम नागिन को ।। ।रंग इकेरी। अजी बोले पदम बादी गिर सावक मेरी ले गयो। देव लोक पाताल मे सो राज सत्य वखाने मोत। जा कारण हम आबिया सो कई दिक जल रही जोत ।। १ ।। अजी बोले० ।।

।।बोल राजा हरिचंद ।। । रगत इकेरी। अरे म्हारा महल अगाडी सुन्दर कौन उबी छूरी बाद के ।।टेक।। बोल बोल सुन्दर कुछ बोलो बोल्या से सच होय। बिना कियें दूसरे के दिल की क्या जानेगा कोय। अरे म्हारा महल० ।।।

।।बोल नागनी को ।। जोड़ी मिल बिछड़ा पड़या सो राजा तुम्ही मिलावन ट्टार। उठ राजा क्यों देर लगाई नव कुलीमची हलकार ।। अजी बोल० ।।

।।बोल राजा को।। बडो बोल इन्द्र को छाजे में हूँ धूल समान। मर निन्द्रा में चमक उठाहों दुःख सुख लो कान ।। १ ।।

।।बोल नागनी को ।। हात जोड़ अरजी करूं सो राजा नाग छुड़ाव। इतनो पुण्य पल्ले तम बादो म्हाने चूदड गोडाव ।।२।।

।।बोल राजा को ।। धन मांगे तो धन हम देवा तन मागों तो तैयार। देश छोड़ परदेश फिरांगां सत्य कहूँ ललकार ।। अरे म्हारा महल अगाड़ी ।। ३ ।।

।।बोल नागनी को ।। ठन्डी छांय कदम के नीचे पिपु सूता था सुख सेज। बादी गिर आशक कुं ले गयो छिप गयो सूरज तेज ।।४।।

(समाप्त)

डाक्टर मदनगोपाल गुप्त

आलम-कृत 'माधवानल कामकन्दला' के भावाबन्ध का सांस्कृतिक मूल्यांकन

'माधवानल कामकन्दला' की प्रेमगाथा मध्ययुगीन भारतीय जन-समाज के बीच अत्यधिक लोकप्रिय रही है। इस कथा को आधार बनाकर संस्कृत, प्राकृत तथा हिन्दी के अनेक कवियो द्वारा समय-समय पर काव्य लिखे गये हैं और इतना ही नहीं, आधुनिक युग के आरम्भ मे भी लल्लूलाल ने हिन्दी गद्य में इसे 'माधोनल' शीर्षक द्वारा प्रस्तुत किया है। इस कहानी की इतनी लोकप्रियता का कारण, वृत्तवैचित्र्यपूर्ण होते हुए भी इसके आख्यान मे पाई जानेवाली निजी विशेषता है, जो पाठक या श्रोता को मार्मिक स्थलो में रमा देती है। जहाँ तक लेखक को ज्ञात हो सका है, उसके अनुसार इस कथा पर आधारित निम्नलिखित रचनाओं का पता चलता है—

(१) गणपतिकृत 'माधवानल प्रबंध दोग्धबंध'—रचनाकाल स० १५८४ वि० (१५२८ ई०)। यह २५०० दूहो मे रचित कृति है जिसके रचयिता गणपति आमोद (भडोंच गुजरात) निवासी कायस्थ थे।

(२) किसी अज्ञात कविकृत 'माधवानल प्रबंध'—रचनाकाल सन् १५४७ ई०। भाषा हिन्दी-संस्कृत मिश्रित।

(३) *कुमार हरिराज के मनोरंजनार्थ रचित कुशललाप कृत 'माधवानल कामकंदला* चरित्र'। रचनाकाल १५५६ ई०। गायकवाड सिरीज के संस्करण मे इसका नाम 'माधवानल कामकंदला चउपई' दिया गया है जिसकी छन्द संख्या ६६२ है।

(४) बालक कविकृत 'माधवानल कामकंदला भाषाबंध'—रचनाकाल सन् १५८३–८४।

(५) नेपाल के राजा भूपतन्द्रि मल्ल कृत 'माधवानल नाटक'। गद्य-पद्य मिश्रित इस हिन्दी नाटक का रचनाकाल सन् १७०४ ई० है। (नेपाली संवत् पौष कृष्ण द्वितीया)।

(६) हरनारायण कृत 'माधवानल कामकंदला' रचनाकाल सन् १७५६ ई० (सं० १८१२ वि०)।

(७) 'माधवानलाख्यानम्' —यह संस्कृत-अपभ्रंश-मिश्रित कृति है। इसमें २३३ श्लोक तथा संस्कृत और अपभ्रंश का गद्य बीच बीच में आता है। इसकी भिन्न-भिन्न हस्त-लिखित प्रतियों मे इसी के 'माधवानल नाटकम्' तथा 'माधवानल कथा' ये दो नाम आते हैं।

(८) कवि दामोदर विरचित 'माधवानल कथा'[१]—अपभ्रंश और पुरानी गुजराती मिश्रित भाषा। छन्द परिमाण ७९३।
(९) लालकवि कृत 'माधवानल कथा'।
(१०) 'माधवानल कामकंदला नाटक'—लेखिका शांति गुप्त वार्ष्णेय।
(११) पुरुषोत्तमवत्स कृत 'माधवानल कथा'।
(१२) बोधाकृत 'विरह वारीश'—इसकी कथा भी उपर्युक्त रचनाओं की ही है, केवल नाम में अंतर है।
(१३) 'माधव विलास शतक'—रघुराम नागर कृत। भवानीशंकर याज्ञिक के पास सुरक्षित पुरानी प्रति। भाषा—संस्कृत।
(१४) माधव चरित्र—जगन्नाथ कृत। रचनाकाल (सं० १७४४ वि०)
(१५) 'माधवानल कामकदला कथा'—डिंगल भाषा। बीच-बीच मे संस्कृत का भी प्रयोग लेखक, आनन्दधर।

इन रचनाओं के सम्बन्ध मे संक्षेप मे यह कहा जा सकता है कि कालविशेष की परिस्थितियों एवं काव्यगत प्रवृत्तियो के प्रभावो के साथ-साथ कृतिकार की अपनी निजी उद्भावनाओं का योग एक ही मूल आख्यान से निर्मित इन अनेक काव्यों की अपनी निजी मौलिकता का प्रधान कारण है। यह एक लोककथा है जो कि पश्चिमी भारत मे अत्यधिक लोकप्रिय रही है। आलमकवि की प्रस्तुत रचना भी विशेषता का उदाहरण उपस्थित करती है। प० गणेशप्रसाद द्विवेदी ने किसी अशुद्ध प्रति के आधार पर पाठ निर्धारण का विचार किये बिना इस काव्य को 'हिन्दी के कवि और काव्य' नामक सकलन मे प्रकाशित किया था। सर्वप्रथम प्रकाश मे लाने का श्रेय उन्हे निश्चित रूप से दिया जा सकता है किन्तु यह महत्वपूर्ण कृति सम्यक् शोध-सपादन की अपेक्षा रखती है। लेखक के पास इसकी कतिपय प्राचीन प्रतियाँ तथा कुछ की प्रामाणिक प्रतिलिपिया हैं। आलम के सम्बन्ध मे एक बात स्मरणीय है कि इस प्रेमाख्यानक काव्य के कवि आलम और 'आलमकेलि' के रचयिता आलम दो भिन्न व्यक्ति हैं जिन्हें प्रायः हिन्दी साहित्य के इतिहास-लेखकों ने एक मान लिया है। वस्तुतः आलमकेलि वाले आलम कवि का समय प्रस्तुत कृति के रचनाकाल के कम-से-कम सौ वर्ष बाद (सं० १७४० वि०) का है।

अन्तर्साक्ष्य से ज्ञात होता है कि कवि ने इसकी रचना राजा टोडरमल की प्रेरणा से सम्राट् अकबर को प्रसन्न करने के लिए की थी।[२] गणपति द्वारा रचित 'माधवानल प्रबंध'

१. क्रमांक १, ३, ७ और ८ की रचनाएं गायकवाड़ सिरीज में संपादित होकर प्रकाशित हो चुकी हैं।

२. आगे नेउ महामति मंत्री। नृप राजा टोडरमल छत्री।...
कही बात सुनी अब लोग। करी कथा सिंगार वियोग।;—बीकानेर प्रति, पत्र १।

के रचनाकाल तथा इसके रचनाकाल की तुलना तथा पश्चिमी भारत में इसकी लोकप्रियता के तथ्य के प्रकाश मे गुजरात के शोधक विद्वान् डा० मंजुलाल मजूमदार का मत है कि आलम ने इसकी रचना अकबर द्वारा गुजरात-विजय के बाद की थी, अतः सम्भव है कि आलम को इसकी कथावस्तु लोककथाओं या जनश्रुतियों से प्राप्त हुई हो।[1] प्रेरणा का यह आधार हो सकता है किन्तु मूलस्रोत का आधार नहीं क्योंकि उसके विषय में कवि ईमानदारी से स्वीकार करते हुए अपनी रुचि और निजी उद्भावना का संकेत देते हुए लिखता है—

कथा संस्कृत सुनि कछु थोरी। भाषा बाधि चौपही जोरी॥
कछु अपनी कछु परकृति चोरीं। जथा सकति कवि अच्छर जोरीं॥

इसकी भाषा परिमार्जित अवधी है और विषयवस्तु के आधार पर इसे लौकिक प्रेमाख्यान कहा जा सकता है। भाषा के अन्तर्गत भारत के पश्चिमांचल का किंचित भी प्रभाव दृष्टिगोचर नहीं होता है। अतः इसकी रचना एक ओर उत्तर भारत में भी प्रसिद्धि का द्योतन करती है, तो दूसरी ओर संस्कृत मे प्राप्त रचनाओं के आधार की ओर। यह कृति सांस्कृतिक अनुशीलन के दृष्टिकोण से अत्यंत महत्वपूर्ण है जिसके लिए सर्वप्रथम संक्षेप में इसकी कथा को दृष्टिगत कर लेना आवश्यक है।

कथासार

पुष्पावती नगरी के एक अत्यंत न्यायपरायण एवं धर्मनिष्ठ राजा गोपीचंद के शासनकाल में माधव नाम का एक ब्राह्मण रहता था। वेद, पुराण, ज्योतिष व्याकरण तथा सामुद्रिक आदि विविध शास्त्रों मे निष्णात वह ब्राह्मण नित्य प्रातः राजा के यहाँ जाकर पूजा करता था। वह अत्यंत रूपवान होने के साथ-साथ विद्वान् और संगीतकला मे पारदर्शी था। वीणावादन में तो वह इतना निपुण एवं अद्भुत प्रभाव वाला था कि नगर की स्त्रियाँ उसके प्रभावशाली संगीत को सुनकर मोहित हो जाती थी। कोई-कोई अपना काम छोड़कर बेहाल हो जातीं और कोई संज्ञाशून्य हो कर गिरती-पड़ती और उसके पीछे-पीछे घूमती थी। कलाकार की यह निपुणता आगे चलकर उसके लिए अभिशाप सिद्ध हुई।

माधव के कारण पारिवारिक सुख-शान्ति में बाधा पड़ती देखकर नगरवासियो का प्रतिनिधिमंडल राजा के पास गया और उस परिस्थिति की ओर राजा का ध्यान आकृष्ट करके कहा कि या तो माधव को राज्य से बाहर निकाल दिया जाय, अथवा वे ही राज्य छोडकर दूसरे देश को चले जायेंगे। राजा धर्मसंकट में पड़ गया। वस्तुस्थिति के सम्यक निराकरण के लिए बीस नवयौवना सेविकाओं को सामने बिछे कमल-पत्रों पर बिठाकर उसने माधव को वीणावादन की आज्ञा दी। कुछ समय उपरान्त ही सेविकाएँ कामार्त हो गईं

---

१. दे० माधवानल प्रबंध दोग्धबंध की प्रस्तावना, पृष्ठ ५।

जिसे देखकर राजा ने प्रजा की शांति के लिए माधव को निष्कासित कर दिया।

इस प्रकार निष्कासित माधव घूमता-फिरता कामावती नगरी पहुँचा जिसके राजा कामसेन के दरबार में कामकंदला नामक अत्यंत सुन्दरी तथा नृत्यकला-प्रवीण वारांगना रहती थी। जिस समय माधव वहाँ पहुँचा तब दरबार में नृत्य-संगीत का समारोह हो रहा था। नगरवासियों को उधर जाते देखकर माधव भी वीणा लेकर पहुँचा। उसने भीतर जाना चाहा किंतु द्वारपाल ने रोक लिया। अतः बाहर से ही संगीत सुनने लगा। तदनंतर बारह में से एक पखावजी के हाथ में चार ही अँगुलियों के कारण होने वाले स्वरभंग को सुनकर अभ्यस्त माधव से रहा न गया और द्वारपाल से यह संदेश भेजा कि यह राजसभा मूर्ख है जो कि स्वरभंग के दोष को भी नहीं समझ सकती। संदेश सुनते ही राजा ने उसे भीतर बुलाया जिसके पूछने पर माधव ने कहा, "मृदंगों के इस साज मे ग्यारवें वादक के दायें हाथ में चार ही अगुलियाँ हैं जिनसे स्वरभग हो रहा है।" परीक्षा करने पर बात सच निकली। राजा ने उसे अपने सिंहासन पर बिठाया और धन आदि देकर सम्मानित किया। इसके पश्चात राजाज्ञा से माधव ने संगीत छेडा और कामकंदला ने नृत्यकला का प्रदर्शन। सब लोग मुग्ध हो गये, विशेषकर कामकंदला बहुत प्रभावित हुई। राजा ने माधव को सोने का मुकट, अंगूठी व बहुमूल्य हार और दो करोड़ रुपये उपहार में दिये। थोड़ी देर बाद पुनः संगीत आरंभ हुआ। कामकंदला ने सिर पर जल से भरा कटोरा रख कर नृत्य आरंभ किया। इस प्रसंग पर संगीत के सब राग-रागियों तथा उनके प्रभाव का विस्तृत वर्णन कवि ने किया है। जिस मसय कामकंदला भाव-प्रदर्शन में लीन थी, उस समय एक भौंरा आकर उसके वक्षस्थल पर बैठकर काटने लगा। यदि वह उसे हाथ से हटाती तो नृत्य बिगड़ता था, यह सोचकर वही नृत्य की गति चौगुनी करके एक ऐसा चकरदार टुकड़ा उसने लिया जिसके पवन-वेग से भौंरा उड गया। इस कुशलता को माधव के अतिरिक्त कोई भी न समझ सका। उसने प्रसन्न होकर गले का उपहार नर्तकी को पहना दिया और अंगूठी हाथ में पहना दी। माधव ने नृत्य की बड़ी प्रशंसा की। इसका कारण पूछने पर उसने कहा, तुम्हारी संपूर्ण सभा मूर्खमंडली है, कामकदला इतना चमत्कार प्रदर्शित कर गई किन्तु कोई भी पहचान न सका। राजा इस अपमान से क्रोधित हो उठा और विप्रवध से पाप का विचार करके उसे मारा तो नहीं किन्तु राज्य से बाहर निकाल दिया।

माधव भी यह कहते हुए चल पडा कि इस मूर्ख राजा के यहाँ रहने में मेरा अपमान है। माधव के प्रति आसक्त और उसके संगीत के प्रति आकृष्ट कामकंदला बाहर जाने को उत्सुक उस ब्राह्मण को रोककर अपने घर ले आई। अपने प्रेमपाश में आबद्ध करके नर्तकी ने उसे तीन दिनों तक रोक रखा किन्तु राजभय से माधव अंततः वहाँ से निकल पड़ा। परस्पर बिछुड़कर वे दोनों अत्यंत व्याकुल हो गये। माधव ने उज्जयिनी के राजा विक्रम से सहायता पाने के उद्देश्य से उनकी शरण लेने की ठानी। राजा तक अपनी प्रार्थना पहुँचाने के उद्देश्य से उसने एक उपाय सोचा। जिस महादेव के मंदिर में राजा नित्यप्रति दर्शनार्थ आता था, वहीं उसी के मंडप पर अपनी वेदनासूचक दोहे लिखकर चला गया। राजा की दृष्टि जब उस

ढोहे पर पड़ी तो उसने दासियों को भेजकर पता लगवाया। ज्ञानवती नामक दासी उसे राजा के पास ले आई। माधव ने अपना पूरा परिचय दिया और सहायता की याचना की। विक्रम ने पहले नैतिकता आदि का उपदेश देकर गणिका प्रेम से उसे निरस्त करना चाहा, किन्तु जब उसने अपने सच्चे प्रेम का परिचय इतनी करुणा-रीति से दिया कि सारी प्रजा तक राजा के साथ दुःखित हो उठी, तब उसने सहायता का आश्वासन दिया।

माधव को सहायता का आश्वासन देकर विक्रम कामावती पर आक्रमण करते और राजा से कामकंदला को मांगते हैं। जब कामावती नगरी थोड़ी दूर रह गई तब विक्रम ने वहीं ठहर कर कामकंदला की प्रेम-परीक्षा लेने का विचार किया। छद्मवेश में वह ज्योंही उसके घर गया तो कामकंदला को विरह मे प्रियप्राण पाया। फिर भी परीक्षा लेने के लिए यह समाचार सुनाया कि माधव तो विरह में घुल-घुल कर मर गया है, इसे सुनते ही माधव का नामोच्चारण करते हुए उसने पिंगला की भाँति प्राण त्याग दिये। अत्यंत उदास होकर विक्रम अपने खेमे में आये और यह समाचार अपने सभासदों को सुनाया जिसे सुनकर माधव ने भी वहीं दम तोड़ दिया। सेना में हाहाकार मच गया। इधर अपने कारण दो-दो प्रेमियों का निधन देखकर जब उसे कोई उपाय न सूझा तो उसने आत्महत्या के इरादे से चिता तैयार करवाई और दान-पुण्य करके चिता पर बैठ गया।

चारों ओर यह समाचार बिजली की भाँति फैल गया। विक्रम का मित्र वैताल तत्काल वहाँ को रवाना हुआ। चिता में आग लगाई ही जा रही थी कि वहाँ पहुँचे हुए बेताल ने राजा का हाथ पकड़ लिया। संपूर्ण वृतान्त जानकर अमृत लाकर उसने पहले माधव को जीवित किया जो कि कामकंदला का नाम लेते हुए उठ बैठा। इसके पश्चात् अमृतकलश लेकर वह कामकंदला के यहाँ पहुँचे और उसी प्रकार उसे जीवित करके आश्वासन देकर खेमे में आ गये।

अब विक्रम ने कामावती-नरेश को दूत भेजकर कहलाया कि किसी भी मूल्य पर कामकंदला को हमारे हवाले कर दो किन्तु कामसेन ने इसे अपना अपमान समझ कर युद्ध करने की ठानी। फलतः दोनों सेनाओं मे भयकर युद्ध हुआ और अंत में कामसेन ने युद्ध बन्द करके क्षमा-याचना का और कामकदला को दे दिया। इस प्रकार दोनों प्रेमी कलाकारो का पुर्नमिलन करवाकर आर्त-दुःखहारी विक्रम उन्हें अपनी राजधानी उज्जैनी में ले आते हैं।

कथागत निष्कर्ष

इस संक्षिप्त कथा से प्रकट है कि प्रस्तुत प्रेमाख्यान में वर्णित प्रेम राजकीय घरानों के बीच विकसित प्रेम न होकर जनसामान्य के बीच का है। नायक-नायिका का प्रेम कलात्मक और अभिरुचि से आरम्भ होकर रूपासक्ति मे विकसित होता हुआ सच्चा प्रेम बन जाता है। एक दूसरे को प्राप्त करने के प्रयासों मे उसकी गंभीरता क्रमशः बढ़ती जाती है तथा तज्जन्य कष्टों की समाप्ति अंततः परस्पर मधुर मिलन में होती है। काव्य में आये हुए पुष्पावती तथा कामावती से संबंधित विवरण तथा नाम भी ऐतिहासिक संदिग्धता को लिए हुए हैं,केवल उज्जयिनी ही

इसका अपवाद कही जा सकती है। फिर भी इस प्रेमाख्यान मे अंकित वातावरण मध्ययुगीन राजदरबारों का यथार्थ चित्र उपस्थित करता है। इस युग के हिन्दू राजदरबारों में नृत्य-संगीत तथा काव्य को आश्रय एवं प्रोत्साहन मिलना समसामयिक सांस्कृतिक साक्ष्य का कार्य करता है। इस दृष्टि से ओरछा, ग्वालियर तथा जयपुर आदि राज्यों में इन तीनों की उन्नति इतिहास-प्रसिद्ध है। गणिका-प्रेम की अभिव्यक्ति तत्कालीन राजदरबारियो के सामाजिक और नैतिक स्तर को निर्दिष्ट करती है, यद्यपि नैतिकता की दृष्टि से उसका द्वन्द्व भी विक्रम के निम्नलिखित कथन से सुस्पष्ट है---

राजा कहै सुनहु गुनरासी। गनिका सौं नहिं प्रीति गनासी॥
गनिका प्रीति न सदा चलाई। धन सौं प्रीति बिन धन चलि जाई॥
नैन अनत, बैना अनत, अनतै चित्त निवास।
जनि पातर परतीत करि, बिस्वा बिसु बिस्वास॥

कथासार के सदर्भ में दूसरी उल्लेखनीय बात यह है कि इसमे पुष्पावती, कामावती तथा उज्जयिनी का उल्लेख नगरियों और राज्य दोनों ही रूपो मे हुआ है। नगर-विशेष के साथ राजा या राज्य का नामोल्लेख यह सूचित करना है कि इस युग का भारत अनेक छोटे-छोटे हिन्दू राज्यों का पुज बन चुका था जो कि समकालीन इतिहास से भी प्रमाणित है। कथा के आरंभ मे समकालीन मुगल सम्राट् अकबर के प्रताप-ऐश्वर्य का चित्रण सूफियों की ग्रथारम्भ में शाहेवक्त की प्रशंसा की परम्परा की भाँति ही है। काव्यशैली के दृष्टिकोण से यह कहा जा सकता है कि यह प्रवृत्ति केवल सूफी प्रेमाख्यानकारों की ही थाती नही है, जसा कि समालोचकों द्वारा प्रायः भ्रमवश समझा जाता रहा है।

कृति के अनुशीलन से ज्ञात होता है कि उस युग मे भी हिन्दू राजव्यवस्था धर्माधारित होती थी और इसका सम्यक् परिचय देश मे बसने वाले मुस्लिम समाज के लोगों को भी था। आलम द्वारा वर्णित राज्यो की व्यवस्था के कतिपय तथ्य यहा सूत्ररूप मे रखे जा सकते हैं। इस राजव्यवस्था मे चातुर्वर्ण्य-व्यवस्था को महत्व प्राप्त था, भले ही उस युग मे यह सिद्धांत मात्र ही रह गया हो। काव्य मे उल्लिखित धर्माधारित शब्द से तात्पर्य डा० बेनीप्रसाद के अनुसार स्मृतिकारो द्वारा दी गई व्यवस्था से है।[1] समकालीन वस्तुस्थिति के दृष्टिकोण से वर्णव्यवस्था की तात्कालिक प्रतिष्ठा को स्वीकार नही किया जा सकता। इससे अधिक से अधिक यही समझा जा सकता है कि यह उस युग मे हिन्दू राजतंत्र की मान्यता तक ही सीमित थी। आलमकवि के निर्देशों से ज्ञात होता है कि ऐसे शासन मे मद्यपान वर्जित था। प्रजा को चोरी आदि का भय नही था तथा शासन द्वारा सत्कर्म के प्रवृत्त होने के लिए प्रेरक वातावरण निर्मित किया जाता था। तीनों नगरियों के वर्णनों से प्रकट है कि हिन्दू राजाओं के दरबार

१. डॉ० बेनीप्रसाद : हिन्दुस्तान की पुरानी सभ्यता, पृष्ठ ३९०

विद्या और कला के केन्द्र होने के साथ साथ सांस्कृतिक वातावरण से युक्त थे (दे० पृ० १९०-९५ तथा पृ० २०५)। ये विवरण समकालीन इतिहास के विवरण के समान ही हैं। आलम के नृत्य-संगीत-विषयक विवरण अन्य काव्यों के विवरणों से अधिक विशद और सजीव हैं और हमारे इस निष्कर्ष को पुष्ट करते हैं। इसके अतिरिक्त राजा कामसेन का विक्रम के हाथों कामकदला को न सौंपने का निर्णय भी इस युग के हिन्दू राजाओं किंवा राजपूतों की स्वाभिमानी प्रवृत्ति का परिचायक है। मध्यकालीन भारत के इतिहास मे ऐसे कितने ही उदाहरण भरे पड़े हैं जिनमे आश्रितों के लिए हिन्दू शासक बड़े-से-बड़े संघर्ष झेलने को प्रस्तुत हो जाते थे। सामाजिक मूल्यो के दृष्टिकोण से उपरिनिर्दिष्ट गणिका-प्रेम के संबंध मे यहाँ इतना लक्ष्य कर लेना पर्याप्त है कि विक्रम ने भले ही माधव को सहायता दी हो, किन्तु उसे सामाजिक मान्यता प्राप्त नही थी। विक्रम के कथन का कुछ अंश ऊपर उद्धृत किया जा चुका है जिसके अतिरिक्त सामाजिक मान्यता का निर्देशक यह कथन भी उल्लेखनीय है—

> गनिका गृष सों काज, ऊँच-नीच चीन्हे नहीं।
> बोलहि बचन लै लाज, बस करि राखे पर पुरिस ॥

आस्थाओं, मान्यताओं के सांस्कृतिक निर्देश

उपर्युक्त विवेचन के अतिरिक्त समकालीन सांस्कृतिक जीवन के अनेक स्फुट निर्देश भी इस काव्य मे आये हैं। आलम ने राम, कृष्ण, शंकर, पार्वती, गणेश, सूर्य, इन्द्र, कुबेर, गंधर्व, किन्नर आदि पौराणिक देवताओ या व्यक्तित्वो के उल्लेख द्वारा प्रकारातर से तद्विषयक धार्मिक आस्था को अंकित किया है। ब्राह्मण अथवा पुरोहित द्वारा देवाराधन कराना भारतीय आस्था के अनुसार आज भी कल्याणकर माना जाता है। प्रस्तुत काव्य का नायक माधव इसी कार्य के लिए राजा कामसेन के यहाँ नियुक्त था। इसी प्रकार पुण्यकार्य के रूप में दान करना तथा शुभचिन्ह के रूप मे माधव का तिकल लगाना भी तत्कालीन आस्था को अभिव्यक्त करता है। विद्या की अधिष्ठात्री देवी के रूप मे सरस्वती तथा विद्या के देवता के रूप में बृहस्पति एवं महान चिकित्सक के रूप मे धन्वंतरि के उल्लेख पौराणिक मान्यता के अनुरूप ही हैं। धार्मिक आस्था से दान के अतिरिक्त दान की प्रतिष्ठा पुरस्कार के रूप मे भी थी और यह कार्य राजा के सुयश विस्तार का साधन भी माना जाता था। राजा कामसेन द्वारा माधव को पुरस्कृत करना इसी तथ्य को घोषित करता है।

इन आस्थाओं के अतिरिक्त जनजीवन मे व्याप्त अनेक सामाजिक मान्यताएँ एव लोकविश्वास भी इस काव्य द्वारा प्रकाश मे आते हैं। इनमें से प्रथम भाग्यवाद या तद्गत विश्वास का है। मंगलाचरण में ही कवि अकबर के विस्तृत साम्राज्य को विधाता के नृत्य के रूप में देखता है—'एक छत्रु राज बिधाता तीनों' से यह स्पष्ट है। माधव के धृष्टतापूर्वक उत्तर से क्रुद्ध होकर जब राजा कामसेन उसे निष्कासित करता है, तब राजाज्ञा के स्वाभाविक और संगत

होते हुए भी माधव व्यथित तथा व्याकुल होकर अपने भाग्य को ही कोसता है, अपने कृत्य पर विचार नहीं करता। इसी प्रकार राजा भी सोचता है कि इतना दान-पुण्य करने पर भी ऐसी कटुतापूर्ण स्थिति का आना दुर्भाग्य का सूचक है जिसका कि टलना असंभव है। वह कहता है, "विपरीत बातों की संभावना पर विश्वास किया जा सकता है किन्तु कर्मरेखा द्वारा भाल पर अंकित विधि का लेख नहीं मिटाया जा सकता।" आलम ने इस प्रसंग पर उक्त बात की पुष्टि में हरिश्चंद्र, बलि, पांडव, रामचन्द्र जैसे मनस्वियों के पौराणिक उदाहरण भी दिये हैं। इसी प्रकार कामकंदला से विदा होते समय वियोग का कारण भाग्याधीन बताते हुए माधव ने यहाँ नल-दमयंती की कथा का स्मरण किया है। उसके विक्रम के दरबार में आने पर एक ओर राजा अपने भाग्य की सराहना करता है, तो दूसरी ओर उसका उत्तर देते हुए माधव अपनी दुरवस्था का परिचय देकर उसका कारण कर्मरेख का विग्रह बताता है और साथ ही यह भी कहता है कि 'मेरे जन्म के साथ ही विधाता ने मुझे अनुपम सौन्दर्य देकर यह प्रारब्धलेख अंकित कर दिया है कि मुझे देखकर स्त्रियाँ मुग्ध हो जांय।' 'इसके बाद वह संयोग के लिए विधाता से प्रार्थना भी करता है। अतः निष्कर्ष रूप में यह कहा जा सकता है कि इस काव्य के लगभग सभी पात्र तथा उनसे सम्बद्ध घटनाएँ भाग्यवाद की सुदृढ आस्था या विश्वास पर आवृत्त हैं।

प्रारब्धवाद की ही भाँति कर्म और पुनर्जन्म विषयक मान्यता भी इस काव्य मे अभि-व्यक्त हुई है। एतद्विषयक सिद्धान्त जहाँ जनसामान्य के विश्वास का परिचायक है, वहाँ जीवनदर्शन के दृष्टिकोण से सत्कर्म का प्रेरक भी है। कलियुग मे ब्रह्महत्या करने पर पुनर्जन्म विषयक दुष्परिणाम कामावती नरेश कामसेन द्वारा इस प्रकार व्यक्त हुआ है--

राजा ब्रह्महत्या जो करै। कलि भौं कुष्टी अवतरै॥

वस्तुतः इसे लोकविश्वास का ही एक रूप कहा जायगा, मान्यता नही।

भारतीय मान्यता के अनुसार समरभूमि मे युद्ध करते-करते वीरगति को प्राप्त होना स्वर्गप्राप्ति का मार्ग माना जाता है। गीता मे युद्ध को 'स्वर्ग का द्वार' ही कहा गया है। इस काव्य में प्रस्तुत मान्यता ठीक उसी रूप मे व्यंजित हुई है। पंचम मान्यता तीर्थयात्रा विषयक है। यह कभी शुद्ध आध्यात्मिक उद्देश्य को लेकर की जाती थी तो कभी भौतिक अभिलाषाओं की पूर्ति के लिए भी होती थी। इस काव्य का नायक माधव प्रेमिका की प्राप्ति के लिए तीर्थयात्रा का विचार इस प्रकार करता है--

खंड खंड तीरथ करूं, कासी करवत लेहूं।
मन रक्षा मरि मरि जिऔं, ढूंढ़ि मित्र को लेहूं॥

मध्ययुगीन धार्मिक जीवन के अनुशीलन से ज्ञात होता है कि इस युग के भारत मे योगियों की बाढ़ सी आ गई थी। इसके पहले से ही संत गोरखनाथ एक समर्थ साधक के रूप में प्रतिष्ठित हो चुके थे। इस काव्य में भी आलम ने गोरखनाथ के योगीरूप का निर्देश करते

हुए सच्चे प्रेमियों को योगी कहा है। वस्तुतः प्रायः सभी मुसलमान कवियों के प्रेमाख्यानों मे चाहे वे सूफी हों या लौकिक प्रेम के प्रेमी, यही विशेषता पायी जाती है। कदाचित् सूफियो की स्वीकृति के परिणाम स्वरूप यह मान्यता प्रतिष्ठित हो गई हो। सामाजिक जीवन की मान्यता तथा तज्जन्य रीति-नीतियों के दृष्टिकोण से यह काव्य सांस्कृतिक साक्ष्य का कार्य करता है। पूर्वनिर्दिष्ट कथासार से ब्राह्मणों के पूज्यस्थान पर प्रतिष्ठित होने तथा प्रत्येक स्थिति में उसकी अवध्यता कामसेन और माधव के प्रसग से लक्षित होती है। भारतीय वर्णव्यवस्था में उसके प्रति सर्वाधिक सम्मान की भावना उसकी श्रेष्ठता एवं आध्यात्मिक महानता के कारण थी। कालान्तर में यह भावना रूढ़ होकर लोकविश्वास में परिणत हो गयी। अतः उसकी हत्या को जघन्यकार्य की संज्ञा देकर फलतः नरकगमन की मान्यता जोड़ दी गयी। इस प्रेमाख्यान में उपर्युक्त तथ्य का चित्रांकन आधिकारिक कथा के घटना-प्रसंगों के माध्यम से हुआ है। माधव के अपमान भरे वचन सुनकर भी राजा उसे तलवार के घाट नहीं उतारता क्योंकि उसके अन्तर्प्रदेश मे यह विश्वास मान्यता बनकर प्रतिष्ठित हो चुका था कि ब्रह्म हत्या करने वाला कितना भी पुण्य करे, नरकगामी तथा कुष्टरोग से ग्रस्त होता है (दे० कामावती खण्ड)। इसी प्रकार राजा विक्रम ने नरहत्या को मोक्षप्राप्ति में बाधक तथा ब्रह्महत्या को उससे भी अधिक भयकर बताया है। लोकरीतियों मे विशेष उल्लेखनीय तीन पान का बीड़ा देने की घटना है। राजा कामसेन जब देश-निष्कासन की आज्ञा सुनाकर माधव को तीन पान का बीडा देते हैं, तब वह उठकर वहाँ से चल देता है—

> तोनि पान का बीड़ा लयो। राइ हाथ माधव के दयो।
> तब उठि बरन अठारह पती। चल्यौ छोड़ि मैं पुहुपावती ॥ (कामावती खंड)

इससे दो प्रकार के संकेत प्राप्त किये जा सकते हैं—प्रथम तो यह कि शत्रुभाव की घोषणा इसके माध्यम से की जाती थी तथा दूसरे वह देश-निष्कासन की रीतिविशेष रही होगी।

इन सास्कृतिक निर्देशों के अतिरिक्त लोक-जीवन के प्रचलित कहानियों, दूहो तथा उक्तियों-प्रहेलिकाओं आदि के विवरण भी इस कृति मे मिलते हैं जिनसे समकालीन लोक-सस्कृति का सजीव चित्र प्रकाश में आता है। उनसे ज्ञात होता है कि उस युग में दोहों तथा षट्पदों द्वारा चमत्कारपूर्ण भावों को समझा-समझाया जाता तथा उनको बूझना व्यक्ति की बुद्धिमत्ता का लक्षण माना जाता था। माधव के सन्दर्भ में कवि लिखता है—

> सुर सुन्दर दोहा षट्पदा, और बिस्मै परगाइ।
> बूझै चतुर बिलच्छन, माधोनल सब भाइ॥

इससे प्रकट है कि ऐसी काव्योक्तियां अनेक श्लिष्ट भावों से युक्त रहा करती थीं और उन्हें भली भाँति समझने वाले को चतुर या बुद्धिमान माना जाता था। राज-दरबार

कविताओं, उक्तियों, नृत्यसंगीत आदि कलाओं तथा पहेलियों और समस्याओं के बुझाने-बूझने से वातावरण से परिपूर्ण रहते तथा उनके मर्मज्ञों को यथेष्ट सम्मान भी मिलता था (देखिये—विक्रम सहायता खण्ड)। इस प्रकार की प्रवृत्तियों को प्रोत्साहन मिलने के कारण उनके विकास को अनुकूल प्रोत्साहन मिलना स्वयंसिद्ध है। गणपतिकृत 'माधवानल कामकंदला दोग्धबंध' में कूट प्रश्नों से युक्त प्रहेलिकाओं तथा उनके कूट और सादे दोनों ही प्रकार के उत्तर उक्तियों के रूप में प्रस्तुत हुए हैं। इस प्रसंग पर उसने प्रहेलिका के ही इतने भेद बताये हैं—आद्याक्षरी, मध्याक्षरी अत्याक्षरी तथा विचित्राक्षरी। इसके अतिरिक्त प्रश्न-प्रहेलिकाओं का वर्णन भी वहां आता है।[1] माधव के एतद्विषयक स्वभाव का वर्णन करते हुए कवि कहता है कि—

> नादइ आवइ नींदड़ी, वेदइ जागइ विप्र।
> भेद समस्या भाखई, ख्याति कहीज्जइ क्षिप्र॥—अंग ८, छन्द संख्या १४५।

ऐसा जान पड़ता है कि आलम ने ये विवरण गणपति के 'माधवानल कामकंदला दोग्धबंध' से लिए होंगे। इसके अतिरिक्त इस काव्य में प्रेम से संबंधित लोककथाओं के कहने-सुनने की सामाजिक प्रवृत्ति का भी परिचय मिलता है जो कि उस युग के लोक-जीवन में प्रचलित थी। अतः निष्कर्ष रूप में कहा जा सकता है कि आलमकवि ने लोकजीवन के सामान्य स्तरों को भी अछूता नहीं छोड़ा है।

नारी-जीवन

प्रायः सभी प्रेमाख्यानक-काव्यों की प्रधान विशेषता नारी-चरित्र के उद्घाटन की रही है। कथासार से प्रकट है कि कामकंदला नृत्य-संगीत में पारंगत एक वारांगना थी जिसमें कलाकार के रूप के साथ साथ कामिनी के रूप की भी अभिव्यक्ति है। नारी और पुरुष के सामाजिक सम्बन्धों में व्यवस्था का संकेत विक्रम और माधव की भेंट के प्रसंग में मिलता है। विक्रम कहता है कि वैवाहिक रीति के बिना किसी नारी से प्रेम करना अनुचित है, फिर गणिका-प्रेम तो और भी हीनकोटि का है जिसके स्थायित्व पर विश्वास नहीं किया जा सकता। यदि विश्वास भी किया जाय तो यह नीतिविरुद्ध है (दे० विक्रम सहायता खण्ड)। इसी प्रकार नारी के प्रति समकालीन हीनभावना का परिचय भी निम्नलिखित उक्ति में प्रतिबिम्बित है—

> राजा त्रिया सुनारि, बिढ़िया रोकब आगि जल।
> गांसी सांपिनि हारि, ये दस होंहि न आपने॥ (विक्रम सहायता खंड)

---

१. माधवानल कामकंदला दोग्धबंध, अंग ८, छन्द १४६ से १८५ तक।

नृत्य और संगीत

जैसा कि ऊपर निर्दिष्ट किया जा चुका है कि इस काव्य की घटनाएँ संगीत और नृत्य के वातावरण द्वारा संगुम्फित हैं। विशेषकर कामावती के वर्णन-प्रसंग में दोनों कलाओं का विशद चित्रण हुआ है। राजा कामसेन का माधव को अर्द्ध सिंहासन देकर स्वागत सम्मान करना उसके कलाप्रेम का द्योतक है। ललित कलाओं को राज्याश्रय देकर प्रोत्साहित करना मध्यकालीन शासकों की सर्वप्रसिद्ध विशेषता रही है और यह तथ्य प्रस्तुत रचना द्वारा समर्थित है। कामसेन के दरबार के नृत्य-संगीत के आयोजन के वर्णन में भैरवराग के साथ भैरवी, बिलावली, बंगाली, आसावरी एवं बैरारी आदि रागिनियों की संगत का अत्यंत प्रभावी चित्रण किया गया है। इसके अतिरिक्त गौड़ी, गांधारी, धनाश्री, मालकोश, मारूहिंडोल, बसन्त, मौखक, कीक कछली, टोड़ी, पटमंजरी, कामोदी और गूजरी आद राग-रागिनियों के साथ ही दीपकराग, बैराटी, करनाट की तथा सिंधवी के आलाप, मेघ मलार, केदार आदि रागों और उपर्युक्त अठारह-बीस रागिनियों के स्वर ध्वनित होते थे। मध्ययुग में आविष्कृत ध्रुपद के आलाप का वर्णन कामकंदला के नृत्य के अवसर पर आता है और इस प्रकार यह सम्पूर्ण वर्णन समकालीन संगीत का पूर्ण परिचय देने की क्षमता रखता है। इन राग-रागिनियों के साथ ही साथ वाद्य-यंत्रों के वादन का भी उल्लेख आता है जिनमें से प्रमुख वाद्य इस प्रकार हैं—पखावज, मृदंग वीणा, किंकरी। कामकंदला की नृत्य-कुशलता कथासार के विवरण से सुस्पष्ट है। यह उल्लेखनीय है कि संगीत को इतना महत्व प्राप्त था कि कलावन्त गुणियों को पूज्य तक माना जाता था।

'माधवानल कामकंदला' के सांस्कृतिक अनुशीलन के इस संक्षिप्त विवेचन से प्रकट है कि उसकी अभिव्यंजना ऐतिहासिक वस्तुस्थिति के सर्वथा अनुरूप हुई है। इन निर्देशों द्वारा इस निष्कर्ष पर सहज ही पहुँचा जा सकता है कि कवि ने भारतीय समाज और संस्कृति के सभी स्तरों तक पहुँचने का प्रयास किया है। कवि का मूल उद्देश्य प्रेमकाव्य लिखना था, जीवन का सम्पूर्ण अंकन नहीं। अतः संस्कृति तथा समाज से सम्बन्धित विशद सामग्री के प्रकाश में आने की उससे आशा करना गगन-कुसुम की भांति ही है, फिर भी इस दृष्टिकोण से भी प्रस्तुत कृति का महत्व अनुपेक्षणीय ही कहा जायेगा। सांस्कृतिक अध्ययन के परिणामस्वरूप हम इस निष्कर्ष पर भी पहुँचते हैं कि इस काव्य में पाये जाने वाले एतद्विषयक निर्देश ऐतिहासिक सामग्री का भी एक सीमा तक विस्तार करते हैं।

श्री विश्वम्भर 'मानव'

महाकवि निराला : एक इंटरव्यू

मेरे जीवन का एक बहुत बड़ा अंश अध्यापन और रेडियो-सर्विस में व्यतीत हुआ है; पर इसके अतिरिक्त भी मैंने और बहुत-से काम किए हैं। उनमें से एक है उत्तर-प्रदेश-सचिवालय के अनुवाद विभाग मे रहना। यह सन् १९४८ की बात है। उस समय वह एक स्वतंत्र विभाग था और उसमे चालीस अनुवादक काम करते थे। इसके पूर्व मैं क्वीस कालेज काशी, आगरा कॉलेज आगरा और गोकुलदास गर्ल्स कॉलेज मुरादाबाद मे एक अध्यापक के रूप में काम कर चुका था और कुछ वर्षों तक बेकार रहने के कारण अत्यधिक विवशता की स्थिति मे मैंने इस नौकरी को स्वीकार किया था। अनुवादको मे अधिकतर ग्रेजुएट थे; इसी से मैं अपने को उनसे कुछ भिन्न समझकर अलग-अलग-सा रहता था। इन्ही मे एक राजेन्द्र शुक्ल नाम के नवयुवक थे। उनके मुख पर सम्पन्नता की छाप थी और बातचीत से आत्म-विश्वास झलकता था। पूरे विभाग पर उनका प्रभाव छाया हुआ था और हमारे सुपरिण्टेण्डेण्ट मुहम्मद हनीफ तक उनसे आदर के साथ बोलते थे। स्वभाव से वे मृदु और स्पष्ट भाषी थे और अपने सहयोगियो की सहायता करने के लिए सदैव तैयार रहते थे। लोगों की ऐसी धारणा थी कि इन्हे नौकरी की आवश्यकता नही है; लेकिन विभाग पर कृपा करने के लिए यहाँ आ गए हैं। इनके स्वभाव मे कई कमियाँ भी थी। पहली यह कि काम को ये छूते तक न थे। अनुवाद के लिए जो इन्हें तीन-चार पृष्ठ मिलते थे, उन्हें अपने मित्रों मे एक-एक करके बाँट देते थे और निश्चिन्त मन से इधर-उधर घूमते फिरते थे या फिर सहयोगियों से हँसी-दिल्लगी करते रहते थे। मजाक यह बहुत खुलकर करते थे जिसमें इस बात का बिल्कुल ध्यान नही रहता था कि गँवारू अथवा अश्लील शब्दों का प्रयोग किया जा रहा है। कभी-कभी हनीफ साहब के कमरे मे बैठ कर ये गप लड़ाते-रहते थे। हनीफ़ साहब समझाते रहते थे कि शुक्ला जी इस नौकरी में कुछ नही रखा है। आप कोई व्यापार कीजिए। उसमें आपको कामयाबी मिलेगी। लेकिन शुक्ल जी की समझ मे कुछ नही आता था। अतः अपना काम स्वयं न करके दूसरों पर डालना, हल्के ढंग से बातचीत करना, निकम्मे आदमियों की तरह तमाम दिन घूमना आदि ऐसे दोष थे, जिन्हें सहन करना मेरे लिए कठिन था। मि० शुक्ला कई बार मेरे सामने से निकले, लेकिन मैं उनसे इतना अप्रभावित रहा कि उधर ध्यान ही नही दिया। मेरी इस हरकत से एक दिन जो उन्हें "झुंझलाहट आई, तो मेरे सामने आकर खड़े हो गए और 'आप ऐसे लाट साहब के बच्चे

हैं'. . .से प्रारंभ करके जो कई शिष्ट वाक्य बोले, तो मुझे क्रोध के स्थान पर हँसी आ गई। मेरा हँसना था कि मुझे हाथ पकड़ कर सीट से उठा लिया और खींचकर बाहर ले गए। बोले : चलो, कॉफी पियेंगे। उस दिन से जब तक मैं लखनऊ में रहा, दोनों साथ-साथ कॉफी पीते रहे। इसके बाद मैं इलाहाबाद चला आया। एक दिन पता चला, शुक्ला जी का मन अपने काम में नही लगता है—काम वैसे वे करते ही क्या थे—और उन्होने नौकरी से त्याग-पत्र दे दिया है। इसके उपरांत उन्होंने कुछ दिन इलाहाबाद आकर लीडर प्रेस में 'वर्क्स मैनेजर' के रूप में काम किया, कुछ दिन मुरादाबाद के पुतलीघर मे मैनेजर रहे, फिर सुना गया कि लखनऊ लौट आए हैं और 'यू-फोम कंपनी' में उत्तर-प्रदेश के प्रतिनिधि होकर आनंद से जीवन व्यतीत कर रहे हैं। कहने की आवश्यकता नही कि इस बीच हम दोनों बहुत बे-तकल्लुफ हो गए थे।

पिछली बार जब मेरा लखनऊ जाना हुआ, तो मैं राजेन्द्र के साथ ५, शाहनजफ रोड पर ठहरा, इसी बिल्डिंग मे उसका कार्यालय भी है। उसे वहाँ काम करते देख कर मुझे आंतरिक प्रसन्नता हुई। जब हम अनुवाद विभाग मे थे, तो बहुत से सपने हमने साथ-साथ देखे थे। राजेन्द्र कहा करता था : तुम काम करना, मैं मौज करूँगा। लेकिन हुआ इसका उलटा। राजेन्द्र बुद्धिमान, परिश्रमी और सफल सिद्ध हुआ, जब कि मैं निकम्मा, निराश और असफल। लेकिन सबसे अधिक आश्चर्य मुझे इस बार उसकी लबी मेज पर जिस पुस्तक को देखकर हुआ, वह थी डा० रामविलास शर्मा द्वारा लिखित 'निराला की जीवनी।'

मैंने पूछा : तुम हिंदी की पुस्तकें कब से पढ़ने लगे ? उसने शांत भाव से मेरी ओर देखा और मुस्करा कर रह गया। मेरी उत्सुकता बढी और मैंने फिर प्रश्न किया : तुम क्या निराला को जानते थे ? उसने कहा : हाँ। और डा० रामविलास शर्मा से भी परिचित हो। उसने उत्तर दिया : जी, हाँ। तुम्हारे ऊपर इस ग्रथ की क्या प्रतिक्रिया हुई ? उसने पूछा : तुम क्या मेरा इंटरव्यू ले रहे हो ? फिर यह सोचकर कि मुझे बुरा न लगे वह बोला : तुम जानते हो साहित्य की ओर मेरा झुकाव कभी नही रहा। लिखने-पढने का काम मैंने तुम्हारे ऊपर छोड दिया है। फिर भी निराला के संबंध मे पढने की इच्छा किसे न होगी ? इस जीवनी को मैंने इसलिए उठाया है कि देखें रामविलास ने निराला को और साथ ही अपने को किस रूप मे चित्रित किया है। फिर बोला : हटाओ, कोई और बात करो। इससे मुझे लगा कि सीधे बात को बढ़ाना कठिन है। अतः कार्यालय में, कॉफी हाउस मे, घूमते समय, सोने से पहले, निराला जी के संबंध में जो बातचीत हुई, उसे मैं व्यवस्थित ढंग से यहाँ रख रहा हूँ। इसका आशय निराला के संबंध मे एक और व्यक्ति के परिचय पर प्रकाश डालना है। मेरा विश्वास है कि निराला जहाँ-जहाँ रहे हैं, वहाँ और भी ऐसे बहुत-से लोग होंगे, जो उन्हें इसी प्रकार जानते हों और साहित्य में रुचि न रखने के कारण उनके संबंध में चुप रह गए हों।

●●

चैत्र-भाद्रपद, शक १८९२]

मैं—निराला को पहली बार तुमने कब और किस स्थिति में देखा?

राजेन्द्र—सन् १९२९-३० मे। निराला जी का नाम मैंने बहुत पहले से सुन रखा था लेकिन देखा कभी नही था। मेरे पिता उन्नाव मे रहते थे। जुलाई का महीना था। मूसलाधार वर्षा हो रही थी। रात के साढे ग्यारह बजे होंगे। उसी समय भीगते-भीगते निराला जी ने घर का दरवाजा खटखटाया। ये खद्दर का कुर्ता पहने हुए थे। पुस्तको का एक गट्ठर कुली के सिर पर था। साथ में ह्विस्की के तीन अद्धे। मैं तो इस दृश्य को देखकर चकित रह गया और सोने चला गया; लेकिन मेरा अनुमान है कि ये और मेरे पिता काफी रात तक पीते रहे और बातचीत करते रहे।

मैं—तुम्हारे पिता जी से उनका परिचय कैसे हुआ?

राजेन्द्र—पहली बात तो यह कि मेरी मां और ये किसी समय एक ही वश से संबध रखते थे, लेकिन पिता जी से इनका परिचय (माधुरी) के सपादक श्री मातादीन शुक्ल के माध्यम से हुआ। मुझे याद है कि जब निराला कलकत्ते मे थे, तब वहाँ से पिता जी के नाम 'मतवाला' भिजवाया करते थे।

जब ये उन्नाव पहुँचे, इनके पास तीन सौ रुपये थे। दस दिन ये वहाँ रहे। गोश्त-पुलाव पकता रहा। सध्या-समय ये इक्का करके कानपुर जाते थे। निराला के संबंध मे दो-तीन बातों को स्पष्ट रूप से समझ लेना चाहिए और उस सबध मे किसी को भी बुरा नही मानना चाहिए। यह मानकर चलना चाहिए कि वे गोश्त खाते थे, शराब पीते थे और उन्हे वेश्याओं से गाना सुनने का शौक था। लेकिन एक बात जो मैंने विशेष रूप से लक्ष्य की वह यह कि यदि हिन्दू रेस्ट्रां और मुस्लिम होटल पास-पास हो, तो वे चाय पीने मुस्लिम होटल मे अनिवार्य रूप से जाते थे, चाहे वह उतना स्वच्छ न हो। इसे उनका सामाजिक विद्रोह कहिए या भाई-चारे की भावना। तो दस दिन मे वे तीन सौ रुपये बराबर हो गए। उनमे से पद्रह बीस रुपये इन्होने इक्केवाले को भी दिए होंगे।

आने के दूसरे दिन मुझे 'परिमल' भेंट की। मेरी कुछ समझ मे नही आया। उस समय इतनी बुद्धि ही नही थी। मैंने पुस्तक वापिस कर दी, तो उसमे से 'शिवा जी का पत्र' पढ कर सुनाया और बुरा नही माना और इसके बाद ग्रथ एक ओर रखकर गोश्त के लिए मसाला पीसते रहे।

जाने के दिन मुझसे चौदह आने पैसे माँगे। बोले . डलमऊ जाने के लिए किराया नही है। इससे मुझे लगा कि ये खाली हाथ हैं। पाँच बजे शाम को गाडी जाती थी। उस दिन अपने कपडे खुद धोए। पपू शू साफ किया। साढ़े तीन बजे बारिश शुरु हो गयी। बोले : डलमऊ मे पैर धोकर इन्हे पहनूंगा। मैंने कहा : आप इस रूप मे चलेंगे, तो मै आपके साथ स्टेशन नही जा सकूंगा। इस पर हँसने लगे। स्टेशन के पास जी० एच० एस० स्कूल का बोर्डिंग-हाउस था। यहाँ कुछ लडके उनके चारों ओर घिर आए। निराला जी ने पूछा : क्या तुम राजेन्द्र को जानते हो? उन्होंने कहा : जी, हाँ, जानते है। इस पर उन्होंने 'परिमल'

की प्रतियाँ बाँटनी प्रारम्भ कर दी और थोड़ी देर में चादर झाड़कर कंधे पर डाल ली।

मैं—लखनऊ में निराला जी जिन स्थानों पर रहे, वहाँ कभी तुम इनसे मिलने गए ?

राजेन्द्र—लखनऊ में इनसे मेरी भेंट हीवेट रोड पर स्थित 'भार्गव होटल' में सन् १९३० में हुई। उस समय ये एक मेज़ पर मुर्ग़ वग़ैरह खा रहे थे। देखकर ऐसा भ्रम होता था कि कम-से-कम पाँच-सात सौ रुपये महीने तो खर्च करते ही होंगे। इसके उपरांत इन्हें 'गुइन रोड' पर देखा। एक कालकोठरी-सी में पड़े हुए थे और पन्द्रह रुपये महीने में खाना रहना सब चलता था। जिस समय मैं 'कान्यकुब्ज इंटर कॉलेज' में था, ये 'नारियलवाली गली' में आ गए थे। फिर ये अमीनाबाद के 'कश्मीरी होटल' में चले गए। वहाँ भी आना-जाना होता रहा। वहीं इन्होंने रामविलास शर्मा से मेरा परिचय कराया। रामविलास तब निराला जी के साथ रहते थे। इस समय इतना ही याद है कि जिस दिन उर्द की दाल और भिंडी की तरकारी बनती थी, उस दिन शर्मा जी कसकर खाते थे और महाराज इनसे पनाह माँगता था।

इसके बाद निराला काशी और इलाहाबाद चले गए।

सन् १९३५–३६ की दिसम्बर-जनवरी में लखनऊ में बहुत प्रसिद्ध प्रदर्शिनी लगी थी मैं 'सरकार होटल' अमीनाबाद मे रहता था। उस समय 'निराला' जी मेरे पास आकर ठहरे। मुझे ऐसी याद है कि प० श्रीनारायण चतुर्वेदी ने इनके नाम सौ रुपये का मनीआर्डर भेजा था। उनमे से दो रुपये इन्होंने मुझे भी दिए। एक सप्ताह बाद वे एक दिन परेशान से नजर आये। पूछने पर बोले : तम्बाकू खायेंगे। पैसे नही हैं। इस प्रकार के व्यवहार से ऐसा कौन है, जो उन्हें प्यार न करने लगता ?

मैं—जब वे इलाहाबाद मे थे, तब भी क्या तुम्हारी उनसे भेंट हुई थी ?

राजेन्द्र—एक भेंट 'साहित्यकार संसद' मे हुई। उस समय वे चारपाई पर बैठे अंग्रेजी मे 'मिल्टन' के ग्रंथ उलट-पलट रहे थे। मुझे देखते ही ग्रंथावली रख दी। मेरी माँ तथा पिता जी का कुशल-समाचार पूछा और साथ ही यह भी कि अब हमारे पास कितने बीघे ज़मीन है और खेती-बाड़ी ठीक से होती है या नही। और भी बहुत-सी व्यक्तिगत बातें पूछते रहे। नौकर को बुला कर कहा : इनके लिए चाय बनाओ। जब उसने उत्तर दिया कि दूध नही है, तो आलमारी की ओर संकेत करके बोले : वहाँ हमने छिपाकर रख दिया है। जाओ, ले जाओ। चाय बनी और पी गयी।

फिर उठ खड़े हुए। कमरों से निकलते हुए जहाँ झुकना पड़ा वहाँ बोले : यह कमरा तुम्हारा है; जहाँ सीधे होकर निकले वहाँ कहा : यह हमारा है। कहने लगे : उन्नाव मे तुम्हारे पिता की ज़मींदारी है, मैंने ही खरीदवाई थी। कलकत्ते मे भी हमारे कई बँगले थे।

यह सब सुनकर मैं थोड़ा चिंतित हो उठा।

दूसरी बार दारागंज में कमलाशंकर जी के यहाँ उनसे भेंट हुई। उस समय मैं विदेश से लौटा था। निराला जी अंग्रेजी में बात करते रहे। पूछा : तुम्हारे पापा कहाँ हैं ? तुम्हारी

मदर का क्या हाल है ? सात वर्ष मैं भी 'केम्ब्रिज' मे रह चुका हूँ। एक बार महारानी विक्टोरिया से भी मेरी भेंट हुई थी।

मैं स्तब्ध भाव से उनकी ओर देखता रह गया।

मैं—क्या उनकी बातचीत से तुम्हे ऐसा लगा कि उनका मानसिक संतुलन नष्ट हो गया है ?

राजेन्द्र—हाँ, निश्चित रूप से हो गया था। इसमे मुझे बिल्कुल संदेह नही है। लेकिन वे इतने पागल नही थे कि किसी को मार बैठते।

इसके बाद जब मैं 'लीडर प्रेस' मे आया, तो वे मुझे पहचान नही पाए; अतः मैं नमस्कार करके सामने से हट गया।

मैं—कुल मिलाकर निराला के संबंध मे तुम्हारी क्या धारणा है ? व्यक्ति के रूप मे तुमने उन्हे कैसा पाया ?

राजेन्द्र—मेरी धारणा है कि कुछ गडबडी उनके उपनाम 'निराला' के कारण भी हुई। उसका मनोवैज्ञानिक प्रभाव उनके ऊपर पड़ा और उसके अनुरूप उन्होने अपने को देखना-दिखाना और ढालना चाहा। उदाहरण के लिए होटल मे रामविलास शर्मा को तो वे अपने साथ रखते थे, उन पर काफी खर्च करते थे; लेकिन अपने पुत्र रामकृष्ण से नही मिलते थे। रामकृष्ण मॅरिस कालेज मे पढ़ते थे और अलग रहकर ट्यूशन करते थे। मैंने अपनी आँखों से देखा है कि यदि बाप-बेटे रास्ते मे आमने-सामने से आ रहे हो, तो निराला जी कतरा जाते थे। यह व्यवहार मेरी समझ मे कभी नही आया।

वैसे वे बड़े सहृदय व्यक्ति थे। दूसरो के लिए उनसे जो कुछ भी बन पडता था, करते थे, वह कौन है, उसका दुःख वास्तविक है भी अथवा नही और हाथ का सब कुछ गँवा देने के उपरात उनका अपना खर्च कैसे चलेगा ? वे दूर तक परिणाम की कल्पना नही कर सकते थे और अपनी सहज भावुकता में कभी-कभी ऐसा व्यवहार कर बैठते थे जो समझ मे नही आता था।

मैं—जैसे ?

राजेन्द्र—जैसे कुछ नही।

मैं—फिर भी ?

राजेन्द्र—वह एक अत्यत व्यक्तिगत बात है। एक घटना है। इस प्रकार की घटनाएँ जीवन मे घटित होती ही रहती हैं। सन् ३६–३७ मे ये अमीनाबाद के 'सरकार होटल' मे मेरे साथ रहते थे। दो छोटे कमरे थे और एक स्नान-गृह। इनमें से एक मैने इन्हे दे दिया था। मुझे हुक्का पीने का शौक था; लेकिन सकोच के कारण उनके सामने नही पीता था। हुक्का ये भी पीते थे। अत. ये चिलम दहका कर मेरे कमरे मे चुप-से रख जाते थे। उनका यह व्यवहार बहुत अच्छा लगता था। परीक्षा के दिनों मे मुझे नीद नही आती थी, तो ठंडे पानी से मेरे पैर धोकर ये मुझे सुला देते थे। इतना कौन किसी के लिए करता है ? इस स्नेह को

कभी भुलाया नहीं जा सकता। धीरे-धीरे मैं इनसे खुलने लगा और व्यक्तिगत प्रेम की बातें करने लगा, जिन्हें ये पूरी तन्मयता और सहानुभूति से सुनते थे। शायद किसी कहानी में इन्होंने मेरा नाम भी दिया है।

पं० रामशंकर शुक्ल नाम के इनके एक मित्र थे जो उन दिनों कलकत्ते में काम करते थे। उन्हें ये महिषादल से ही जानते थे। उनकी एक भतीजी थी जिसका नाम फूल था। एक दिन निराला जी ने कहा : यदि तुम उससे विवाह कर लो, तो बड़ा उपकार हो। मैंने उत्तर दिया : यदि लड़की सुंदर है तो इसमें उपकार की कोई बात नहीं। पहली बात यह कि विवाह मेरे बी० ए० करने के बाद होगा। दूसरे, आपने इस ओर ध्यान नहीं दिया कि शुक्ल जी का और हमारा गोत्र एक है। यह संबंध हो कैसे सकता है? इस पर निराला बड़े उत्साह से बोले : मैं उसे गोद लेकर कन्या-दान करूँगा।

दूसरे वर्ष मैं लखनऊ विश्वविद्यालय के होस्टल में चला गया और ये दूसरे स्थान पर। विवाह के संबंध में इन्होंने मेरी मां को लिखा। उन्होंने इन्हें सभी प्रकार का पूरा अधिकार दे दिया। मेरे पिता उस समय रीवाँ में थे। उन्हें भी इन्होंने पत्र लिखे, जो शायद नहीं मिले। मैं सन् १९३८ में बी० ए० की परीक्षा देकर कश्मीर घूमने चला गया। विवाह पक्का हो गया।

जून के अंत में मैं 'भूसा मंडी' में इनसे मिलने गया। वहाँ रामशंकर जी अपने परिवार के साथ ठहरे हुए थे। विवाह की तैयारियाँ हो रही थीं। मुझे अपने सामने पाकर निराला कुछ हक्के-बक्के से रह गए। जल्दी से दरी बिछाकर मुझे बिठाया और फूल को बुलाकर मेरे पास बिठा दिया। फिर सहज भाव से बोले: देखो, दोनों की जोड़ी कितनी सुंदर लगती है! लेकिन क्या करें, इनके पिता ने उत्तर ही नहीं दिया; अतः इसकी शादी रामकृष्ण से कर रहे हैं। बात समाप्त हुई। यह विवाह ११ जुलाई १९३८ को नरही मुहल्ले के एक मकान में सम्पन्न हुआ। अठारह महीने के बाद फूल की मृत्यु क्षय रोग से हो गयी।

मेरा विवाह एक दूसरे स्थान पर तय हो गया और उसमें सम्मिलित होने के लिए मार्च '३९ में मैं अपनी बहिन को लेने गोरखपुर गया और पं० नंददुलारे वाजपेयी के साथ ठहरा। उनके छोटे भाई शिवदुलारे मेरे बहनोई लगते थे। बहिन ने बतलाया कि निराला जी के पुत्र रामकृष्ण जी आजकल यहीं हैं; अतः मैं उनसे मिलने चला गया। पर पहुँचा तो उस समय वे वहाँ थे नहीं थे। फूल एक चारपाई पर पड़ी थी और ठठरी हो गयी थी। मैंने अपना नाम बतलाया तो चुप रह गयी। उसने वहीं से लेटे-लेटे हाथ जोड़कर नमस्कार किया और आँसू की एक बूँद उसकी आँखों के कोने से बहकर टपक पड़ी। शायद उसे बहुत कष्ट था। मैं उस करुण दृश्य को देख नहीं पाया और बिना कुछ कहे विधाता को सिर झुकाकर चला आया।

मैं—इससे तो मन बहुत भारी हो गया। कोई और बात सुनाओ।

राजेन्द्र— गीतकार 'प्रदीप' जी बाद में फिल्मों में चले गए, 'निराला' जी के पास

बहुत आया करते थे—'कश्मीर होटल' मे भी और 'सरकार होटल' मे भी। एक दिन निराला जी हम दोनों को इक्के मे बिठाकर चौक ले गए। बोले : चलो, कही गाना सुनवायेंगे। लेकिन मोहर्रम के दिन थे; अतः गाना न हुआ। इक्के वाले ने कहा : हुजूर, मुझे छोड़ दें। निराला जी ने उसे गर्दन पकड़कर उठा लिया और बोले : बको मत, वापिसी इसी इक्के में होगी। वह डर गया और कुछ न बोला। उसी इक्के मे हम लोग गोमती नदी के किनारे आए। रात का समय था। चाँदनी खिली हुई थी। प्रदीप से कहा, कविता सुनाओ। प्रदीप का कंठ बहुत मधुर था। सुनाते रहे। फिर निराला जी ने अपनी कविताएँ सुनायीं। इसी में पौ फटने का समय हो आया। इक्केवाले को हिलाया और कहा—चलो। मैंने तंग आकर जब कहा कि अब मैं आपके साथ कभी नही आऊँगा, तो हँसने लगे। अब ऐसे आदमी के साथ क्या किया जाय ?

डाक्टर राधिकाप्रसाद त्रिपाठी

संत गोविन्द साहब की अज्ञात रचनाएँ

गुलालपंथ के यशस्वी संत गोविन्द साहब का व्यक्तित्व और कृतित्व अभी तक समुचित रूप से प्रकाश मे नही आया है। वास्तव मे विद्वानो की दृष्टि इनकी ओर अभी थोड़े ही दिन-पूर्व गई है। गोविन्द साहब के कृतित्व का मूल्यांकन करते हुए इनकी सत्यसार, सत्यटेर, गोविन्द योग भास्कर, सत्यटोप और ज्ञानगुह्य नामक रचनाओ की चर्चा समय-समय पर हुई है।[1] गत दिनों इस दिशा में कार्य करते हुए प्रस्तुत लेखक को गोविन्द साहब की कुछ और रचनाएँ प्राप्त हुई हैं जिनसे उनकी साधना का यथोचित परिचय प्राप्त होता है। आगे की पंक्तियो मे इन अज्ञात रचनाओं का विवरण प्रस्तुत किया जाता है। आशा है इससे अनुसंधित्सुओं को गोविन्द साहब का विशद अध्ययन प्रस्तुत करने में सहायता मिलेगी।

ज्ञानदीप—यह सार, दोहा, कुण्डलिया और छप्पय छंदों में रचित एक लघु कृति है। ज्ञानतोप वास्तव मे ज्ञान का तोप है। इस कृति के शीर्षक की सार्थकता इस बात में है कि जिस प्रकार तोप शत्रु दल का नाश कर विजयश्री प्रदान करता है, ठीक उसी प्रकार ज्ञान अज्ञान को विनष्ट कर जीव को सासारिक माया जाल से मुक्त कर देता है। इस रचना की प्रामाणिकता असंदिग्ध है क्योंकि सर्वप्रथम तो यह कृति गोविन्द साहब के प्रसिद्ध शिष्य पलटू साहब की शिष्य-परम्परा के संत प्रभुदास जी व्याकरणाचार्य के सौजन्य से प्राप्त हुई है और दूसरे यह कि इसमें गोविन्द की छाप भी लगी है। यही नहीं कवि ने 'गुरु भीखानन्द चरण कमल रत' कह कर इसे और भी पुष्ट कर दिया है। प्रस्तुत रचना में साधना की उस अवस्था का वर्णन किया गया है जो गिरा की गति के परे है और जहाँ बिना पग के ही चलकर साधक सुखों की खान को प्राप्त कर लेता है। उदाहरण के लिए प्रारम्भ के दस छन्द नीचे दिये जाते हैं—

ज्ञान ध्यान परमान करो, तहँ जहँवाँ सुर ध्वनि बाजै।
छवि समूह जड़-जंगम युत ह्वै अनहद रूप विराजै॥
राह अलौकिक भास भीतरै बिनु नैनन लखि छाजै।
गैबी जूब जहाज बाज करि देखि गिरा गति लाजै॥

१. क—हिन्दुस्तानी, भाग २५, अंक १-४ पृ० १९८-२०१
ख—उत्तरी भारत की संत परम्परा, पृ० ५५२

झक-झक झकहट चहुँ दिशि भौ दामिनि दुति गाजै।
धारा धाय करार बिदारै वर्व रान घर साजै।
पंडित परिजन सुत कन्या जुत रतवा बाहर आजै।
सत्य शब्द वर वदन गवन लखि लेनि सुरासर भाजै।।
गंगा जमुना और सरोस्वति सुखमन चढ़े निशेनी।
पावन पवन अनल जल बरसत सरसत बरसत फेनी।।
अति अमान तान तरंगन सूरति निरति विलासा।
पैठि असनान करत हैं तहवां करत कठिन भ्रम फांसा।।
विन-विन वरस परस जल निरमल खल खलगन गति नाहीं।
मति अनुमान नाम की महिमा सुजन समाज समाहीं।।
श्रुति पुराण स्मृति प्रति बानी चलत तहाँ सकुचानी।
पगु बिन चलै चरण बिन पहुँचै खुलै सुधा रस खानी।।
सुभ रस नाद बाद बिन्दु बाहर मति रति तहाँ लुभानी।
आप उलटि आप में देखै विहंस बिलास समानी।।

पहाड़ा—सत साहित्य मे पहाडा लिखने की एक परम्परा सी रही है। बाबा धरनीदास और गुलाल साहब कृत पहाडा शीर्षक रचनाएँ प्रसिद्ध हैं। धरनीदास कृत "पहाडा" मे दहाई तक की संख्याओं का प्रयोग किया गया है किन्तु गुलाल साहब ने अपने 'पहाडा' मे एकादश तक की संख्याओं का प्रयोग किया है। गोविन्द साहब ने अपने आजा गुरु गुलाल साहब के पग-चिह्नों का अनुगमन न करके धरणीदास की भाँति एक से लेकर दस तक की संख्या को आधार बनाकर पहाडा लिखा है। गोविन्द साहब विरचित पहाडा मे संसृति छल से मुक्त रहने, गुरु के माध्यम से सत्य को पहचानने, त्रिविध तापों को भगाने, कथनी और करनी की एकता तथा समाधि दशा का वर्णन किया गया है। वास्तव मे इतने कम शब्दो में साधना की विविध स्थितियों का सुलझा हुआ वर्णन आसानी से नही प्राप्त हो सकता। इस रचना की प्रामाणिकता असदिग्ध है क्योंकि यह भी संत प्रमुदास जी के पुराने गुटके मे संकलित है। इसके अतिरिक्त इसमें भी 'प्रभु भी खानद आनन्द घर जै गोविन्द रहे समाय' कहकर कवि ने अपने साथ ही गुरु के नाम की छाप भी लगा दी है। अध्ययन की सुविधा के लिए इस लघु रचना को अविकल रूप मे प्रस्तुत किया जाता है—

एक अगम गति लखि गुरु पूरा, संसित छल तजि रहत हजूरा
दोइ भ्रम वचन सपन जिमि जानै सतगुरु मिलै सत्य पहिचानै
तीयां त्रिविध ताप जब भागै आवै आप पुरुष उठि जागै
चौथे चारि बरण है सोई आपै आप दूजा नहि कोई
घर बाहर मन को विस्तारा रोजा बुत है तासु पसारा

चार चपल चित चेतन भये चरम सून्य, चालित निज छये
पाँच चेन पच सूप न दूजा सत्यगुरु सत्य लखायो .पूजा
उलटि पलटि साधे निज देही दिव्य दृष्टि जब देख सनेही
छठयें छाया सम जग देखें साठि सून्य को कौन परेखें
ऊपर मध्य हेठ पुनि एका, मुरसिद के दिन सहज विवेका
सात सत्य साजन जब बोलै होइ अडोल गाँठि तब खोलै
राजा परजा निज धर्म जानै साहु सयान चोर पहिचानै
आठ अठारह अटकि बिसारै आप तरै सौ सब जग तारै
प्रभु निज नैन सैन कहि दीन्हा सत्य स्वरूप कीन्ह तेहि चीन्हा
नवयें नजरै नजर निहाला, आपै आप जरा जंजाला
रहे समाय लखै गति सोई मिलै अनल फिरि काठ न होई
दसयें देखत रूप लोभाना, कहन सुनन गति रहनि समाना
आधि न व्याधि समाधि निसानी गुरु गम अगम न जाय बखानी

दोहा—यह गति अगम अपार है, बरनत बरनि न जाय।
प्रभु भीखानंद आनंद घर, जँ गोविन्द रहे समाय॥

अलिफनामा—संत साहित्य में वर्णमाला के आधार पर वाणी-रचना की प्रवृत्ति बहुत पहले से रही है। जिस प्रकार देव-नागरी लिपि मे वर्णमाला के आधार पर ककहरा और बावनी या 'बावन अखरी' शीर्षक रचनाओ का प्रणयन हुआ उसी प्रकार फारसी लिपि के आधार पर सिहर्फी, अलिफनामा आदि भी लिखे गये। यारी साहब ने अपने 'अलिफनामा' में फारसी के तीस अक्षरों को प्रेम का अक्षर बताया है किन्तु न जाने क्यों उन्होंने वर्णमाला के शेष ६ वर्णों को छोड़ दिया। स्मरण रखना चाहिए कि फारसी वर्णमाला मे कुल ३६ वर्ण होते हैं। कदाचित् यारी साहब के आधार पर कालान्तर मे बुल्लेशाह ने भी केवल तीस वर्णों को महत्त्व देकर सिहर्फी की रचना की। यारी साहब के एक दूसरे अलिफनामें में 'गाफ' को निकाल कर केवल २९ वर्णों का प्रयोग किया गया है। तात्पर्य यह कि अलिफनामें में वर्णों की कोई निश्चित संख्या कभी नहीं रही।

गोविन्द साहब ने अपने 'अलिफनामा' में यारी साहब और बुल्लेसाहब के द्वारा परित्यक्त वर्णों के अतिरिक्त दो वर्णों को और छोड़ दिया है, ये हैं 'काफ़' और 'गाफ'। इस प्रकार प्रस्तुत अलिफनामा में केवल २८ वर्ण प्रयुक्त हुए हैं।

इस रचना में गोविन्द के घट में व्याप्त होने, मुर्सिद और मुरीद के संबध, दिन-रात जलानेवाले जगत के जंजाल, चंचल चित्त को दलित करने, सुरति डोर तथा आप में आप समाने के अतिरिक्त साधना के अन्यान्य पक्षों का भी वर्णन किया गया है। इस कृति के आदि, मध्य और अंत की कुछ पक्तियाँ नीचे दी जाती हैं—

आदि—'अलिफ' गोविन्द है आप में आठो पहर हजूर।
नावसि छोड़ि इल्लसि को ध्यावै तब देखै वह नूर॥
'बे' बाहर भीतर है सोई बिनु मुर्शिद नहिं पावै।
बिसमिल होय बिसरावै दूजा बदन बीच दरसावै॥
'ते' तन तोरि तख्त चढ़ि ध्यावै तनिक जुदा नहीं होवै।
तिल तिल तू है तुफानै जारै तारै तार बिलावै॥
'से' सालिम मिलि सुकर सहज ही सिदिक साहिबी जानै।
अंदर अदब अकेला हरदम साँई साँचा मानै॥

मध्य— 'जाद' जिद्द मत करो जिन्दगी नाहक जावै।
बख्त आदमी रवै तभी सिर धुन पछितावै॥
जा जिन्दगी जातवाद निज हाथ छपानी।
जहूर जुदा को जारि ज्योति जाहिर पहिचानी॥
तो ताली व गम हूं तरै तालीव जो जैसा।
आलिम साँचा पाय पालिम सुख तैसा॥
हिन्दू हद्द विचारि तुरुक सो तत्त्व बखाना।
हद तत्त्व दोउ इसिम निर्मल एक ठिकाना॥

अन्त— 'हमजा' हालति दस्तगीर बिन को दरसावै।
गुरु चेला सम होय सहज ही उलटि समावै॥
हम हमारि को त्यागी जागि सामिल होइ रहना।
नही गहै नहिं त्याग समुझि सोना सोइ गहना॥
'इय' आसिक आइसीक इसिम सामिल जब होई।
को मुरीद को पीर परसमिलि पारस होई॥
बेद कुरान विचारि पीर मिलि पर अनि हारा।
नाम तोरवत जब वेह गोविन्द सो एक हजारा॥
॥ इति अलिफनामा ॥

राम गुह्य—यह एक लघु रचना है। इसमे कुल २४ छंद हैं। 'राम गुह्य' से दो अर्थ निकल सकते हैं, प्रथम रामगुच्छ का और दूसरा रामगुह्य का। वर्ण्य विषय के आधार पर इस कृति का नाम रामगुह्य ही प्रतीत होता है क्योंकि इसमे आदि से अंत तक आराध्य की गुह्यता का ही वर्णन किया गया है। कथन की पुष्टि के लिए "जाकर अगम अगोचर नाऊँ जाति न पाँति गांव न ठाऊँ" तथा 'जा कहँ वेद पुराण बखाने, कहत थकै पै परम न जाने' जैसी

पंक्तियाँ पर्याप्त होंगी। अध्येताओं की जिज्ञासा की शांति के लिए 'रामगुझ' अविकल रूप में प्रस्तुत है—

चौपाई— जाकर अगम अगोचर नाऊँ जाति न पाँति गाँव न ठाऊँ ॥
जा कहँ वेद पुराण बखानैं, कहत थकै पै मरम न जानैं ॥
सो प्रभु सब में सबते न्यारा, जो जानै सो उतरै पारा ॥
जँ गोविन्द तेहि कारन भाई देह गेह की सुधि बिसराई ॥
मिलि सतगुरु हम मारग बूझा आय खोय आप सब सूझा।
ताकी सुरति बरणि नहिं आई जो देखै सो रहै समाई ॥
अलख पुरुष शब्द एक बोला, सोई एक पवन होइ डोला ॥
पवन रूप धूवाँ होइ आवा तामें नभ स्वरूप दरसावा ॥
सो बिलगा जिमि गली बनौरी, ताते जल उपजा तेहि ठौरी ॥

ताकी मैलि धरनि अलगानी सेस सो निर्मल रहा जो पानी ॥
यहि विधि पाँच तत्त्व उपराजा सूक्ष्म और अस्थूल विराजा ॥
सूक्ष्म रहा शब्द ढिक लागा जो अस्थूल से रहा विभागा ॥
होवै अलग एक धुनि भयऊ प्रेम पुरुष लखि चित निर्भयऊ ॥
सो चैतन्य जड़ पिण्ड संवारा, वेद कुरान सकल ते न्यारा ॥
ताको नाम निरंजन गाई जन कबीर तहँ रहो समाई ॥
पूरन नाम सो ताते न्यारा, जँ गोविन्द जाको बिस्तारा ॥
सबै थकै पर कोइ न पावै जँ गोविन्द ताको गुन गावै ॥
जाको नाम निरंजन राजा ताही सो औतार समाजा ॥
भये गये बहु कीरति कीन्हा, तिन्ह नाहीं वहि प्रभु को चीन्हा ॥
जँ गोविन्द तन मन मति बाधा, सुरति कमानि निरति सरसाधा ॥
सोई परम निसानी जानो आय मिलाय रहे निज मानो ॥
अचरज अगम अगोचर कीन्हा जँ गोविन्द कहँ निज घर दीन्हा ॥
नीच ऊँच ऊँचे लघु करहीं जँ गोविन्द तेहि किमि परिहरहीं ॥

दोहा— जँ गोविन्द हो नीच मति कुटिक हृदय अजान।
करता आयु निवाज हैं गावत गुन धनि ध्यान ॥
॥ इति राम गुझ ॥

स्फुट रचनाएं—उपर्युक्त कृतियों के अतिरिक्त संत गोविन्द साहब ने पद, कवित्त, रेखता, गारी आदि छंदों में भी वाणी-रचना की, जिनकी संख्या २०० के आसपास है। गोविन्द

[illegible], शक १८९२]

साहब के पदों में सहजता एवं तन्मयता अपेक्षाकृत अधिक है। इनकी सशक्त भाषा और सहज अभिव्यक्ति किसी भी पाठक को बरबस अपनी ओर आकृष्ट कर लेती है। वास्तव में यह संयोग की बात है कि गोविन्द साहब की रचनाएँ इतने दिनों तक अंधकार में ही रह गई। आगे की पंक्तियों में इनके कुछ फुटकर छंद उद्धृत किये जाते हैं—

(१)

अजब एक यार है मेरा जिन्होंने जीव तारा है
हुए आशिक हमारे पर बदन में गुल हजारा है
शब्द की फासुरी वटि के गले विच आनि डारा है
उन्होंने मुझे साहिबी बक्सी बजत मंबी नगारा है।
गोविन्द मासूक है नादिर फिदा आशिक हमारा है॥

(२)

चेतन ब्रह्म अनन्द के कन्द,
स्वछन्द स्वतंत्र जो अन्तरजामी;
अवतार अनन्त धरे भगवन्त,
कृपानिधि सन्तन के हित स्वामी।
छिति नीर कृसानु समीरन आदिक,
देह रच्यो अपनो अनुगामी;
हरि हेतु लखे तो भजे रघुनाथ,
गोविन्द गोविन्द नमामी नमामी।

(३)

मोतियन कर गजरा सीस लहरिया पाग में॥
चढ़ि बाबन आये संग लिए सब साज में॥
यह अकथ कहानी अजब अजायब राज में॥
यहु सिखना है मेरो सपरि गये सब साज में॥
गोविन्द रंग राती जाके ज्योति सिर पाग में॥

(४)

झला झल झलकि को देख केरे चित्त चैन हुआ दिल-रैन मेरा
निज अंग को संग बनाय के जी बिलखाय दिया गुरु साँच डेरा
दरियाव समुद्र के पार है रे तहँ ठहरि सकै नहिं नाव-बेरा
'गोविन्द' कहै यार बाँका खुलि गयो ताको अब पीव हेरा॥

डाक्टर दयाशंकर शुक्ल

हिन्दी का एक प्राचीन विस्मृत पत्र 'काव्य-सुधाधर'

भारतेन्दु-युग तथा उसके कुछ वर्ष उपरान्त तक हिन्दी-क्षेत्र मे कवि-मंडलों की स्थापना तथा पत्रकारिता के प्रचार को जैसी बाढ़ आई, वैसी फिर कभी न दीख पड़ी। जहाँ-जहाँ कवि-समाजों की स्थापना हुई, वहाँ से कोई-न-कोई कविता अथवा गद्य की पत्रिका अवश्य निकली। उस समय की पत्रिकाएँ न केवल रोचक ही होती थी, वरन् समाज व राष्ट्र की गतिविधियों से भी युक्त होती थी। वस्तुतः कवि-समाज की वाणी प्रसूत होती थी इन पत्र-पत्रिकाओं के द्वारा जिनमे साहित्य के विभिन्न पक्षो पर लेख, कविताएँ तथा समालोचनाएँ प्रकाशित होती थी। सरकारी रीति-नीति पर टिप्पणी होती थी, स्वदेशी-ग्रहण व विदेशी बहिष्कार की घोषणाएँ छपती थी। राजकोप से बचने के लिए कभी-कभी राजभक्ति विषयक कविताएँ भी इन पत्रो मे स्थान पा जाती थी। एक प्रकार से जन-जागरण का सर्वोत्तम माध्यम ये पत्र-पत्रिकाएँ ही थीं। 'काव्य सुधाधर' ऐसा ही महत्वपूर्ण पत्र था।

भारतेन्दु के देहावसान के बारह वर्ष पश्चात् पंडित देवीदत्त त्रिपाठी 'दत्त द्विजेन्द्र' ने ३० मई सन् १८७७ ई० में 'श्री कविमंडल बिसवां' (सीतापुर) की स्थापना की थी। कुछ समय उपरान्त स्थानीय जमीदारा के सहयोग से उन्हाने 'काव्य-सुधाधर' पत्र का प्रकाशन भी प्रारम्भ किया। दत्त द्विजेन्द्र जी कवि मंडल के मंत्री थे तथा 'काव्य-सुधाधर' के संपादक व प्रकाशक भी थे। यह पत्र सवत् १९५४ विक्रमी से संवत् १९६१ विक्रमी तक सतत प्रकाशित होता रहा। प्रारम्भ मे यह त्रैमासिक रूप से निकला, किन्तु ३० जुलाई सन् १९०० ई० में अपने प्रकाशन के चतुर्थ वर्ष से यह मासिक हो गया। मुख्यतः यह पत्र समस्यापूर्तियों का था, किन्तु इसके अंतिम पृष्ठों में पुस्तक-समीक्षा, समाचारावलि, सरकारी आज्ञाएँ, कवियों के पत्रोत्तर, वाद-विवाद तथा समसामयिक कवि-समाजो एवं पत्र-पत्रिकाओं की स्थिति पर भी प्रकाश डाला जाता था। पुरस्कार की घोषणा छपती थी, अगले अंक के लिए समस्याएँ दी जाती थीं तथा पूर्तिकारों के लिए नियम व निर्देश निरूपित रहते थे। कभी-कभी भाषा-विषयक दृष्टिकोण का स्पष्टीकरण भी छपता था। अंतिम पृष्ठ में पुस्तकों तथा औषधियों आदि के विज्ञापन भी रहते थे। प्रारम्भ के पृष्ठों पर कभी-कभी वार्षिक अधिवेशनों का लेखा-जोखा प्रकाशित होता था, सफलता-असफलता पर विचार किया जाता था तथा सदस्यों को धन्यवाद दिया जाता था। इसके अतिरिक्त उपाधि वितरण का विवरण भी रहता था। मासिक

पत्र का आकार बारह पृष्ठ से तीस पृष्ठ तक होता था और त्रैमासिक पत्र ९० पृष्ठ तक होता था। मासिक पत्र की एक प्रति का मूल्य एक आना तथा त्रैमासिक की एक प्रति का मूल्य चार आना होता था। बालकों, स्त्रियों तथा मुसलमानों के लिए विशेष छूट थी। पत्र के मुखपृष्ठ पर नियमावली छपी रहती थी तथा सबसे ऊपर पत्र का आदर्शवाक्य लिखा रहता था—

> काव्यामृतरसस्वादे निवसामो वयम्भुवि।
> किंवा काव्यरसस्वादुः किंवा स्वादीयसी सुधा॥

'काव्य सुधाधर' कानपुर में श्री मनोहरलाल मिश्र के रसिक प्रेस में छपता था। इसके कुछ अंक ब्राह्मण यन्त्रालय कानपुर में तथा कुछ अंक ब्रह्मप्रकाश यन्त्रालय बिठूर में भी छपे थे। कालान्तर में जब 'भारतभानु' पत्र 'काव्य सुधाधर' में मिला दिया गया[1] तो 'काव्य सुधाधर' लाला भगवानदास जैन द्वारा जैन प्रेस लखनऊ में छपने लगा।

'काव्य-सुधाधर' मे कवियो की समस्या पूर्तियाँ छपती थी, उनमें प्रमुख हैं—पंडित नाथूरामशंकर शर्मा, लछिराम भट्ट, द्विज बलदेव, नवरत्न गिरिधर शर्मा (झालरापाटन) द्विज बेनी, सय्यद अमीर अली 'मीर,' जुलकिशोर मिश्र 'ब्रजराज', गणेशबिहारी मिश्र, बाबू शिवनन्दन सहाय, महावीरप्रसाद मालवीय 'वीर कवि', लाल रमेश सिंह जू देव (काला कांकर), चन्द्रकला बाई (बूंदी) तथा बाबू पत्तनलाल 'सुशील' (पटना) आदि।

'काव्य-सुधाधर' में समस्याएँ प्रायः नवीन विषयों पर दी जाती थी। ऋतुओं, पर्वों तथा प्रमुख घटनाओं व व्यक्तियों से सम्बधित समस्याएँ रहती थी। कभी-कभी आत्म-परिचयात्मक समस्याएँ भी दी जाती थी, जिनसे पूर्तिकार कवियो का जीवन-परिचय भी मिल जाता था। 'अमर हमारी है' ऐसी ही समस्या थी जिसकी पूर्ति करनेवाले कवियो का जीवन-विवरण आज भी उपलब्ध है। 'काव्य-सुधाधर' की कुछ प्रमुख समस्याएँ ये थी—हीरा जुबिली को है, उपदेश देते हैं, कवि बन जायेंगे, शोक है, नागरी के हैं, नागरी-प्रचारि करि दीन्हो है, दीप मालिका सी, शरद की, देश हितै विचारो, मेरी मुक्ति माला है किशोरी मिथिलेश की कोप्यो है तथा चम्बक युगुल बीच मानो लोह फंसिणो। कभी-कभी समस्याओ की पूर्ति के लिए सम्पादक की ओर से स्पष्ट सकेत रहता था कि अमुक रस मे पूर्ति की जाय तो अति

---

१. 'आवश्यकीय सूचना—सर्व महाशयों पर प्रकाश किया जाता है कि नवम्बर सन् १९०० से 'काव्य सुधाधर' और 'भारत भानु' एक ही में मिला दिए गये हैं। अब 'भारतभानु' दूसरा पत्र नहीं रहा। लाला भगवानदास जैन सम्पादक 'भारतभानु' हमारे सहकारी नियत हुए हैं और 'काव्य सुधाधर' का प्रकाश होना भी जैन प्रेस लखनऊ से आरंभ हो गया है।' देखिये—'काव्य-सुधाधर'—पंचम प्रकाश, चतुर्थ वर्ष, ३० नवम्बर, १९०० ई०, पृष्ठ २९–३०।

उत्पन्न होगा। इस प्रकार से 'काव्य सुधाधर' पत्र में नवीन विषयों तथा घटनाओं के अतिरिक्त नव रसों के सन्निवेश पर भी बराबर ध्यान रहता था। कवियों ने अपनी कृतियों में देश-काल की स्थिति को सदैव दृष्टि में रखा। इसी का परिणाम था कि उनकी कृतियों में देश-भक्ति का स्वर अत्यधिक मुखर है। यहाँ पर विस्तार से लिखने का अवकाश नहीं है, किन्तु मेरी यह निश्चित धारणा है कि तत्कालीन स्वदेशी-ग्रहण की भावना, राष्ट्र-प्रेम, हिन्दी के उत्थान का उद्योग, भाषा- संस्कार आदि के लिए केवल भारतेन्दु मंडल के कवियों का अध्ययन कर लेने ही काम नही चलेगा। भारतेन्दु मंडल से दूर-विस्मृत, किन्तु महत्वपूर्ण कवियों की रचनाओं के अध्ययन का भी समय आ गया है, जिनके अनुशीलन के बिना हमारा १९वी शती के उत्तरार्ध का इतिहास पूर्ण नहीं होता।

'काव्य-सुधाधर' पत्र का तत्कालीन साहित्य-जगत् में महत्वपूर्ण स्थान था। पंडित नाथूराम शंकर शर्मा जैसे कवि ने इसकी मुक्तकंठ से प्रशंसा की थी। सैयद अमीर अली 'मीर' जैसे अनेक कवियो ने इसके अविराम प्रकाशित होने के लिए ईश्वर से प्रार्थना की थी तथा शुभ कामनाएँ व्यक्त की थी। 'हिन्दी बंगवासी', 'हिन्दी प्रदीप', 'श्री व्यंकटेश्वर समाचार' बम्बई तथा 'हिन्दोस्थान दैनिक' (कालाकांकर) जैसे पत्रो ने इस पत्र के लिए प्रशंसात्मक टिप्पणियाँ लिखी थी। इसके सुयोग्य संपादक का अनेक कवियों ने सादर स्मरण किया है।[1] ऐसे महत्व-पूर्ण पत्र का कही विशेष उल्लेख न देख कर आश्चर्य ही नहीं, प्रत्युत खेद भी होता है।

हिन्दी पत्रकारिता के इतिहास मे १९वी शती का उत्तरार्ध स्मरणीय रहेगा। यह वह युग था, जब पंडित प्रतापनारायण मिश्र जैसे 'ब्राह्मण' सम्पादक को अपने ग्राहकों से 'दक्षिणा दान' की याचना करनी पड़ी थी। फिर भी 'ब्राह्मण' पत्र बहुत समय चल नहीं सका। पंडित देवीदत्त त्रिपाठी को भी 'अपने काव्य सुधाधर' पत्र को दीर्घजीवी बनाने के लिए अथक परिश्रम करना पड़ा था। अपने ग्राहको से पत्र का मूल्य चुकाने के लिए वे 'काव्य-सुधाधर' में बराबर अनुरोध करते जाते थे तथापि जब उन्हें सफलता नही मिलती तो वे उन ग्राहकों के नाम 'काव्य-सुधाधर' मे प्रकाशित कर देते जिससे कई बार ग्राहक संख्या कम होने का भय बना रहता था। किन्तु दूसरी ओर त्रिपाठी जी 'काव्य सुधाधर' मे नियमित रचनाएँ भेजनेवालों तथा कवि मंडल के सदस्यों को इस आशय से पुरस्कृत भी करते थे कि जिससे 'काव्य-सुधाकर' के पाठकों की संख्या सन्तोषप्रद बनी रहे। कभी-कभी लाख यत्न करने पर भी जब पाठकों की संख्या घट जाती तो सम्पादक को घाटा भी सहना पड़ता था, जिसका उल्लेख त्रिपाठी जी ने अपने एक छन्द में इस प्रकार किया है—"शुद्ध कविताई के प्रचार हेतु घाटा सहि काव्य सुधाधर को प्रकाश कियो जारी है"। तथापि काव्य सुधाधर छह वर्ष तक ही चलकर बंद हो गया। इसका प्रमुख कारण सम्पादक का असमय देहावसान था।

---

१. वत्स द्विजेन्द्र को लिखे गए पं० नाथूराम शर्मा शंकर आदि कवियों के पत्र लेखक के पास हैं।

दत्त द्विजेन्द्र जी को इस बात की बराबर चिन्ता बनी रहती थी कि 'काव्य-सुधाधर' समय पर ग्राहकों को मिलता रहे। जब कभी काव्य सुधाधर ग्राहकों को देर से मिलता तो वे अत्यंत दुःखी होकर विनम्रतापूर्वक अपने ग्राहकों से क्षमा माँगते—"काव्य-सुधार" के विलम्ब से उदय होने के कारण को हमारे बहुत से अनुग्राहक ग्राहक पत्र द्वारा जान चुके हैं तथा हम अपने ग्राहकों के बोध के हेतु लिखना उचित समझ विदित किए देते हैं कि कानपुर के प्लेगाक्रांत होने से ही पत्र के छपने मे विलम्ब हुआ। 'काव्य-सुधाधर' दूसरे प्रेस को गया और वहाँ बहुत दिन अटका पड़ा रहा . . पाठक क्षमा करें यही विनय है और हम क्या कहें।"[1]

जैसा कि अन्यत्र कहा जा चुका है, कवि मंडल की वाणी मुखरित होती थी मंडल की पत्रिका-द्वारा। 'काव्य-सुधाधर' मे भी 'कवि-मडल विसवा' की समस्त कार्यवाही प्रकाशित होती थी। कवि-मंडल द्वारा प्रस्तावित काव्य-परीक्षा व उपाधि-वितरण के सम्बंध की सूचनाएँ 'काव्य-सुधाधर' मे प्रकाशित हुई थीं—"श्री कवि मडल के वार्षिकाधिवेशन में भारत-प्रज्ञेन्दु कविराज श्री पडित नाथूराम शकर, कवि हरदुआगज जिला अलीगढ़ निवासी का यह प्रस्ताव उपस्थित किया गया कि अग्रिम वर्ष में श्री कवि मडल द्वारा समस्त कवियो की परीक्षा होवे तदनु सर्वश्रेष्ठ कवि को 'कवि कुल सम्राट' की पदवी प्रदान की जावे"।[2]

प्रस्तुत प्रस्ताव के फलस्वरूप 'काव्य-सुधाधर' के १२ वें प्रकाश दिसम्बर १९०२ के अंक मे परीक्षा-हेतु एक प्रश्नावली दी गई थी, जो इस प्रकार है—(१) काव्य का लक्षण क्या है स्पष्ट लिखो (२) शब्द व्यवस्थान्तर्गत गौणी और शुद्धा का स्वरूप लिखो और यह भी लिखो कि इन दोनों मे केवल गुण ही का भेद है, या पूर्व-पर-क्रम भी है (३) पर्यस्तापह्नुति का लक्षण पूर्ण लिखो (४) परुषादि वृत्ति और सात्विकादि वृत्ति के स्वरूप लिखो (५) ध्वनि क्या है और तात्पर्य किसको कहते हैं। (६) रसाग मे रतम्भादिक सचारी हैं या अनुभाव हैं। (७) खडिता और धीरा के भेद मे बहुधा कवि लोग साधारण चिह्न और असाधारण चिह्न कहते हैं, परन्तु इस विवरण का निर्वाह नही होता। इसमे यदि और कोई भेद हो तो लिखो। इन प्रश्नो के उत्तर देने की १५ मार्च १९०३ तक अवधि है फिर न लिये जावेगे और न किसी कवि का किसी प्रकार का हीलाहवाला सुना जावेगा। परीक्षा देनेवाले महोदयो को सावधानी से काम लेना चाहिए और उत्तर बहुत स्पष्ट तथा साधु भाषा मे लिखना चाहिए।

नवोदित कवियो को काव्यशास्त्रीय ज्ञान कराने के लिए इस प्रकार की कवि-परीक्षाएँ निश्चय ही लाभप्रद रही होंगी। केशव आदि आचार्यों ने कवियों के शिक्षण-हेतु अनेक लक्षण ग्रन्थों का निर्माण किया था। ऐसा ही कार्य ही "दत्त द्विजेन्द्र" द्वारा संपादित 'काव्य-सुधाधर' पत्र भी करता रहा। 'काव्य-सुधाधर' मे प्रकाशित उपर्युक्त प्रश्न-पत्र उच्च कक्षाओ के काव्य-शास्त्र के प्रश्नपत्र के स्तर से भी ऊँचा है। इस प्रकार के प्रयास का एक अच्छा परिणाम यह निकला कि नवोदित कवियों को काव्यशास्त्रीय ग्रथो को पढ़ने का अवसर मिला तथा काव्यागों

१. काव्य-सुधाधर: १२वाँ प्रकाश, दिसम्बर १९०२ ई० पृष्ठ २५, २६।
२. काव्य-सुधाधर ८९वाँ प्रकाश, सितम्बर १९०२ ई० मुख पृष्ठ का पृष्ठभाग।

से पूर्णतया परिचित होने के कारण उनकी रचनाओं में शास्त्रीयता का निर्वाह भी हुआ। इस दृष्टि से 'काव्य-सुधाधर' जैसे पत्र अपने आप में एक 'इंस्टीट्यूशन' ही थे।

यह वह युग था, जब खड़ीबोली और ब्रजभाषा का विवाद चरम सीमा पर पहुँच चुका था। खड़ीबोली के पक्षधर ब्रजभाषा काव्य को सहन नहीं कर पा रहे थे, उन्हें ब्रजभाषा-काव्य की प्रत्येक परिपाटी समय विपरीत व अरुचिकर प्रतीत होती थी। ब्रजभाषा के हिमायती खड़ीबोली का स्वागत करने को तैयार नहीं थे, किन्तु मध्यवर्तियों की दशा इन दोनों से भिन्न थी। वे खड़ीबोली का विरोध नहीं करते थे, वरन् कभी-कभी उसमें छन्द लिखकर आजमाते भी थे। तथापि वे ब्रजभाषा की रसमाधुरी तथा समस्यापूर्ति की परिपाटी को छोड़कर संस्कृत वृत्तवाली अतुकांत कविता की ओर प्रवृत्त भी नहीं हो पा रहे थे। प० देवीदत्त त्रिपाठी की निम्नांकित पंक्तियाँ उनकी इसी मनोव्यथा की ओर संकेत करती हैं—"ब्रजभाषा ही कविता की एक मात्र प्राचीन गढ़ी है. . .परन्तु वह अब टूटना ही चाहती है। तीन चार खड़ीबोली के कवि मिलकर उस गढ़ी के तोड़ने को. . .व्यस्त हो रहे हैं. . .। किसी को तुकान्त का सर्वनाश करना अभीष्ट है, कोई नायिका भेद के पिण्ड पड़ा है किसी ने अलंकारों से शत्रुत्व साधा है और किसी-किसी को छन्दो ग्रन्थ ही खटक रहे हैं। ईश्वर कुशल करे, हम खड़ीबोली के विरोधी नहीं है, उसमें नायिकाभेदादि ठूसना भी नहीं चाहते, परन्तु चाहते हैं अपनी प्राचीन ब्रजभाषा वाली कविता की रक्षा।"[1]

'काव्य-सुधाधर' के सम्पादक ने खड़ीबोली में छन्द लिखकर भाषा-विषयक अपने दृष्टिकोण को और भी स्पष्ट कर दिया है। 'काव्य-सुधाधर' पत्र भाषाप्रयोग के सम्बन्ध में अत्यन्त उदार था। उसमें उर्दू मिश्रित भाषा भी व्यवहृत होती थी तथा संस्कृत-पदावली-गर्भित भाषा का भी प्रयोग होता था। ब्रजभाषा के साथ खड़ीबोली में भी छन्द प्रकाशित होते थे। यहाँ खड़ीबोली का एक छन्द देखिए, जिससे उपर्युक्त कथन की पुष्टि हो जायेगी—

> एक समय भारत था शिक्षक जगत का तो इसमें भी सब ही विख्यात भरवाने से।
> कालबश आज राजपाट छूटि लूटि गई हाट बाट रोते हैं वे आपने पिगाने से ॥
> श्री द्विजेन्द्र वस्त्र व्यवसाय और साहस को त्याग जिन पौरुष किया नहीं ठिकाने से।
> वह अब क्यों कर कहाँ से कर सकते हैं उन्नति चरम बेशरम 'अफसाने से ॥'[2]

काशी नागरी प्रचारिणी सभा ने भाषा के स्वरूप-निर्धारण हेतु आठ प्रश्न किए थे, जिनके उत्तर 'काव्य-सुधाधर' में प्रकाशित हुए थे। इनसे काव्य सुधाधर का भाषा-सम्बंधी मत स्पष्ट होता है।—

(१) हिन्दी की लेख-प्रणाली संस्कृत मिश्रित होने से माधुर्य और प्रसाद-गुण युक्त होगी किन्तु संस्कृत के ऐसे कठिन शब्द न आने पावें जिससे भाषा दुर्बोध हो जावे।

---

१. काव्य-सुधाधर: पूर्ण प्रकाश, चतुर्थ वर्ष १९०१ ई०, पृष्ठ ४२, ४३।
२. काव्य-सुधाधर: पंचम वर्ष १९०२ ई० चतुर्थ प्रकाश, पृ० ८, ९

गोलोकवासी भारतेन्दु बाबू हरिश्चन्द्र जी की भी ऐसी ही सम्मति थी।

(२) संज्ञा और सर्वनाश दोनों मे विभक्ति साथ ही मिलाकर लिखनी चाहिए। समस्यमान शब्द भी मिलाकर लिखना ठीक है पृथक लिखने से भ्रम होना सम्भव है परन्तु यदि कोई विदेशी भाषा का शब्द हिन्दी के साथ समस्यमान हो तो उसका पृथक् लिखना भी उचित ही है।

(३) हुआ, हुई, हुए, गया, गयी, गये का उच्चारण प्रमाण है यही लिखना भी चाहिए।

(४) अपभ्रंशित शब्द शुद्ध हिन्दी के शब्दो के साथ में और अनपभ्रंशित शुद्ध संस्कृत शब्दों के साथ में लिखना श्रेष्ठ है। जैसे कर्णबधिर, ग्रामवधू सस्कृत मे और कानों से बहिरा, गाँव की बहू शुद्ध हिन्दी मे योग्य है इसके विपरीत कानो से बधिर और ग्राम की बहू कदापि शोभनीय नहीं हो सकते। पूर्वापर संयोग देखना चाहिए।

(५) कविता मे यदि अपभ्रंश शब्द लाने से छन्द बनता हो और शुद्ध शब्द लाने से छन्द बिगड़ता हो तो अपभ्रंश लिखना भी काव्य की प्राचीन परिपाटी के अनुसार शुद्ध है। परन्तु यदि शुद्ध शब्द लगाने से छन्द में किसी प्रकार की क्षति न होती हो तो शुद्ध ही लिखना चाहिए। और गद्य मे तो सर्वथा शुद्ध शब्दो का प्रयोग करना युक्त है। काव्य-सुधाधर मे इसका पूर्ण उदाहरण मिल सकता है।

(६) इसके उत्तर मे बड़ा विस्तृत लेख हो सकता है सूक्ष्म का भी सारांश इतना है कि अत्यत निकटस्थ भिन्न-भिन्न शब्दो को मिलाने के अर्थ 'औ' लिखना चाहिए और दूरस्थ वाक्यो के मिलाने म 'और'। विधि, आज्ञा, जिज्ञासा आदि के जानने मे 'न' समर्थ है और 'नही' भी कभी कभी। प्राय: 'नही' का प्रयोग साधारण वाक्यों मे अधिक होता है 'नहीं' के स्थान में 'न' और 'न' के स्थान मे नही कर्णकटु हो जाता है।

(७) अग, रंग, अञ्जन, स्वभाव, परन्तु, तुम्हारा, सकते, उसने, सभी, कभी, आप ही ने, देखैं, सोचैं, पावैं, होवैं, कोषाध्यक्ष, उन्होंने, इन्होंने, इत्यादि शब्द सुनने मे भले मालूम होते है, मधुरता के कारण इन्ही का लिखना भी ठीक है। अर्धानुस्वार के स्थान मे चन्द्र बिन्दु, पूर्णानुस्वार के होने से पूर्ण बिन्दु लिखना चाहिए।

(८) अंग्रेजी के 'ए' (A) और 'ओ' (O) आदि के पूर्ण और दीर्घ उच्चारण के हेतु हिन्दी के वर्ण पर एक रेखा अर्द्ध चन्द्राकार बनाना चाहिए और इन्ही वर्णोंके अर्द्ध या ह्रस्व उच्चारण हेतु नीचे एक रेखा वैदिक स्वर की भांति लगाना चाहिए। फारसी के जाल, जे, जो और ज्वाद के उच्चारणार्थ ज के नीचे एक बिन्दु से काम लेना चाहिए अन्यथा बडा भ्रम हमारी हिन्दी भाषा में भी घुस पडेगा, जिसका निकालना फिर कठिन होगा और बडे-बड़े लिखने वाले भी फारसी के'बेत्तानु' होने से हाथ-पर-हाथ रखे हुए बैठे रहेंगे। भ्रम दूर न होगा कि एक बिन्दु चाहिए या तीन। ऐसे ही सीन, से, स्वाद और तो, ते, आदि के लिए कोई विशेष चिह्न प्रचलित करने की आवश्यकता है।[1]

---

१. 'काव्य-सुधाधर': द्वितीय प्रकाश, द्वितीय वर्ष, त्रैमासिक, सितम्बर--अक्टूबर नवम्बर १८९८ ई०।

प्रश्न दो तथा छः के उत्तर न उस समय ही ग्राह्य हो सके और न आज ही ग्राह्य हैं। हाँ, यह अवश्य है कि किन्ही-किन्ही पत्रिकाओं तथा पुस्तकों में दूसरे उत्तर का प्रयोग अवश्य किया गया है। सातवें सुझाव की आवश्यकता ही नहीं थी। शेष सभी सुझाव समीचीन ही नहीं है, वरन् व्यावहारिक भी थे।

नागरी प्रचारिणी सभा ने हिन्दी भाषा के लेख तथा लिपि सम्बंधी प्रश्नों पर पुस्तक रूप में मीमासा प्रस्तुत की थी जिसकी समालोचना करते हुए 'काव्य-सुधाधर' के सम्पादक ने अपना मत व्यक्त किया था--

'विचार सभी ठीक हैं विरोध केवल 'ज' के दो बिंदी लगाकर फारसी 'जे' उच्चारण करने मे है। नागरी प्रचारिणी को विचारना चाहिए कि इस 'जे' के झगड़े को पढ़े हुए भी जल्द नही निर्मूल कर सकते तब बिचारे केवल भाषा के लिखनेवाले फारसी भाषा से अनभिज्ञ क्यों कभी 'ज' के नीचे दो बिंदी लगाकर काम चला सकेंगे। इसी से हम इसमे सहमत नही हैं।'[1] 'काव्य-सुधाधर' के सम्पादक के उपर्युक्त अभिमत एव प्रश्नोत्तरों से स्पष्ट हो जाता है कि 'काव्य-सुधाधर' की भाषान ति नागरी प्रचारिणी सभा की नीति के लगभग अनुरूप ही थी तथापि यत्किंचित् मतभेदो के कारण 'काव्य-सुधाधर' के सम्पादक तथा तत्कालीन नागरी प्रचारिणी के मन्त्री के सम्बन्ध अधिक मधुर नही रह सके, इसकी ध्वनि इन पंक्तियों में मिलती है—

'परन्तु हमारी सुनता ही कौन है नक्कारखाने मे तूती की आवाज की भाति अथवा अरण्य रोदन के समान सब व्यर्थ है। करें क्या बिना कहे भी नही रहा जाता। आखिर हम एक सभासद हैं। हमको भी कुछ अधिकार है। सभासदो की नामावली मे हमारा नाम भी लिखा है। यदि उत्तरदाताओं की नामावली मे हमारा नाम नही तो क्या हुआ?..हमारे उत्तर को 'काव्य सुधाधर' के पाठक मात्र सभी पढ चुके हैं। हमने छिपाकर केवल स्यक्रेटरी के नाम से तो भेजा न था। भूल जावे। भले ही भूल जावें।'[2] एक अन्य स्थान पर उपर्युक्त सम्बन्ध मे अधिक प्रकाश पडता है। काव्य-सुधाधर के सम्पदक काशी नागरी प्रचारिणी सभा के प्रशंसक तथा उसके द्वारा किए गये कार्यों के भारी समर्थक भी थे, किन्तु जब कभी कोई त्रुटि वे देखते तो अवश्य निर्भीकता पूर्वक लिखते थे—

"यह सभी जानते हैं कि इस सभा से नागरी भाषा का कितना गौरव बढ़ा है और यह सभा कितना उपकार कर रही है। ईश्वर इसकी सहायता करता रहे तो एक दिन हम अपनी मनोगत अभिलाषाओं को पूर्ण देखेंगे, सभा की कर्त्तव्यता आज तक अधिकतया सफल ही रही है और ईश्वरेच्छा से सफल होती रहेगी।...मैं अभी इस सभा से सम्बन्ध रखता हूँ। और ३० रु० वार्षिक सहायता देने के कारण बाहरी साधारण सभासद हूँ यदि कुछ सभा से अनुचित होता है तो मुझे मनस्ताप होता है।..कर्त्तव्यपालनकर्ता पत्रों का नाम गिनाते समय

---

१. काव्य-सुधाधर: पृ० ३८, ३९, ४०, ३० जुलाई १८९९ ई०
२. काव्य-सुधाधर: पृ० ३८, ३९, ४०, ३० जुलाई १८९९ ई०

मन्त्री जी ने दो ही चार गिनाए उनमें भी 'हिन्दी बंगवासी' और 'भारत मित्र' से उच्च श्रेणी के पत्रों को छोड़ ही दिया।...कविता विषय से न मालूम सभा क्यों घृणा करती है कि उसकी प्रकट होकर गुप्त होनेवाली समाओं और पत्रिकाओं का शोक-संवाद भी न लिखा। केवल काशी कवि-समाज का नाम लेकर कह दिया शेषकवि समाजों की शोचनीय दशा पर दुःख होता है।...आगे चलकर सभा में आनेवाले समाचार पत्रों के नाम लिखे हैं उनमें 'काव्य-सुधाधर' का नाम न देख अनुमान होता है कि और भी अनेकों के नाम न लिखे गये होंगे। यदि 'काव्य-सुधाधर' समाचार पत्रों मे नही गिना जा सकता तो पुस्तक-प्राप्ति स्वीकार मे तो मेरा नाम लिखा जाता।[1]

उपर्युक्त उद्धरणों के देने का तात्पर्य यह नही है कि 'काव्य-सुधाधर' के सम्पादक तथा नागरी-प्रचारिणी सभा के सम्बन्धो पर प्रकाश डाला जाय, वरन् उक्त उदाहरणो द्वारा 'काव्य-सुधाधर' की भाषा-नीति को ही स्पष्ट किया गया है।

'काव्य-सुधाधर' मे वर्णवृत्त तथा मात्रिक दोनों प्रकार के छन्दों का वैविध्य पूर्ण प्रयोग हुआ था। छन्दो का ऐसा बहुविध प्रयोग अन्य किसी काव्य-पत्रिका मे नहीं दीख पड़ता। छन्दों के प्रयोग मे 'काव्य सुधाधर' के कवियों का आदर्श केशव की 'रामचन्द्रिका' थी। वस्तुतः 'काव्य-सुधाधर' पत्र 'छंदो का खजाना' है तथा 'काव्य-सुधाधर' में प्रयुक्त छंदो का अध्ययन एक पृथक विषय है। कवियों ने 'काव्य-सुधाधर' मे प्रकाशनार्थ छंदो मे शृंगाररस के प्रसंग मे अनेक नायिकाओं के वर्णन द्वारा रीतिकालीन नायिका-भेद-वर्णन की प्रणाली का भी अनुसरण किया है। एक प्रकार से देखा जाय तो 'काव्य-सुधाधर' मे प्रकाशित कविताओ मे रीतिकालीन काव्य-प्रवृत्तियों का सर्वाधिक प्रभाव है।

'काव्य-सुधाधर' मे अनेक महत्वपूर्ण लेखको की रचनाओ की समालोचना भी प्रकाशित हुई थी जिनमें कुछ पुस्तको के नाम ये हैं :—नागरी दास कृत 'नागर समुच्चय', लछिराम कृत 'रामचन्द्रभूषण', भानुकवि कृत 'छन्दःप्रभाकर', मिश्रबंधु कृत 'लवकुशचरित्र', रत्नाकर कृत 'हरिश्चन्द्र', श्रीधरपाठक कृत 'मनोविनोद', भगवानदास जैन द्वारा प्रकाशित 'कबीर अष्टांगयोग' तथा कम्पिलानिवासी सुखदेव मिश्र कृत 'फाजिल अली प्रकाश' आदि। पुस्तकों की समालोचना मे 'काव्य-सुधाधर' के सम्पादक ने ऐसी 'साफगोई' का इजहार किया था कि उससे अनेक लेखकों का कोपभाजन भी उसे बनना पड़ा था।

इस विवेचन से 'काव्य-सुधाधर' पत्र की एक संक्षिप्त रूपरेखा ही यहाँ स्पष्ट की गई है। आशा है, हिन्दी के विद्वान् इस प्रकार के साहित्यिक पत्रों में बिखरी हुई अमूल्य साहित्यिक निधि की खोज मे प्रवृत्त होंगे।

---

१. काव्य सुधाधर ३० जुलाई १८०० त्रैमासिक, पृ० ३८, ३९, ४०

श्री वेंकट रामानुज स्वामी

संस्कृत-वाङ्मय के विकास में आंध्रों का योगदान

संस्कृत वाङ्मय के विकास मे आंध्र प्रदेश के निवासियों का बहुत अधिक योगदान है। योगदान आज से प्रायः ढाई हजार वर्ष पहले आरंभ हुआ था और अब तक बराबर चालू है। देववाणी के भंडार को ज्ञानराशि से अधिक-से-अधिक परिपूर्ण करने के लिए उक्त प्रदेश के किन-किन विद्यादिग्गजों ने अपनी किस-किस प्रकार की अमूल्य कृतियाँ इसमें निहित की हैं, इस विषय की विस्तृत विवेचना करना इस छोटे से लेख के द्वारा संभव नही है। यहाँ केवल कुछ मुख्य-मुख्य ग्रंथकारों का संक्षिप्त परिचय दिया जा रहा है। वेदो की संहिताओं तथा ब्राह्मण ग्रंथो की कोई भी ऐसी शाखा नही है, जिस पर आंध्र प्रदेश का प्रभाव लक्षित न होता हो। किंतु सूत्रकाल से संस्कृत वांगमय की प्रायः प्रत्येक शाखा पर आंध्रो के आचार-व्यवहार का कुछ-न-कुछ प्रभाव लक्षित होने लगता है। आपस्तम्ब ऋषि आंध्र-प्रदेश के गोदावरी तट के किसी स्थान के निवासी थे, ऐसा विश्वास किया जाता है। उन्होने कल्पसूत्रों की रचना करके आंध्र-सम्प्रदाय के प्रभाव को स्थायित्व प्रदान किया।

ईसा की पहली शताब्दी मे आंध्र प्रदेश का शासन-सूत्र सातवाहन के हाथ मे था। इन महाराज की राजसभा मे कवियो तथा विद्वानों को वशेष रूप से आदर प्राप्त था। इन्होंने 'सप्तशती' नामक शृंगार-रस के काव्य की रचना की। यह काव्य सात सौ मुक्तक श्लोकों मे है और महाराष्ट्री प्राकृत मे लिखा गया है।

ईसा की पाँचवी शताब्दी से लेकर दसवी शताब्दी तक की बहुत-सी राजाज्ञाएँ तेलुगु देश मे है, जो संस्कृत मे लिखी गयी हैं। ये सब उत्कृष्ट काव्य-शैली मे लिखी गयी हैं और गद्य-पद्य मिश्रित हैं। इससे अनुमान होता है कि इन सब के रचयिता काव्य लिखने में समर्थ थे।

इसी काल में वैष्णव मत के कुछ प्रचारको ने इस विषय का प्रतिपादन करने के लिए कि हमारा मत वेद-सम्मत है, उपनिषदों तथा वेदान्तसूत्र पर भाष्य लिखे। इनमें रामानुजाचार्य मुख्य थे। इनके द्वारा रचित संस्कृत ग्रंथ विशिष्टाद्वैत मत के पोषक हैं। उपलब्ध प्रमाणों के अनुसार वल्लभाचार्य जी ने आसुरीवंश में जन्म ग्रहण किया था। आसुरीवंश के लोग आंध्र देश के सुप्रसिद्ध वैष्णव थे। इनके द्वारा लिखित ब्रह्मसूत्र का भाष्य 'श्रीभाष्य' के नाम से प्रसिद्ध है। इनकी शैली बहुत ही गंभीर है। इन्होंने भगवद्गीता पर भी भाष्य लिखा है। 'वेदार्थ-संग्रह' नामक एक और ग्रंथ इन्होंने लिखा है। जिसमे वेदमंत्रों का विशिष्टाद्वैत मत

से समन्वय किया है। शरीर-शरीरी सिद्धांत की स्थापना करके इन्होंने अभेदश्रुतियों को विशिष्टाद्वैत मतपरक सिद्ध किया है। इन्होंने संस्कृत में 'गद्यत्रय' नामक एक स्तोत्र ग्रंथ भी लिखा है।

पंद्रहवी शताब्दी मे काकतीय वश के राजा द्वितीय रुद्रप्रताप संस्कृत के कवियों का बड़ा आदर करते थे। वे स्वय भी कई संस्कृत ग्रथों के रचयिता थे। ययाति-चरितम् तथा उषाराग़ोदयम् नामक नाटक इन्ही की कृतियाँ हैं। इनके आश्रित कवि विद्यानाथ (अगस्त्य) ने अपना 'प्रतापरुद्रीय' नामक अलंकार-ग्रथ इन्ही को समर्पित किया है।

गगा देवी ने अपने मधुरा-विजय नामक काव्य में इस विषय का उल्लेख किया है कि अगस्त्य एक बहुत बड़े कवि थे और उन्होने ७४ काव्यों की रचना की थी। उनके द्वारा रचित 'बाल भारत' नामक काव्य में महाभारत की समस्त कथा आ गई है। इनका लिखा हुआ 'कृष्ण-चरित' नामक एक काव्य भी है। इनके 'नलकीर्ति-कौमुदी' नामक काव्य के केवल दो ही सर्ग उपलब्ध हुए हैं। इसका अवशिष्ट अश अभी तक उपलब्ध नही हो पाया।

गगा देवी बुक्करराय की द्वितीय पत्नी थी। उन्होने अपने 'मधुरा-विजय' काव्य मे अपने स्वामी की विजय-यात्रा का वर्णन किया है।

संन्यास ग्रहण करने के बाद माधवाचार्य का नाम विद्यारण्य पडा था और वे अघोरी पीठ के अधीश्वर के पद पर प्रतिष्ठित हुए थे। से सर्वतत्र स्वतत्र थे। उन्होने वेद, वेदात, धर्मशास्त्र, व्याकरण, पूर्वमीमासा तथा आयुर्वेद आदि विषयो के ग्रथ लिखे हैं। चारो ही वेदो पर विद्यारण्य के भाष्य जगत् मे प्रसिद्ध हैं। केवल इस भाष्य की रचना मे ही उन्हे अपने छोटे भाई सायण से सहायता मिली थी। इसीलिए सायण की कृति के रूप मे उसे प्रसिद्धि मिली है। जैमिनीय न्यायमाला विद्यारण्य का एक श्लोकबद्ध ग्रथ है, जिसमे पूर्वमीमासा-शास्त्र मे आये हुए सभी विषय सक्षेप मे लिखे गये हैं। उन्होने पराशर-स्मृति की व्याख्या लिखी है। उस व्याख्या पर उन्होने वृत्ति लिखी है। अपने 'सर्वदर्शन सग्रह' नामक ग्रंथ में इन्होने समस्त दर्शनो के सिद्धातो को सक्षेप में लिखा है। 'शंकर विजय' नामक ग्रंथ में शंकराचार्य की जीवनी लिखी है। सायणाचार्य ने 'सुभाषित सुधानिधि' तथा 'अलंकार-सुधानिधि' नामक दो ग्रथो की रचना की है।

चौदह सौ ईसवी के आस-पास वेंकटगिरि में सिंगभूपाल नामक एक राजा राज्य करते थे। वे विद्वानों का बड़ा आदर करते थे। वे स्वयं भी ग्रंथकार थे। 'नाटक-परिभाषा' तथा 'रसार्णव—सुधाकर' नामक उनके लिखे दो ग्रंथ हैं। ये दोनो ही नाट्यशास्त्र के लक्षण-ग्रंथ हैं। 'रसार्णव-सुधाकर' मे उदाहरण के रूप मे विविध नाटको के उद्धरण दिये गये हैं। इससे ज्ञात होता है कि इन्होंने अनेक ग्रंथो का अध्ययन किया था, 'चमत्कार-चिन्तामणि' नामक अलंकार-ग्रथ इनके आश्रित विश्वेश्वर कवि का लिखा हुआ है। इसमें उदाहरण के रूप मे जो उद्धरण आये हैं, वे सब सिंगभूपाल की प्रशंसा विषयक हैं। इन्होंने 'कंदर्प-

संभव' नामक एक नाटक की रचना की थी, ऐसा ग्रंथ के पढ़ने से तथा 'रसार्णव-सुधानिधि' पढ़ने से प्रतीत होता है।

विश्वनाथ चौदहवीं शताब्दी में कलिंग देश में निवास करते थे। इनके द्वारा रचित 'साहित्य दर्पण' बहुत ही प्रसिद्ध ग्रंथ है। 'काव्य-प्रकाश' के बाद अलंकार-शास्त्र का यही एक बड़ा ग्रंथ है। 'साहित्य-दर्पण' में आये हुए उदाहरणों से ऐसा प्रतीत होता है कि इन्होंने संस्कृत के कुछ काव्य और नाटक भी लिखे हैं। 'प्रशस्ति-रत्नावली' मे इन्होंने सोलह-भाषाओं में प्रशस्तियाँ लिखी हैं।

वेमरेड्डी (वेम भूपाल) पंद्रहवीं शताब्दी के प्रारंभ में कोंडवीडू मे राज्य करते थे। वीरनारायण इनकी उपाधि थी। इन्होंने 'साहित्य-चिंतामणि' नामक एक अलंकार-ग्रंथ और 'संगीत-चिंतामणि' नामक एक सगीत-ग्रंथ की रचना की है। ये दोनों ही वृहद् ग्रंथ हैं। अमरकोश पर इनकी लिखी हुई एक व्याख्या भी है।

वामन विद्यारण्य के शिष्य थे। 'श्रृंगार भूषण' नामक भाग तथा 'पार्वती-परिणय' नामक नाटक इनकी कृतियाँ हैं। इन्होंने 'कनकलेखा' नामक एक नाटक तथा 'हंस-संन्देश' नामक एक संदेश-काव्य भी लिखा था। उन्नीस सर्गों के 'नलाभ्युदय' तथा तीस सर्गों के 'रघुनाथ चरितम्' नामक दो महाकाव्यो की रचना इन्होंने की थी। 'वीरनारायण चरितम्' नामक काव्य में वेमभूपाल का जीवन-चरित इनकी समस्तकृतियों में मुख्य है और इसी को सबसे अधिक प्रसिद्धि भी मिली है। जिस प्रकार बाण ने अपने आश्रयदाता राजा का चरित 'हर्षचरितम्' लिखा है, उसी प्रकार वामन ने अपने आश्रयदाता राजा वेमभूपाल का चरित 'वेमभूपालचरितम्' लिखा है।

गोपेंद्र तिप्प (त्रिपुरहर) नामक राजा ने विजयनगर के सालुव-वंश मे जन्मग्रहण किया था। वे पद्रहवी शताब्दी मे थे। उन्होंने वामन द्वारा लिखित 'काव्यालकार--सूत्रवृत्ति' की व्याख्या तथा 'तालदीपिका' नामक सगीत-ग्रंथ की रचना की थी।

पद्रहवी शताब्दी में कोलाचल मल्लिनाथ ने अनेक काव्य-ग्रंथों की व्याख्या लिखी। विद्याधर (चौदहवी शताब्दी) के 'एकावली' नामक अलकार-ग्रंथ की व्याख्या भी मल्लिनाथ ने की थी। मल्लिनाथ के पुत्र कुमारस्वामी ने 'प्रतापरुद्रीय' पर टीका लिखी है। हरिहर राय के दरबार में कवि लोलबराज नामक एक विद्वान् थे। वे एक उत्कृष्ट श्रेणी के कवि होने के साथ ही साथ आयुर्वेद के भी अधिकारी विद्वान् थे। उन्होंने वैद्यक के ग्रंथों के अतिरिक्त 'हरिहरविलासम्' तथा 'सुदं दामोदरम्' नामक दो काव्य लिखे हैं। हरिहर राय के राजकुमार विरुपाक्ष ने नारायण विलास' नामक एक पाँच अंक का नाटक तथा 'उन्मत्त राघव' नामक एक नाटक लिखा है।

कृष्णदेव राय सोलहवीं शताब्दी में राज्य करते थे। इन्होंने 'उषापरिणयम्' तथा 'जाम्बवन्ती कल्याणम्' नामक दो नाटकों की रचना की थी। तिरुमलांब के द्वारा लिखित

'वरदांबिका-परिणयम्' में अच्युतराय के साथ वरदांबा के विवाह तथा उनके पुत्र प्राप्त करने का वर्णन किया गया है।

धर्मसुधी या धर्मभट्ट (सोलहवी शताब्दी) कृष्णा-मंडल के निवासी थे। जीवन के अपराह्न काल मे संन्यास ग्रहण कर के काशी मे वास करने लगे थे। न्यायशास्त्र के वे पंडित थे। 'साहित्य-रत्नाकर' नामक अलंकार-ग्रंथ की भी इन्होंने रचना की थी। इस ग्रंथ मे उदाहरण के रूप में जितने भी श्लोक आये हैं, वे सब राम की प्रशस्ति के रूप में हैं। उन्होंने शंकर भाष्य पर 'रत्नप्रभा' नाम की टीका लिखी थी। इसके अतिरिक्त 'बालभागवतम्', 'नरकासुर-व्यायोग' तथा 'कृष्णस्तुति' नामक स्तोत्र की रचना की थी।

कृष्णदेवराय की राजसभा मे सगीत के विद्वान् के रूप में वास करनेवाले लक्ष्मी-नारायण ने 'सगीत सूर्योदय' नामक पाँच अध्याय का ग्रंथ लिखा था। लक्ष्मीधर को तिरुमल राय की राजसभा मे स्थान प्राप्त था। इन्होने 'गीतगोविन्दम्' की टीका 'भरतशास्त्रम्' तथा 'अतुक्रीडा-विवेकम्' नामक ग्रथो की रचना की थी।

जगन्नाथ (पडितराज) ने मुँगड मे जन्म ग्रहण किया था। वे वेगीनाटी ब्राह्मण थे। दिल्ली के बादशाह शाहजहाँ की राजसभा में उन्हे स्थान प्राप्त था। शाहजहाँ के राजकुमार दराशिकोह की जगन्नाथ पर बड़ी कृपा थी। इन्होने 'चित्र-मीमासा-खडनम्' नामक ग्रथ अप्पय्यदीक्षित के 'चित्रमीमासा' नामक ग्रथ के खंड के रूप मे लिखा था, साथ ही 'रस-गंगाधर' नामक स्वतत्र अलंकार-ग्रथ भी लिखा था। ये दोनो ग्रथ अपूर्ण हैं। पडितराज के लिखे हुए कुछ खड-काव्य भी हैं। उनकी इस प्रकार की रचनाओ के नाम हैं—गगालहरी, अमृतलहरी, लक्ष्मीलहरी आदि। इन सब की अपेक्षा इनका 'भामिनी विलास' 'पडितराजशतकम्' अधिक प्रसिद्ध है। ये व्याकरणशास्त्र के भी पडित थे। भट्टो जिदीक्षित के 'मनोरमा' नामक ग्रथ की एक टीका इन्होने लिखी है, —"मनोरमाकुचमर्दनम्'।

चिदंबर कवि को विजयनगर के राजा वेंकट (१९८६-१६१४) की राजसभा मे स्थान प्राप्त था। ये अनेक ग्रथो के रचयिता थे। 'राघव-यादव-पाडवीयम्' नामक त्र्यर्थक तथा 'पंचकल्याण' चंपू नामक पंचार्थक काव्य की रचना कर के इन्होने अपने पांडित्य की उत्कृष्टता प्रकट की थी। 'शब्दार्थ-चिंतामणि' इनका द्वयर्थक काव्य है। इनके अतिरिक्त 'श्लेषचिंतामणि' 'भागवत् चपू' तथा 'चिदबर विलास' काव्य आदि भी इनकी रचनाएं हैं। राजा श्रीरंग (१७वी शताब्दी का प्रारंभ) विजयनगर के राजवंश मे हुए थे। इन्होने 'नाटक-परिभाषा' नामक नाटक के लक्षण ग्रथ की रचना की थी। सोमनाथ कवि भी इसी काल के हुए थे। ये गोदावरी मंडल के निवासी थे। इन्होंने 'रागविबोधनम्' नामक ग्रंथ आर्यावृत्त मे लिखा है। इसमे वीणा के साथ गायेजाने वाले रागों तथा उनकी श्रुतियों का विवरण है।

कृष्णसुधी पण्डितराज के वश के थे। इनके द्वारा रचित 'काव्यकलानिधि' एक बृहत् अलंकार ग्रंथ है। इस ग्रंथ मे उदाहरण के रूप में जो श्लोक आये हैं, वे सब राजा की प्रशस्ति के रूप मे लिखे गये हैं। कृष्णमूरि कृष्णामंडल के निवासी थे। उन्होंने

'अलंकार मीमांसा' तथा 'साहित्य लतिका' नामक दो अलंकार ग्रन्थों की रचना की थी।

पुरुषोत्तम गंजाम् मंडल के निवासी थे (१७६०)। इन्होंने 'रामचंद्रोदयम्' तथा 'रामाभ्युदयम्' काव्य तथा 'अलंकार निबंधम' नामक ग्रथों की रचना की थी। इनके पुत्र नारायण मिश्र ने 'संगीतसरणी' नाम कसंगीत-ग्रंथ 'अलमद्र-विजयम्' और 'नव-नाथलतिका' नामक प्रबंध काव्य की रचना की थी।

पद्मनाभ (१९वीं शताब्दी) गोदावरी मंडल के निवासी थे। 'त्रिपुर विजय व्यायोगम्' तथा 'लीलादर्पण भाणम्' नामक दो दृश्यकाव्य इनके लिखे हुए हैं। राजशेखर गोदावरी मंडल के निवासी थे। इन्होंने 'साहित्य-कल्पद्रुम' तथा 'अलंकार-मकरंदम्' नामक दो अलंकार-ग्रंथों के अतिरिक्त 'शिवशतकम्' तथा 'वल्लीचंपू' नामक दो काव्य ग्रंथ भी लिखे थे।

वेंकटेशास्त्री गोदावरी मंडल के निवासी थे। इन्होंने 'महेश्वरमहाकाव्यम्' 'सती-शतकम्' 'भास्करप्रशस्ति' तथा 'रुक्मिणी परिणयम्' नामक पद्यकाव्य और 'श्रौतसूत्रव्या-ख्यानम्' की रचना की थी। इनके पुत्र नारायण ने 'साहित्य-कल्पद्रुम' नामक अलंकार ग्रंथ तथा नारायण के पुत्र वेंकट ने 'चित्रचमत्कारमंजरी' नामक सूर्य का स्तोत्र लिखा था।

तिम्म कवि पिठापुर प्रान्त के थे। 'रसिकजन-मनोभिरामम्' के रचयिता के ये प्रपौत्र थे। उनका 'सुजनमनःकुमुद चंद्रिका' नामक ग्रंथ में उपर्युक्त ग्रंथका संस्कृत में किया गया अनुवाद है।

महामहोपाध्याय परवस्तु वेंकटरंगाचार्य जी (१८३३–१९००) विशाखापट्टम्-मंडल के निवासी थे। 'मंजुलनैषधम्' नामक सात-अंक का नाटक, लघुव्याकरणम् नामक श्लोकबद्ध सरल व्याकरण तथा प्रपत्तिवाद नामक वेदांत-ग्रंथ आदि इनकी कृतियाँ हैं। इन्होंने 'कुंभकर्ण-विजयम्' तथा 'आलाधिराज-स्वागतम्' नामक दो खंडकाव्यों की भी रचना की है। किन्तु इन सब की अपेक्षा इनका बृहत ग्रंथ 'सर्वार्थसर्वस्व' नामक कोश है। रंगाचार्य के पितृदेव शिव नारायणाचार्य ने 'सर्वशब्दसंबोधिनी' नामक आकारादि क्रम से संस्कृतकोश की रचनाकी थी।

मुडूंब नरसिंहाचार्य (१८४७–१९६८) विजयनगर के विजयरामगजपति, आनंद-गजपति की राजसभा मे थे। 'जयसिंहाश्वमेधम्' नामक नाटक तथा 'रामचंद्रकथामृतम्' नामक काव्य इनकी प्रसिद्ध रचनाएँ हैं। इनके अतिरिक्त 'नरसिंहाट्टहासम्', 'राजहंसीय-नाटकम्' 'नीतिरहस्यम्' 'उज्वल नदम' 'काव्यालंकार' संग्रह तथा 'सांख्यसूत्र' व्याख्या—आदि भी इनके ग्रंथ हैं।

निष्ठल वेंकटेश्वर शास्त्री के द्वारा लिखित 'रामायण संग्रह' के विषय में कहा जाता है कि यह चतुश्चित्रगर्भित है। कुछ अक्षरों को परिवर्तित कर देने पर इसी एक ग्रंथ से चार दूसरे काव्य बन जाते हैं। 'गौरी विवाह' 'श्री स्कादिक्षेत्रमाहात्म्यम्' 'भगवतवतार चरित' तथा 'द्रौपदी कल्याणम्' आदि काव्य रामायण के अयोध्याकांड से लेकर युद्धकांड तक के श्लोकों के प्रथम, द्वितीय, तृतीय और चतुर्थ चरणों के आदि अक्षरों से क्रमशः रचे गये हैं। बालकांड के श्लोकों के आदि अक्षरों से इन्होंने 'रामकवच' की रचना की है।

घोठी मल्लान्दिराम शास्त्री (१८५६–१९१५) गोदावरी-मंडल के निवासी थे। 'मुक्तावली' नामक नाटक, 'श्रीरामविजय' नामक काव्य तथा 'संबरासुर विजय' नामक चम्पू की रचना की है।

वेरी काशीनाथ शास्त्री (१८५६–१९१५) विशाखपट्टम-मंडल के निवासी थे। वे आनंद गजपति की राजसभा मे थे। उन्होने 'पूर्वशाकुंतलम्' 'पांचालिका-रक्षणम्' 'यामनी पूर्व तिलक' (?) नामक नाटक तथा 'गंगास्तवम्, 'गोदावरी-स्तवम्' आदि स्फुट काव्य लिखे हैं। उनके दामाद महामहोपाध्याय ताता सुब्बाराम शास्त्री महोदय ने नागेश्वर के शब्देंदुशेखर पर गुरुपसादम् नामक टीका लिखी है। विजयनगर-निवासी जयंती वेंकन्न (१८६४–१९३४) ने 'अभिनवरामायणम्' नामक काव्य, प्रहलादचंपू, 'लक्ष्मीपतिशतम्' तथा 'मुकुंदानंद लहरी नामक पुस्तकें लिखी हैं। मेडेपल्ली वेंकटरमणाचार्य जी (१८९२ जन्म) विजयनगर के निवासी थे। उन्होंने (?) नालायिर द्राविड़, नामक तमिल भाषा के काव्य के तिरुवाथि मोलि नामक अश का—"वीर्गगशठमोपसहस्रम्' नाम से संस्कृत के श्लोकों मे रूपांतरित किया है। शेक्सपियर के नाटकों के कथानकों को संस्कृत गद्य मे लिखा है।

ऊपर आंध्र प्रदेश के संस्कृत के ग्रंथकारों तथा कवियो की जो नामावली दी है, उसमें ऐसे लोगों का समावेश नही हो पाया है, जो अभी जीवित हैं। स्थान बहुत ही परिमित होने के कारण बहुत से प्राचीन ग्रंथकार तथा कवि भी ऐसे रह गये हैं जिनकी चर्चा इस लेख मे नहीं की जा सकी। ऊपर जितने कवियों तथा ग्रंथकारो का उल्लेख किया गया है उनकी ग्रंथ-राशि से यह स्पष्ट हो जाता है कि आंध्र-प्रदेश मे संस्कृत-वाङ्मय के सेवको की संख्या बराबर अधिक रही है। वेद, वेदांत व्याकरण, न्याय, ज्योतिष, कल्प, सांख्य, आयुर्वेद, काव्य, नाटक, अलकार कामसूत्र तथा धमशास्त्र आदि सभी शास्त्रों मे विशेष रूप से पांडित्य का संपादन कर आंध्र प्रदेशवासियों ने एक से एक उत्कृष्ट और महत्वपूर्ण ग्रंथों की रचना की है। इससे यह स्पष्ट है कि आंध्रों ने संस्कृत-भाषा तथा संस्कृत-वाङ्मय की अपार सेवा की है।

—अनुवादक : पंडित ठाकुरदत्त मिश्र

डाक्टर जवाहरलाल हण्डू

यज्ञोपवीत संस्कार के कश्मीरी लोकगीत : एक विवेचन

मुंडन के पश्चात्, एक हिन्दू बालक के जीवन में दूसरा महत्वपूर्ण संस्कार यज्ञोपवीत का होता है। प्राचीनकाल में यज्ञोपवीत को पृथक् न मानकर 'उपनयन' संस्कार के अन्तर्गत ही एक महत्वपूर्ण स्थान दिया जाता था। 'उपनयन' संस्कार का मुख्य प्रयोजन बालक को दीक्षित करना माना जाता था, जो प्रायः "यज्ञोपवीत" के बिना अपूर्ण समझा जाता था। इस संस्कार के पश्चात् बालक 'द्विज' कहलाता था।[1] 'यज्ञोपवीत' अथवा 'उपवीत' धारण करना ही इस संस्कार का स्थूल-तत्त्व था,[2] जो काल-क्रम में एक स्वतंत्र संस्कार के रूप मे प्रचलित हुआ और शेष संस्कारिक कृत्यों का प्रायः लोप हो गया।

प्राचीनकाल मे, विश्व की प्रत्येक जाति में युवक तथा युवतियो को, समाज अथवा समुदाय मे प्रविष्ट करने से पहले सांस्कृतिक एवं सामाजिक दीक्षा दी जाती थी। कतिपय असभ्य जातियों मे सहनशक्ति के परीक्षणोपरान्त समुदाय में दीक्षित किया जाता था।[3] कई जातियों में लड़कियों को अस्थायी एकान्तवास द्वारा दीक्षित किया जाता था और कहीं तो युवक के किसी अंग-विशेष को भंग करके समुदाय मे सम्मिलित किया जाता था।[4] मुसलमानों मे इस प्रकार की दीक्षा अभी भी प्रचलित है। ईसाइयों का 'बेपटज्म' (Baptism) तथा पारसियों का 'नवजोत' (Naujot) हिन्दुओं के 'उपनयन' (द्विज) संस्कार से, कृत्य

---

१. जन्मना जायते शूद्रः संस्काराद् द्विज उच्यते ॥ (मनुस्मृति।)

2. " .... the matrial element in this (Upnayan) cermony is the investment of sacred thread or yajnu 'Pa 'vita." Dr. N. Mackichand: Encyclopeadia of Religion & Ethics (London; 1959); (Edited. J. Hastings); Vol. II; P. 407.

3. Frazer: Golden Bough; (abridged) "childhood of Man" (New. York, 1959) 11.Ed;Vol. 111;P. 422.

४. राजबली पाण्डेय : हिन्दू संस्कार (वाराणसी, १९६०) पृ० १४४।

एवं प्रयोजन की दृष्टि से, अत्यंत साम्य रखते हैं।[१]

उपनयन संस्कार की प्राचीनता अज्ञात है। जैसा कि कहा गया है, इससे मिलता-जुलता, समान प्रयोजन का, 'नवजोत' संस्कार पारसियो मे प्रचलित है, अतः स्पष्ट है कि बालक को दीक्षित करने के इस संस्कार का उद्‌भव उसी युग में हुआ होगा जब भारतीय आर्य और ईरानी लोग एक साथ रहते थे।[२] वैदिककालीन साहित्य मे "ब्रह्मचर्य" शब्द का प्रयोग हुआ है। अथर्ववेद के एक मन्त्र मे वैदिक-छात्र की प्रशंसा भी की गई है, जिसमें 'उपनयन' संस्कार की अनेक उत्तरवर्ती विधियों का मूल उपलब्ध होता है।[३] गृह्य सूत्रों के समय मे यह संस्कार पूर्णतया प्रतिष्ठित हो चुका था और इसकी अनिवार्यता भी स्वीकृत हो चुकी थी। कौन-सी आयु मे किस जाति के बालक का उपनयन संस्कार किया जाना चाहिये ? इसका स्पष्ट उल्लेख पारस्कर गृह्यसूत्र मे मिलता है।[४]

यज्ञोपवीत के लिये प्रायः 'जनेऊ' शब्द अब सर्वत्र प्रचलित हो चुका है, जो वास्तव मे 'उपवीत' का पर्याय है। उपवीत की महत्ता इसके तीन तारों के अनुरूप बताई जाती है। तीन तार निम्नलिखित तीन विचारधाराओं के द्योतक हैं: १—ब्रह्मचर्य, गृहस्थ तथा वानप्रस्थ का प्रतीक। २—ऋषि-ऋण, देव-ऋण तथा पितृ-ऋण से मुक्ति का संकल्प। ३—ब्राह्मण, क्षत्रिय तथा वैश्य, तीनों ही वर्णों के लोग यज्ञोपवीत के अधिकारी हैं।

कश्मीर मे यज्ञोपवीत संस्कार का अत्यधिक महत्त्व है।[५] विवाह को छोड़, अन्य संस्कारों से अधिक महत्त्वपूर्ण तथा अपरिहार्य यज्ञोपवीत संस्कार ही माना जाता है। लोकाचारों एवं अन्य विधि-विधानो की दृष्टि से भी इसका महत्त्व सर्वोपरि है। भारत के कतिपय प्रदेशों में सामान्यतः जनेऊ विशिष्ट वर्णों में ही केवल प्रचलित है, परन्तु कश्मीर की समस्त हिन्दू

---

१. ".... a certain act of religion marks the sccend birth (Dvij), Presents a parallel to the christian idea of "Baptism"...Similar is the "Naujot" of zorostrain religion.—Encyclopeadia of Religion & Ethics: Vol, 11.P. 407.

२. हिन्दू संस्कार, पृ० १४५।

३. वही, पृ० १४६।

४. अष्टमेवर्षे ब्राह्मणमुपनयते गर्भाष्टमे वा।
एकादशे क्षत्रियम्। द्वादशे वैश्यम्॥—पारस्कर गृह्यसूत्र, ३।३।

५. "The" Yag'nu' Pa' vit or sacred thread cermony is one of the most important cermonies in the life of a kashmiri Pandit." —Keys to kashmir (Srinagar 1950) P. 77

जनता ब्राह्मण है,[1] अतः 'जनेऊ' पहनना सब के लिये अनिवार्य है। किसी बालक का 'जन्म' या मूंडन संस्कार भले ही न हुआ हो अथवा किसी व्यक्ति को विवाह का सौभाग्य न प्राप्त हुआ हो, परन्तु ऐसा कोई उदाहरण प्राप्त नहीं, जिसका यज्ञोपवीत संस्कार न हुआ हो।

कश्मीर प्राचीनकाल से एक विशिष्ट सांस्कृतिक विद्याकेन्द्र रहा है। भारत के प्रत्येक क्षेत्र से बालकों को शिक्षा-दीक्षा के लिये कश्मीर भेजा जाता था। आज भी कतिपय स्थानों पर, जनेऊ डालते समय, बालक का तीन पग उत्तर (कश्मीर) की ओर बढ़ाना,[2] वस्तुतः इस बात का द्योतक है कि कश्मीर प्राचीनकाल में एक विशिष्ट शिक्षाकेन्द्र रहा है।[3] संभव है कि इसी विशिष्टता अथवा आदर्श के कारण, यज्ञोपवीत संस्कार, यहाँ शेष संस्कारों से अधिक महत्त्व प्राप्त कर चुका हो।

कर्मकाण्ड, जटिल विधि-विधान तथा गीतों की दृष्टि से यज्ञोपवीत की तुलना विवाह-संस्कार से की जा सकती है। विवाह की भाँति यह संस्कार भी प्रायः तीन दिन में सम्पन्न होता

---

१. वर्तमान कश्मीरी हिन्दू-समाज में सिवाय ब्राह्मणों के कोई अन्य जाति नहीं। प्राचीनकाल में सभी जातियाँ रही होंगी, क्योंकि कल्हण की राजतरंगिणी में भी कई जातियों का उल्लेख मिलता है। ग्यारहवीं-बारहवीं शताब्दी के बाद, कश्मीर में मुसलमानों के आगमन के साथ-साथ यहाँ की निम्न जातियों में धर्मपरिवर्तन की प्रक्रिया आरम्भ होती है जो वस्तुतः उन्नीसवीं शताब्दी तक जारी रही जब कश्मीर में पुनः हिन्दू-राज्य (सिक्खों का) स्थापित हुआ। इस दीर्घकाल में केवल ब्राह्मण-वर्ग ही धर्म-परिवर्तन से बचा रहा। जैनुल्लाबद्दीन (बड़शाह) के समय राज्य की भाषा फारसी हो गई, अतः कई ब्राह्मणों ने उसको ग्रहण कर राज्यसेवाओं में सक्रियता से भाग लेना आरम्भ किया जब कि एक कट्टर वर्ग संस्कृत एवं अन्य प्राचीन धार्मिक भाषाओं के साथ चिपका रहा। यह वर्ग भाषा-वर्ग और पहला वर्ग "कारकुन" कहलाया। आज का समग्र ब्राह्मण-वर्ग इसी प्रकार विभाजित है। अधिक जानकारी के लिए देखिए :— (अ) डा० जवाहरलाल हण्डू : कश्मीरी एवं खड़ीबोली के लोकगीतों का तुलनात्मक अध्ययन (अप्रकाशित, पुस्तकालय, कुरुक्षेत्र वि० वि०) (आ) (Dr. T. N. Madan: Kinship and Family:. A study of thk Rural Pandits of Kashmir (Asia; Delhi, 1965)

२. देखिये (क) कृष्णदेव उपाध्याय : लोकसाहित्य की भूमिका, (इलाहाबाद १९५७) पृ० ५८।

३. (ख) राजबली पाण्डेय : हिन्दू संस्कार, पृ० १८९। (ग) चिन्तामणि उपाध्याय : मालवी लोकगीत : एक विवेचनात्मक अध्ययन, पृ० १४१।

है। विविध कृत्यों के अनुरूप तीनों दिन तक समान रूप से निरन्तर गीत[1] गाये जाते हैं।[2]

अध्ययन की सुविधा के लिये यज्ञोपवीत-संस्कार के गीतों का, विभिन्न कृत्यों के अनुरूप, निम्नांकित विभाजन हो सकता है :—

१. वरनावय—लिपाई के गीत

शुभ संस्कारों पर प्रायः सभी हिन्दू जातियाँ घर का लीपन करती हैं। यज्ञोपवीत-संस्कार पर भी ऐसा किया जाता है। किसी भी निश्चित शुभ दिन, संस्कार्य-बालक की बुआ घर का लीपन करती है। उसे नेग दिया जाता है। संस्कार्य-व्यक्ति के माता-पिता इस अवसर पर नये वस्त्र पहनते हैं। इस अवसर पर भी "वअर"[3] पकाने की प्रथा है और संस्कार्य-व्यक्ति के माँ बाप को बधाइयाँ दी जाती हैं।[4] लिपाई के कृत्य को पूर्ण किए बिना "मात्र-प्यौतों" पर नहीं जाया जा सकता, ऐसी धारणा लोक में अब भी प्रचलित है। इस अवसर पर जिन गीतों को स्त्रियाँ गाती हैं, उनमे स्पष्टतः इस कृत्य की सांस्कृतिक महत्ता का परिचय मिलता है। विभिन्न देवताओं का आवाहन, गंगा-स्तुति तथा इस कृत्य की धार्मिक महत्ता, ऐसे गीतों के मुख्य वर्ण्य-विषय हैं। उदाहरणार्थ—

> शुकुल करिथ वनवुन इयं तुमय, शुभे-फल वितिथ माजि भवाने।
> वसुदीव राजन्यव वनुवन् इयीतुय शोभ-फल तिविथ माजि शारिकाये॥
> व्यख्न-पावकमल्व निश भअन्य ब्राये, अटि इयअथ परमीश्वराये॥
> भागीरथने तप सअत्य आये, हरि गंगाये नमस्कार॥
> आकाश प्यठ व्वलि गंगा ब्राये, सअत्य छिस कारण तअ दीवता॥
> वछ्य-रछअ वनवान पत-पतअ ब्राये, हरि गंगाये नमस्कार॥

---

१. इन गीतों को 'वनवुन' कहा जाता है। 'वनवुन' विशेषतः किसी भी शुभ संस्कार सम्बन्धी गीत को कहते हैं। लोकमानस में यह शब्द अब रूढ़ हो गया है।

२. The valley of Kashmir (London, 1895) P. 260.

३. "वअर" एक विशेष प्रकार की नमकीन खीर सी होती है "वअर" बनाना मंगल-सूचक माना गया है।

४. कश्मीर में ऐसे अवसरों पर "इस्बन्ध" जला कर बधाइयाँ दी जाती हैं। 'इस्बन्ध' विशेष प्रकार के तिल के दाने जैसे होते हैं, जिन्हें अग्नि में डालते ही सुगन्धि फैल जाती है। "इस्बंध" के दानों को, शरीर के किसी भी अंग से छूकर, अग्नि में जलाया जाता है। बधाइयाँ देने का यही रूप कश्मीर में प्रचलित है। इसमें कुप्रभावों से मुक्त करने की शक्ति भी मानी जाती है।

अर्थात् "शकुलं" करके वासुदेव राजा के घर लीपन-कार्य हो रहा है। बृहस्पति देवता ने स्वयं नक्षत्रों का योग तथा शुभ फल देखकर इस दिन को निश्चित किया है। भवानी स्वयं आशीर्वाद देने आई है।...विष्णुपाद-गंगा, भागीरथ के तप एवं तपस्या से अवतरित हुई और परमेश्वर ने उसे अपनी जटा में धारण किया। देवी-देवता तथा अप्सराएँ उसका मंगलगान गाने लगी।

'वपुन' (न्योता)

लीपन के बाद 'न्योतने' का कृत्य होता है। संस्कार्य बालक, माता-पिता तथा अन्य बंधु-बांधवों सहित ननिहाल "भात न्योतने" जाता है। वहाँ सहभोज आयोजित होता है। बालक तथा उसकी माता को नए वस्त्र तथा नेगादि दिये जाते हैं।

इस अवसर पर संस्कार्य-व्यक्ति के घर एवं ननिहाल दोनों स्थानों पर गीत गाने की प्रथा है। इनमें बालक की माता (यजमनबाय) का ही अधिक वर्णन रहता है। अतः उसीका आदर्शपूर्ण चित्रण गीतों मे अधिक हुआ है। जैसे :—देवकी-माता के भात-न्योतने के लिए रथ मँगवाये गये। शुभ नक्षत्रो का योग देखा गया। महाराजाधिराज का राजवाहन लाया गया और उसी की सोने की पालकी मे कृष्ण (बालक) को बैठाया गया—

> वपुनस व्युपये रथ मंगनोवमय, सोन नेछुनुर वुछुनोवमय ।
> दीवकी माजि व्युप रथ मंगनोवमय, सोन नेछुनुर वुछुनोवमय ॥
> माहराज संअबुम होस मंगनोवमय, हस्तिस स्वन-साज करनोवमय ।
> प्यठ कृष्ण-माहराज बेहनोवमय, सोन नेछुनुर वुछुनोवमय ॥

२. 'मअज्यरात'—रतजगा के गीत

यज्ञोपवीत संस्कार के तीन दिनों के समारोह का आरम्भ "मअज्यरात' से होता है। यह एक प्रकार का 'रतजगा'—सा होता है। इसे उपर्युक्त कृत्यों की भाँति विवाह तथा यज्ञोपवीत—दोनों संस्कारों पर समान रूप से किया जाता है।' मअज्यरात' के अवसर पर रतजगा भी होता है और दिन में कुछ आनुष्ठानिक कृत्य भी किये जाते हैं। इनमें विशेष उल्लेखनीय 'कूल' तथा 'महन्दी' के कृत्य हैं। प्रथम कृत्य, दिन में पूर्ण किया जाता है और द्वितीय रात में।

---

१. शुभ संस्कारों से सम्बद्ध अधिकांश कश्मीरी लोकगीत प्रायः "शकुलं" शब्द से आरम्भ होते हैं। ऐसा लगता है कि यह शब्द मूलतः विष्णु-पुराण के निम्न श्लोक से उद्धृत है—

> शुक्लाम्बरधरं विष्णुं शशिवर्णं चतुर्भुजम् ।
> प्रसन्नवदनं ध्यायेत् सर्वविघ्नोपशान्तये ॥—सूक्तिसुधाकर, पृ० १५

कूल (बेल काढ़ना)

द्वार पर बेल बनाने को "कूल" कहते हैं। यह एक प्रकार का "थापा"-सा होता है। इसे विवाह तथा यज्ञोपवीत, दोनों अवसरों पर बनाया जाता है। घर के मुख्य द्वार को पोत कर विविध रंगों से बेल काढ़ी जाती है। मेंहदी का रंग इनमें अग्रणी रहता है। इस कार्य में भी बुआ का विशेष योग रहता है। 'वअर' पकाने की प्रथा का पालन इस अवसर पर भी किया जाता है।

लिपाई के गीतों के अनुरूप "कूल"-सम्बंधी गीतों में भी देवी-देवताओं का आवाहन विशेष रूप से होता है। सुभद्रा, पार्वती, वासुदेव, देवकी आदि पौराणिक पात्रों से बालक, उसके माता-पिता, बुआ तथा परिवार के अन्य व्यक्तियों की तुलना करने से एक ऐसा दृश्य उपस्थित किया जाता है, मानो देव-लोक ही संस्कार्य-बालक के घर में उतरा हो और सभी देवी देवता कृत्य को सम्पन्न करने में सक्रिय सहयोग दे रहे हों। इस के अतिरिक्त बुआ की प्रशंसा की जाती है क्योंकि वह इस कृत्य में अधिक सहयोग देती है अतः उसके नेग आदि का अत्यंत आदर्श वर्णन भी गीतों मे हुआ है।

उदाहरणार्थ :——सुभद्रा (बुआ) को "कूल" बनाने के लिये क्या-क्या चाहिये? नमक, 'वअर' तथा सहस्रों मुहरें। सुन्दर बेल बनाते समय उसको आशीर्वाद किसने दिया? परमेश्वर तथा पार्वती माता ने—

कूलय जगे क्याह-क्याह पजे, नून, वरि तय मुहरा प्रास।
सुभद्रा माले क्याह-क्याह पजे, वसुदीव राजुन मुहरा प्रास।
कूल खारनस जंगि कुस ओये, परमीशर तव पार्वंव मवज।
सुभद्रामालि जंगि कुस ओये, परमीशर तव पार्वंव मवज॥

मेंहदी (कृत्य एवं गीत)

मेहदी को प्रायः सभी स्थानों पर मंगल-प्रतीक तथा शुभसूचक माना गया है। स्त्रियों के सोलह शृंगारों मे मेहदी को एक विशिष्ट प्रसाधन माना गया है।[1] पाश्चात्य संस्कृतियों में इसे मांगल्य तथा प्रणय का प्रतीक माना गया है।[2] यहूदी तथा यूनानी संस्कृतियों में इसे देव-

---

१. हर्षनन्दिनी भाटिया : "सौभाग्य का चिह्न : सिन्दूर की भाँति", धर्मयुग, २५ नवम्बर ६२।

२. The myrtle was held sacred to venus and is used as an emblem of love.-The oxford English Dictionary; Vol. V11; P. 813.

सौन्दर्य तथा अमर-तत्व के रूप में स्वीकार किया गया है।[१] इसी प्रकार इंगलैंड में इसे सौभाग्य तथा मंगलचिह्न माना जाता है।[२] जर्मनी में भारतीय लोक-परम्परा के अनुरूप, विवाह्य कन्या को मेंहदी का हार पहनाया जाता था।[३] वस्तुतः मेंहदी को भारत के अतिरिक्त अन्य देशों में भी पवित्र तथा मंगल-सूचक माना गया है। इसके अतिरिक्त लोककला की दृष्टि से भी मेंहदी का विशेष महत्त्व है, स्त्रियाँ जिस नक्काशी एवं कलात्मकता से हाथ-पैरों पर मेंहदी के बेल काढ़ती हैं, वे भारतीय लोककला की आंकिक अभिव्यक्ति के ज्वलंत उदाहरण हैं।

कश्मीर में भी मेंहदी का प्रयोग सभी शुभ संस्कारों पर किया जाता है। अन्य स्त्रियों के अतिरिक्त संस्कार्य-व्यक्ति के हाथ-पैर पर मेहदी लगाई जाती है और यह कार्य भी बुआ ही करती है। विवाह तथा यज्ञोपवीत के अवसर के उपलक्ष्य में प्रायः समान गीत गाये जाते हैं, जिन में भारतीय संस्कृति के उसी रूप को उभारा गया है, जिसका उल्लेख हम ऊपर कर चुके हैं। देव-आवाहन, सुख-समृद्धि की कामना आदि इनमे भी की गई हैं। उदाहरण के लिए एक गीत में कहा गया है कि, "मेहदी लगाने की शुभ घड़ी पर सारे व्यक्ति एकत्र हुए। कृष्ण-समान बालक को मेहदी लगाने के लिये, वासुदेव राजा के घर, गंगा, जमुना एवं सरस्वती भी आ गई है। ...मेंहदी का पुष्प "तुलमुल" (क्षीर भवानी)[४] के उद्यान मे स्थित प्रसिद्ध एवं पवित्र कुंड से उदित हुआ है"--

> मअजे रअचय सोम्बुरिथ बअचय, बअचय गंग, जमना, सरस्वतः ।
> वसुदीव राजन्यन सोम्बुरिथ बअचय, कृष्णनमि मअज्यरअचयकिय्य ।
> तुलि-मुलि अन्वरय रअजण्या बअचय, बअचय गंग, जमना, सरस्वत ।
> पायछा बागस, तुलि-मुल्य नागस, नागस मंज़ छोत मअजे पांशे ॥

---

१. To the jews myrtle signifies the promise and beauty of God...In Greece its evergreen quality signifies immortality.--A standard Dictionary of Folklore, Mythology and legend. (Editor, M. Leach; Newyork) Vol. 11; P. 776.

२. In England it is considered Lucky to have myrtle growing around. --A standard Dictionary of Folklore, Mythology and Legend, Vol. I1; P.776.

३. Medieval German brides wore myrtle wreaths to their weddings." --Ibid, P. 777.

४. कश्मीर का एक पवित्र कुण्ड, जिसकी पवित्रता एवं महिमा को लोक मानस में सर्वोपरि माना जाता है। यहाँ कुण्ड में स्थित "रज्ञया" देवी का मंदिर भी है। ज्येष्ठ-अष्टमी के दिन यहाँ मेला भी लगता है।

इस गीत में, पवित्र उद्यान मे स्थित कुण्ड से मेंहदी के उदित होने का जो उल्लेख हुआ है इसी प्रकार विश्व की अन्य संस्कृतियों में भी इसकी उत्पत्ति की पवित्रता का उल्लेख है। पाश्चात्य किंवदंतियों मे मेंहदी को आदम के उद्यान का मात्र सुवासित वृक्ष बतलाया जाता है।[१] इसी प्रकार अन्य स्थानों पर भी इसे स्वर्ग आदि का उपहार माना जाता है।[२] वस्तुत: मेंहदी के मांगल्य एवं पवित्रता की भावना के अनुरूप ही इसकी उत्पत्ति के विषय में अत्यंत उदात्त और पवित्र परिकल्पनाएँ प्राय: सर्वत्र प्रचलित हैं। कश्मीरी लोक-कवि ने उक्त गीत मे, मेंहदी को 'तुलमुल' के कुण्ड से उत्पन्न घोषित कर नि:संदेह मेहदी की पवित्रता का उच्चतम उदाहरण प्रस्तुत किया है।

संस्कार्य-बालक को मेंहदी लगाते समय उपर्युक्त मंगलमय के गीतों के अतिरिक्त "छकरि-बअथ' गाने की प्रथा भी कश्मीर में है। इन गीतों को स्त्रियां प्राय: द्रुत लय में गाती हैं। विषय की दृष्टि से इनमे 'वनवुन' जैसा भाव-गाम्भीर्य, रोचकता तथा सांस्कृतिकता नही होती, परन्तु लय एवं संगीत का आकर्षण इनमे अवश्य रहता है। इनमे व्यक्त भाव किसी भी प्रकार के हो सकते हैं, विषय-वस्तु तथा शैली का प्रतिबंध इनमे नितान्त नही रहता, केवल उस प्रसग का टेक दिया जाता है जिसके उपलक्ष्य मे गीत गाया जाता है, ऐसा करते समय भी मात्र लय पर बल दिया जाता है और भाव स्वच्छन्द रूप से प्राय: खण्डित ही अभिव्यक्त होते हैं। जैसे निम्न गीत में युवतियों द्वारा संस्कार्य-बालक के हाथो पर तेज़ रग की मेहदी लगाने का वर्णन हुआ है। मेंहदी चमक उठती है और युवतियाँ जंगलो में ढूंढ़-ढूंढ़ कर बालक के लिए शिकार मार कर लाती हैं आदि। स्पष्ट है कि गीत मे मेंहदी, शिकार आदि, जैसे खण्डित भावों की अभिव्यक्ति मात्र टेक को गति प्रदान करने के लिए हुई है। गीत इस प्रकार है—

मअज लाग्यो मअज्य नमन्य, मअज्य खुतनयो जोश।
जानि बापत फेरव जंगलन, मारव शिकार गोष।

३. दिवगोन (देवपूजन के गीत)

'मअज्यरात' के बाद दूसरा प्रमुख कृत्य, जो यज्ञोपवीत तथा विवाह-संस्कार पर समान रूप से किया जाता है, "दिवगोन" का होता है। इस कृत्य का मख्य प्रयोजन, संस्कार्य-

---

१. One of the many origin stories of myrtle (henna) says that it was the chief scented tree in the Garden of Eden and Adam was, therefore allowed to take it with him--A standard Dictionary of Folklore, Mythology & Legend; Vol. 11; P. 776.

२. A standard Dictionary of Folklore, Mythology & Legend; Vol. 11; P. 776.

व्यक्ति को 'मेखला' तथा अन्य यज्ञिय कृत्यों के लिये स्नान एवं देव-आवाहन द्वारा शुद्ध करना है। प्रकृति के अवयवों में शक्तिशाली तत्वों की परिकल्पना करके, उनमें देवत्व की प्रतिष्ठा तदुपरान्त उनके आवाहन से ही प्रायः देवपूजा का आरंभ माना जाता है।[1] जीवन की प्रत्येक विशेष घटना पर, आदिम-मानव इन परिकल्पित शक्तियों का पूजन करता था। हर्ष तथा उल्लास की घटना पर भी वह देवस्तुति करता था और दुःख तथा विषाद के समय भी देवानुग्रह के लिए वह सर्वदा प्रार्थना करता था। वस्तुतः इसी कारण संस्कार, रीति-रिवाज तथा अन्य अवसरों पर भी, जिनकी सामाजिक महत्ता एवं विशेषता स्पष्ट थी, देव-अवाहन एवं पूजा-पाठ प्रासंगिक रूप में होने लगे।[2] इस प्रवृत्ति को विश्व की प्रायः सभी जातियों में अब भी देखा जा सकता है। हमारे यहाँ संस्कारों पर देव-पूजन का विशेष स्वरूप वैदिककालीन संस्थाओं में भी रहा है।[3] यज्ञोपवीत तथा विवाह संस्कार के अवसर पर देव-पूजन की प्रवृत्ति शास्त्रीय कर्मकाण्ड एवं लोकगीतों, दोनों में प्रायः समान रूप से विद्यमान हैं।

"दिवगौन" के आनुष्ठानिक कृत्य पर छोटा सा यज्ञ किया जाता है। भित्ति पर "दिवतमून" (एक 'थापा'-सा) बना दिया जाता है, जिसको देवता का प्रतीक मान कर पूजा जाता है।[4] इसके अतिरिक्त "दिवतअ मूल्य"[5] भी इसी अवसर पूजे जाते हैं और सम्मान-पूर्वक नदी मे प्रवाहित किए जाते हैं।

इस अवसर पर, जैसा कि स्पष्ट है, देव-आवाहनन् के विविध गीत गाये जाते हैं। इनमे राम, कृष्ण, वासुदेव, सूर्य, लक्ष्मण, सीता, शंकर, भवानी आदि देवी-देवताओं की

---

१. A. F. Alfered Hillebrandit—"Hindu worship—"Encyclopaedia of Religion & Ethics; Vol. X11; P.765.

२. ....many rites having obvious social values, Marriage rite etc. are counected with worship incidently."—"Hindu worship;" Encyclopaedia of Religion & Ethics; Vol. X11: P.754

३. हिन्दू संस्कार, पृ० २६६।

४. धार्मिक पूजा का, इस प्रकार का, प्रतीकात्मक रूप विश्वव्यापी है और सभ्य एवं असभ्य सभी तरह की जातियों में देखा जा सकता है। भारत की बहुरंगी विविध संस्कृतियों में पूजा का यह रूप अधिक पनप गया है जिसका मूलाधार हमारे यहाँ की धार्मिक विचार-धाराएं रही हैं।

५. आटे की बनी छोटी-छोटी आकृतियां जो विभिन्न देवी-देवताओं के प्रतीक रूप में पूजी जाती हैं। यहाँ भी धार्मिक पूजा का वही प्रतीकात्मक रूप निखर उठा है इस सम्बंध में निम्न पंक्तियां भी उद्धरण हैं :—"Symbolism is a Universal method of religion. —Encyclopaedia of Relligion of Ethics; Vol. 1. P. 26.

आराधना विशेष रूप से हुई है। उदाहरण के लिये निम्न पक्तियों मे, सूर्य की वंदना की गई है। सीता, राम तथा लक्ष्मण के गुणो का वर्णन हुआ है। उनके वन-गमन तथा अनेक कष्टों के उल्लेख के अतिरिक्त संस्कार्य-बालक को वासुदेव-पुत्र, धर्मात्मा तथा कबूतर-समान[1] सुन्दर कहा गया है। गीत मे इसी प्रकार, बारहमासा-शैली मे देवपूजन का एक उत्कृष्ट उदाहरण प्रस्तुत हुआ है :—

> चित्री फोलहम यीरिक्येम पोशो, गोशस रट्अथम जगलन जाय।
> सोतस तअ नवरेहस चअति छुख खोशो, स्वरित तपरेषो सदाशव।
> आदन फोलुहम बादाम पोशो, गोशस रट्अथम पर्वत जाय।— ॥
> जीठी फोलुहम गुलाब पोशो, गोशुस रट्अथम थरि प्यठ जाय।
> हअरी फोलुहम चअति पम्पोशो, गोशस रट्अथस सरस मंज़ जाय।
> चअति छुख रजन्यायि, बुतीश्वरस खोशो। स्वरिव० ॥
> श्रावन्य फोलुहम दत्तरी पोशो, गोशस रट्अथम छोटस प्यठ जाय।
> चअति छुख सदाशवस खोशो। स्वरिव० ॥
> बअदरिप्यत्य फोलुहम कप से पोशो। स्वरिव० ॥. . . ॥
> कार्तिकय् फोलुहम चअति होगुपोशो, गोशस रट्अथम पोम्पुर जाय।
> जअति छुख ठोकुर सअबस खोशो। स्वरिव० ॥

अर्थात चैत्र-मास मे 'यिरिक्येस" (पुष्प-विशेष) जगलो मे खिलते हैं और वसन्त मे बादाम, कौंस तथा कनेर के फूल, शालिग्राम को अर्पित किया जाता है। ज्येष्ठ तथा आषाढ़ मे गुलाब तथा कमल खिलते हैं, इन्हे 'राज्ञिन्या" (भवानी) के मस्तक पर चढ़ाया जाता है। सावन मे धतूरे के पुष्प खिलते हैं, इन्हे शिव को अर्पित किया जाता है। इसी प्रकार भाद्रपद मे कपास की सुषमा दर्शनीय रहती है, यह इहलोक तथा परलोक दोनों के आवरण का कार्य करता है। इसके पश्चात् आश्विन में गेंदा तथा कार्तिक मे कुम-कुम सुषमा भी देवानुकम्पा के ही प्रतीक हैं।

साधारणत: कश्मीरी लोककाव्य मे बारहमासा-गीतो का अभाव है। उपर्युक्त गीत में बारहमासा शैली का जो सफल प्रयोग हुआ है, वह वास्तव मे नूतनता का परिचायक है। बारहमासा मे ऋतु-क्रम से प्रायः विरहवर्णन ही मुख्य रहता है, पर यहाँ विभिन्न मासों में विकसित होनेवाले रंगारंग फूलों द्वारा देवताओं की आराधना की गई है।

---

१. कश्मीरी साहित्य, विशेषकर लोकसाहित्य में "कबूतर" सौन्दर्य एवं ओज का प्रतीक माना गया है। पुंलिंग सौन्दर्य के लिए "कबूतर" तथा स्त्रीलिंग सौन्दर्य की अभिव्यक्ति के लिए "कबूतरी" का प्रयोग लोकगीतों में कई स्थलों पर हुआ है।

स्नान (स्नान)

संस्कार्य-व्यक्ति के शुद्धीकरण के लिए प्रायः सभी अवसरों पर पहले स्नान किया जाता है इस कृत्य से सम्बद्ध लोकाचार तथा गीत भी प्राय. विविध संस्कारों के समान ही होते हैं। संस्कार्य-व्यक्ति को घर के सप्पथ[1] (Carridor) मे चौकी पर बैठाया जाता हैं। चार छोटी बालिकाएँ उसके ऊपर क्षीण कपडा पकड़ लेती है।[2] तब संस्कार्य-बालक का फूफा अथवा वंश का वयोवृद्ध व्यक्ति बालक को नहलाता है। इस कृत्य को 'गोड़-स्नुन भी कहते हैं। इस समय यह गीत गाया जाता है--

> पोशअ नारि पविमय पोशअ वजअ, लतिये,
> मीखिल माहराजस छु कन्य-श्राण ।
> प्रभावती भामनि वचुय पोशअ वजअ लिविथ,
> कृष्ण माहराजस छु कन्य-श्राण ।
> पीरि तल ववअमय, मरेव रअखये,
> हुकअ आई भवअनी जाफल हपथ ॥

अर्थात्, कृष्ण महाराज का स्नान हो रहा है। सारा सप्पथ पुष्पावृत है। मेखला-संस्कार्य के लिए बालक को शुद्ध किया जा रहा है। बालक की मामी ने सप्पथ को सजाया है। परमेश्वर तथा भवानी बालक को आर्शीवाद देने के लिए स्वयं आये हैं।

४. मेखला (यज्ञोपवीत के गीत)

'मेखला'[3] के यज्ञिय-कृत्यो को पूर्ण करने से पहले सस्कार्य बालक गेरुए कपड़े धारण करता है। कटि के चारो ओर मेखला बाँधता है कौपीनीय (स्नानपट) धारण कर लेता है तथा 'अजिन'[4] (मृगचर्म) भी पहनता है। मुंडन संस्कार की भाति इस अवसर पर भी

---

१. कश्मीरी हिन्दू प्रायः सभी संस्कारों पर स्नान (अर्थात् शुद्धीकरण) का कृत्य घर के सप्पथ (वजअ) में ही करते हैं।
२. इन चार कन्याओं के कारण ही इस कृत्य का नामकरण 'कन्या-श्राण' (कन्याओं द्वारा स्नान) हुआ जान पड़ता है। कन्याओं का यह कार्य अत्यंत पवित्र माना जाता है।
३. यज्ञोपवीत संस्कार के लिये कश्मीर में 'मेखला' शब्द सर्वाधिक प्रचलित है। इसके अतिरिक्त "यज्ञोपवीत", "योनि" भी इसी के पर्यायवाची शब्द हैं।
४. "अजिन' शब्द का अर्थ मृग अथवा बकरे आदि के चर्म से है। इसे ब्रह्मचर्य के वैदिक तथा आध्यात्मिक सर्वोच्चता का प्रतीक माना जाता है।
दे०, हिन्दू संस्कार, पृ० १७९।

बालक का मुडन किया जाता है। तदुपरान्त यज्ञ प्रज्वलित होता है, उसमें घृत एवं विभिन्न सामग्री होम करके, निश्चित समय पर, शास्त्रीय पद्धति के अनुसार, बालक को गुरु एवं माता-पिता उपवीत-सूत्र पहनाते हैं। इस समग्र संस्कार का सबसे महत्वपूर्ण कृत्य तथा स्थूल-तत्व यही माना गया है। इसके पश्चात् गुरु के इस उपकार के बदले बालक भिक्षा माँग कर, उसकी दक्षिणा चुकाता है। पात्र लेकर वह सभी बंधु-बान्धवों तथा मित्रों से भिक्षा माँग कर गुरु को अर्पित करता है।

प्रात: 'मेखला' का यज्ञ प्रज्वलित करने से लेकर सायं, यज्ञ-अंत तक विभिन्न यज्ञिय-कृत्य किए जाते हैं, जिनके अनुरूप गीत भी गाये जाते हैं। अत. इन सब प्रकार के गीतों का कृत्यानुकूल विवेचन करना यहाँ आवश्यक हो जाता है।

"अगनम कुण्ड" (मंडप)

यज्ञिय-अग्नि प्रज्वलित करने के लिये मंडप सजाया जाता है, जिसे गोबर से लीपा जाता है। यह कार्य भी प्राय. बुआ ही करती है। तब यह गीत गाया जाता है गीत का भावार्थ इस प्रकार है—अग्नि-मण्डप स्वर्ण-ईंटो से बनाया गया। अमृत और कुमकुम से इसे लीपा गया तथा "भवानी" ने स्वयं आकर इसे पुष्पो से सजा कर पवित्र किया।

वारिदान (नेग)

'वारिदान'[1] का कृत्य बुआ के लिए विशेष होता है। उसको इस अवसर पर उचित नेग प्राप्त होता है। एक विशेष प्रकार के चूल्हे पर चावल पकाकर उनको मन्त्रोचारण के साथ होम किया जाता है। इस कृत्य को बुआ के अतिरिक्त किसी और से कराना वर्जित है।[2] 'वारिदान' से सम्बद्ध निम्न गीत मे बुआ की प्रतिष्ठा का वर्णन करते हुए कहा गया है कि 'सुभद्रा बुआ' ने 'सुलेमान'[3] की पवित्र मिट्टी, तथा गगाजल से 'वारिदान' बनाया। अर्जुन-भार्या के पवित्र हाथो द्वारा बना 'वारिदान' अत्यत पवित्र तथा उचित लगता है।

---

१. 'वारिदान' एक विशेष प्रकार का सहलहणीय (Portable) चूल्हा होता है। इस पर, रीतिपालन के लिये बुआ चावल पकाती है। इस कृत्य का प्रयोजन नेग-प्राप्ति होता है।

२. यदि संस्कार्य-बालक की बुआ न हो अथवा उसकी मृत्यु हो गई हो तो किसी भी स्त्री को नाम मात्र के लिए, अस्थायी बुआ मानकर, कृत्य पूजन किया जाता है। नेग भी उसी को मिलता है।

३. श्रीनगर स्थित शंकराचार्य पहाड़ी के लिये मुस्लिम-समाज में प्रचलित शब्द। हिन्दुओं में इस शब्द का प्रचलन स्पष्टतः मुस्लिम-प्रभाव को परिलक्षित करता है।

सुलेमान एयस तय मंगय बाने, सुभद्राय्‌ि कोर वारेवान ।
मर्यांच तअ पअनिस अअच कम्भीरय, मम्भीर वार असि वारेवान ।
असि कोद वारिवान सुभद्राये. अर्जनदीवनि मर्यांये ॥

हुम (यज्ञ)

यज्ञिय-अग्नि प्रज्वलित करना यज्ञोपवीत संस्कार का विशेष कृत्य होता है। इसकी परम्परा अत्यत प्राचीन है। अग्नि जीवन तथा प्रकाश का प्रतीक था, जिसकी प्राप्ति के लिये विद्यार्थी प्रयत्नशील था। यह भारत की विशेष धार्मिक गतिविधियों का केन्द्र भी रहा है।[1] इसके अतिरिक्त अग्नि को पावन भी माना गया है, अतः संस्कारों पर इसको अत्यंत प्राचीन काल से ही अधिक महत्व दिया जाने लगा।

'मेखला' संस्कार के लगभग सभी कृत्य अग्नि के समक्ष ही पूर्ण किए जाते हैं। आहुतियाँ होम करते समय जिन मन्त्रों का उच्चारण होता है, उनका शैक्षिक महत्त्व सर्वोपरि है। गीतों की दृष्टि से भी 'हुम' अत्यंत महत्वपूर्ण है। विभिन्न कृत्यों के परिचय के अतिरिक्त सास्कृतिक परम्पराओं, धार्मिक अनुष्ठानों एवं सामाजिक शिष्टाचारो आदि पर भी प्रकाश पडता है। इस प्रकार के एक गीत का भाव है—बृहस्पति देवता स्वयं यज्ञिय-अग्नि प्रदीप्त करने आये हैं। सुभद्रा उनकी आरती उतारती है। चन्दन-काठ से अग्नि प्रज्वलित होती है। इस पवित्र अग्नि से जो मांगा जाता है, वह अवश्य प्राप्त होता है। गीत इस प्रकार है—

अग्नअ कोण्डस स्वन्द्रावुस त्योंग्ला, मंगला वंगि अनसिये ।
सुभद्रा माजि मांगय मंगे कन्या वंगे अनिसये ।
ब्रहमा जुवस मांगय मंगे, कन्यस जंगे अनिसये ।
अग्न स्वच्छोवुस मंगल मंगे, कन्यस वंगे अनिसये ।
अग्न स्वन्द्रावसु चन्दन लशे, जिनी ग्रशे लागसी ॥

जैसा कि ऊपर कहा गया, यज्ञ अथवा 'हुम' का दिन ही समग्र यज्ञोपवीत संस्कार का केन्द्र-बिन्दु होता है। अतः उपवीत धारण करने का महत्त्वपूर्ण कृत्य भी इसी दिन पूर्ण होता है। जनेऊ की अनिवार्यता तथा इसके महत्व की अभिव्यक्ति गीतो मे भी अत्यंत मार्मिक रूप से हुई है। उपवीत के तीन सूत्र बनाने का भी अत्यत सुन्दर वर्णन हुआ है। ऐसे एक गीत में कहा गया है कि कृष्ण भगवान् 'संस्कार्य-बालक' के लिये वासुदेव के खेतों मे कपास बोई गई। ओस के बून्दों से वह फूटने लगी। ग्राम्य स्त्रियों ने सहर्ष उसकी गुडाई की, और एक ही रात में वह उग कर काट ली गई, ओट भी ली गई और उसका उपवीत भी बना दिया गया।

---

१. हिन्दू संस्कार, पृ० १७८।

सुमन कपसा ववनय आइ, कृष्णजूने यछायि ।
वासुदीव राजम्यन डारन हाॅयि, चूर विनि पोस-वायि आइ ।
रातस मन्ज स्वय तुलनय आई, कृष्णजूने यछायि ।
वासुदीव राजनि जिछि-जिछि कपसे, वपसे करसे योनेइन ।

कपास को हाथों-हाथ तैयार करके कातना आरंभ किया गया। 'देवकी', शारिका (देवी), ब्रह्मा, नारायण, तथा अन्य देवियाँ उसे कातने तथा उपवीत बनाने में जुट गईं—

रव्य वोय तोसम तअ अव्य व्यछनोवुम, तव्य करनोवमय योनइन ।
दिवकी व्यछुनुय कर्निकि कतुय, योनि लवुयो नारअनी ।
शारिकायि भगवतिनी सयअर कतुय, योनि लवुयो नारअनी ॥

जनेऊ पहनाने के विशेष कृत्य के समय स्त्रियाँ मुक्त-कण्ठ से गीत गाती हैं। देव-आवाहन की गूंज अधिक तीव्र हो जाती है। लक्ष्मी अग्नि-मडप से उदित हो जाती है। गायत्री सुमीर से प्रकट होती है। अष्टदशभुजा दुर्गा पर्वत से निकल कर पावन अग्नि मे आहुतियाँ डालती हैं तथा तीन सूत्रों का मर्म भी बताती हैं—

अग्नय-कंुण्ड मन्ज लछमी द्राये, मयलड़ आये जन्म हपय ।
सुमेर अन्द्रय गायत्री द्राये, लोल-पुपुतिस हपय आये ।
पर्वत अन्द्रय शारिका द्राये, कृष्ण माहराजस गायत्री हपय ।
अदीहुव नर्यव करनम स्वाहाइवे, लोल-पुतिह् हपय आये ।

इसी प्रकार 'हुम' के अन्य गीतों मे भी, सस्कार्य-बालक, उसके माता-पिता एवं ब्राह्मणों की मगल-कामना, कुल का मर्यादित परन्तु अतिरंजित वर्णन तथा यज्ञिय-कर्मकाण्ड एवं लोकाचारो के अतिरिक्त, विभिन्न देवी-देवताओं का उल्लेख भी मार्मिकता से हुआ। संस्कार्य-बालक की दीक्षा के लिये कभी गणेश उपस्थित होते हैं, कभी राम अथवा कृष्ण अकाश से पुष्प-वर्षा करते हैं और कभी यज्ञ-मण्डप से अग्नि देवता अवतरित होकर वातावरणको पवित्र करते हैं।

ठोक तथा नअरिवन (तिलक तथा मौली)

'तिलक' को यज्ञोपवीत के विधि-विधानों मे महत्त्वपूर्ण स्थान प्राप्त हैं। इसे दीक्षा का प्रतीक माना जाता है। गीतों मे तिलक का उल्लेख बार-बार आया है। कहीं नारायण, कृष्ण (बालक) को दीक्षा देते हुए चित्रित हुए हैं, और कहीं वासुदेव के घर के विद्वान् पंडित इस कार्य में सम्मिलित होते हैं—

पूजय ब्यूठहम नारायण ।
बड़ि आस बोल तय, कृष्णजूने लोलय ।
शोलय बिबान वोकुय लाग ।

वासुदीव राजनिस, कूर गव्व बागस ।
बड़ि बाहमण कर बातस बोक ॥

"नअरिवन' (मौली) का कृत्य भी मेखला संस्कार पर किया जाता है। स्त्रियाँ[1] कानों में आभूषणों की भाँति इसे पहन लेती हैं। मौली को 'मेखला' संस्कार के मांगलिक अवसर का चिह्न समझा जाता है।[2] इसे डालते समय स्त्रियाँ अत्यंत भावपूर्ण गीत गाती हैं। इनमें प्रायः इस मंगल एवं सौभाग्य-चिह्न का सांस्कृतिक वर्णन विशेष रूप से हुआ है। निम्न गीत में, बालक की माता को 'मौली' डालने पर बधाइयाँ दी जा रही हैं और उसे "दण्डक-वन"[3] की तपस्विनी, राजा दशरथ की सुपुत्री, भीष्मकन्या एवं सौभाग्यवती आदि कहा गया—

वासुदीव राजन्य आन्तन मअली, बान्तन सअत्य सार नअरयवन ।
वासुदीव राजन्य वान्यन्व कूरी, कानोय व्यट सार नअरयवन ।
शाबास तस माजि यस माजि, जाव, जायव तव बअरिय नअरयवन ।
विश्मक राजन्य गाटिज कूरी, पअटिव सअयपयय नअरयवन ॥

'अबीद' (भिक्षा)

"भिक्षा" भी यज्ञोपवीत संस्कार का एक विशेष कृत्य होता है। गुरु के हृदय-स्पर्श एवं आशीर्वाद से बालक जनेऊ धारण कर, समाज में प्रविष्ट होने के योग्य हो जाता है।

---

१. इसे केवल संस्कार्य-व्यक्ति के कुल की स्त्रियाँ ही धारण करती हैं। जैसे; माता, चाची, बुआ, भाभी आदि ।
२. जिस विवाहित स्त्री को, जितनी शीघ्रता से जीवन में "नअरिवन" डालने का सुअवसर प्राप्त होता है, उसे उतनी ही शीघ्रता से संतान-सुख प्राप्त होता है, लोक-मानस में ऐसा विश्वास प्रचलित है ।
३. "दण्डक-वन" को यहाँ पर कश्मीर का "चित्रकूट-वन" समझ लेना चाहिए । जिस प्रकार देवी-देवताओं के तप-त्याग एवं तपस्या के लिए रामायण एवं भारतीय लोक-काव्य के कई स्थलों पर "चित्रकूट-वन" का चित्रण हुआ है उसी प्रकार कश्मीरी रामायण तथा लोक-साहित्य में "दंडक-वन" (जो स्थानीय वन है) का चित्रांकन हुआ है ।

इस उपकार के लिये बालक, गुरु-दक्षिणा चुकाने का व्रत लेता है। भिक्षा के इस कृत्य को 'अबीद" कहते हैं। सभी आमंत्रित व्यक्ति, बन्धु-बान्धव तथा अन्य निकट-सम्बंधी बालक का भिक्षा-पात्र भर देते हैं। बालक को सामाजिक दायित्व के प्रति जागरूक बनाने तथा समाज में प्रविष्ट होने से पूर्व व्रत-पालन, शिष्टाचार तथा अनुशासित-जीवन व्यतीत करने का, एक प्रकार का, पूर्वाभ्यास इस कृत्य मे निहित है। यहाँ तक कि व्यक्ति अनुकूल भाषा प्रयुक्त करने का पूर्वबोध भी बालक को इसी कृत्य द्वारा कराया जाता है। गृहस्वामिनी के लिये 'भवति' शब्द का प्रयोग इसी तथ्य का परिचायक है।

'अबीद' के गीतों मे भी प्राय. अन्य गीतों की भांति काल्पनिक, सौन्दर्यपूर्ण, अतिरंजित वर्णन द्रष्टव्य है। माता-पिता, बहिन-भाई, बुआ, मौसी, मामा इत्यादि इस अवसर पर सोने की अगूठियाँ, असंख्या मोहरें, तथास्वर्ण मुद्रायें भिक्षा-पात्र मे डालते हुए चित्रित किए गएँ हैं।

अयन छिन्यमय स्वनसन्ज वअजो, माजि ति गोहोम अबीदे।
दोहस फूयूरहोअ आनन-ड़बन, बबन ति गोहोम अबीदे॥

'कलश' (समापन गीत)

'कलश' पूजने का कृत्य प्राय. मेखला-संस्कार की समाप्ति का सूचक है। गीतों मे भी इस कृत्य का उल्लेख इसी रूप मे हुआ है। "कलश"; बादाम, अखरोट तथा जल से भरा जाता है। यज्ञारंभ से समापन तक इसका पूजन होता है। यज्ञिय-अग्नि की समाप्ति पर इसका पवित्र जल उपस्थित व्यक्तियो पर छिडका जाता है और बादाम तथा अखरोट प्रसाद के रूप मे बाँटे जाते हैं। तब यह गीत गाया जाता है—

कलश पूज कर वतुसि नरो, कृष्ण जू तम हुलवरो।
कलशस पूज कर ववॅतुल्ये, टापंट कुलि वासुदीव राजन्यो॥

'कलश' पूजने तथा प्रसाद बाँटने के पश्चात् संस्कार्य-बालक के सिर पर सफेद पगड़ी बाँधी जाती है। पगड़ी प्रौढ़ता का प्रतीक है। अत: बालक को इससे विभूषित करने का अभिप्राय उसे उत्तरदायित्वपूर्ण सामाजिक जीवन के प्रति जागरूक बनाने का है। पगड़ी बाँधने के पश्चात् बालक को मामा, उसे कन्धे पर उठा कर नदी-तीर तक ले जाता है। स्त्रियां इस समय' गोलाकार मे घूम-घूम कर एक विशेष प्रकार का नृत्य करती हैं। इस 'अरनि-

रोष'[1] कहा जाता है। इसी के साथ गीत भी गाया जाता है। गीत में प्रायः विशेष टेक की आवृत्ति की जाती है, जिसमें संस्कार्य-बालक की माता के गुण, शीलता, सौन्दर्य तथा उसकेआभूषणों का वर्णन प्रमुख होता है। यथा—

अस्य करव अरनि-रोष बेयि वनवुनये ।
हुआर ब्रावि नचनि तस सअर स्वनसन्ज़ये । अस्य० ॥
हारि गछ्यम डेजिहारे सुति स्वनसुन्दये । अस्य० ॥
हारि गछ्यम अठअहोर सुति स्वनसुन्दये । अस्य० ॥

कभी-कभी ऐसे अवसरोंपर निम्न टेकपूर्ण पंक्तियाँ भी गाई जाती हैं। इनमे संस्कार्य-बालक को ही विभिन्न प्यारे नामों—मेरा तोता, मेरा राजा, मेरा मैया, मेरा प्यारा, आदि से संबोधित किया गया है और इसी के टेक जोड़ दिए गए हैं। संगीत की दृष्टि से गीत अत्यंत मधुर एवं लयप्रधान हैं।

हुम वशुम तअ व्योगि ललुम, तोतअ वपुम यारबल ॥
हुम वशुम तअ वेगि ललुम, राजअ वपुम यारबल ॥
हुम वशुम तअ वेगि ललुम, ओय वपुम यारबल ॥
हुम वपुम तअ वेगि ललुम, टाठयि वपुन यारबल ॥ ॥ हुम० ॥

नदी तीर से लौटने पर सहभोज का आयोजन होता है।भोज में वैष्णव-भोजन परोसा जाता है। इसके बाद दूसरे दिन "कुशल होम" (समापन समारोह) मनाया जाता है। इस अवसरपर सामिष-भोजनहोता है और स्त्रियों मे नेग बाँटा जाता है। इसी के साथ यज्ञोपवीत सस्कार समाप्त होता है।

---

१. "अरनि-रोष", मूलतः संस्कृत के "अरुण-व्रत" का अपभ्रंश प्रतीत होता है। अतः "अरुण व्रत" स्पष्टतः सूर्य-उपासना अथवा सूर्य-व्रत का परिचायक है। कश्मीर में यज्ञोपवीत संस्कार के लिए, 'मेखला' 'योनि तथा' 'यज्ञोन्योपवीत' के अतिरिक्त 'अरनि रोष' शब्द भी प्रचलित हैं। बहुधा देखा गया है कि यज्ञ-मण्डल पर भी विभिन्न रंगों का सूर्य-मंडल ("सौर-चक्र") बनाया जाता है, जिसे निरंतर पूजा जाता है। वस्तुतः सूर्य-उपासना इस संस्कार का विशेष कृत्य है और 'अरनि-रोष' (अरुण-व्रत) इसी का द्योतक हैं। इसके अतिरिक्त जिस स्थान पर स्त्रियाँ यह नृत्य करती हैं, वहाँ भी सूर्य की एक गोलाकार आकृति बनी रहती है।

डाक्टर विष्णुदत्त भारद्वाज

हरियाणी भाषा में लिंग-निर्णय

हरियाणी के विकास में संस्कृत-प्राकृत, अपभ्रंश तथा विदेशी शब्दों का योगदान रहा है। अतः हरियाणी भाषा मे लिंगनिर्णय करते हुए सस्कृत, पालि, प्राकृत, अपभ्रंश, अरबी, फारसी इत्यादि के शब्दकोषों और व्याकरण ग्रन्थों का अध्ययन अनिवार्य है। समय परिवर्तन के अनुसार अन्य भाषाओं की भाँति शब्दों का विकास एवं ह्रास, तथा उनका लिंग-परिवर्तन हरियाणी मे भी होता रहा है।

हरियाणी शब्दावली के लिंग निर्धारण का आधार लोक-प्रयोग और प्राचीन भारतीय और अभारतीय व्याकरण और कोषग्रन्थ हैं। वस्तुतः हरियाणी की यह विशेषता है कि इसके शब्दों का लिंग प्राचीन भाषाओं के समान व्याकरणसम्मत है। पंजाबी मे अखबार आई, ब्रज में गुस्सा आई और बंगाली मे हाथी आई का प्रयोग व्याकरण सम्मत एवं शुद्ध नही है। हरियाणी मे अखबार आता है, गुस्सा आता है और हाथी आता है—अर्थात् हरियाणी में अखबार गुस्सा और हाथी पुंलिंग हैं।

जिन शब्दों से पुरुष और स्त्री की अभिव्यक्ति होती है, वे शब्द क्रमशः हरियाणी में पुंलिंग एवं स्त्रीलिंग होते हैं। पारिवारिक एव सामाजिक शब्दावली के बोधक शब्द पुंलिंग हैं। जैसे :—दाद्दा, पड़पोत्ता, पितसरा, (पति का चाचा) ध्याणा (पुत्री की सन्तान) गैलड़ (पुनः विवाहित स्त्री के साथ आया परपुरुष का पुत्र) खात्ती (बढ़ई)। उक्त शब्दो के स्त्रीत्व बोधक शब्द क्रमश. स्त्रीलिंग होते हैं।

सस्कृत के पुंलिंग शब्द हरियाणी में अधिकांश पुंलिंग ही हैं। यथा—भाण्डः भांड (पुं०)। मण्डप.—मांढा (पुं०)। लड्डु—लाड्डू (पुं०)। वत्स—बाछडा (पुं०)। श्यामक—स्यामक (पुं०)।

सस्कृत के नपुंसक लिंग हरियाणी में अधिकांश पुंलिंग बन गए हैं। एतदर्थ यह शब्दावली देखिये—लक्षणम्—लक्खण (पुं०)। वण्टनम्—बांडा (पुं०)। व्यजनम्—बीजणा (पुं०)। शकुनम्—सौण (पुं०)।

सस्कृत के अधिकाश स्त्रीलिंग शब्द हरियाणी में स्त्रीलिंग ही है। जैसे :—जिह्वा—जीभ (स्त्री०)। कुमारी—कवारी (स्त्री०)। भित्ति—भीत (स्त्री०)

इत्वरी इतरी (स्त्री०)।

प्राकृत के अधिकांश पुंलिंग शब्द हरियाणी में पुंलिंग ही हैं। प्रस्तुत उदाहरणों में

प्रथम शब्द संस्कृत का, द्वितीय प्राकृत का तथा तृतीय हरियाणी का है। यथा—क्षुरप, खुरप, खुरपा (पुं०)। गण्डु, गंडुअ, गिन्डुआ (पुं०)। करीष-करीस (पुं०) करस (स्त्री०)

प्राकृत के कुछ नपुंसकलिंग शब्द हरियाणी में पुलिंग बन गए हैं—कङ्कण, कंकण, कांगणा (पुं०)। जेमन, जिमण, जिम्मण (पुं०)। योक्त्र, जोत, जोत (पु०)

प्राकृत के कुछ स्त्रीलिंग शब्द हरियाणी में स्त्रीलिंग ही हैं—कंचुलिका, कंचुलिआ, कांचली (स्त्री०)। कण्ठिका, कंठिआ, कंठी (स्त्री०)। पर्यस्ति, पल्लत्थि, पलात्थि (स्त्री०)। पर्याण, पल्लाण, पिलाण (पु०)। पालि, पालि, पाल (स्त्री०)। पिण्डिका पिंडिका, पिंडी (स्त्री०)।

अरबी, फारसी से आए हुए शब्द हरियाणी में अपने मूल लिंग में प्रयुक्त होते हैं—अराम (फा० पुं०) आराम (पु०)। आजमाइश (फा० स्त्री०) अजमास (स्त्री०)। अब्ब (अ० पु०)। बाजार (फा० पु०) बाजार (पु०)। पियाला (फा० पु०) प्याला (पु०)। तबीज (पुं०) तावीज़ (अ० पु०)।

हरियाणी में कुछ पर प्रत्यय ऐसे हैं जिनके लगने पर संज्ञा शब्द स्त्रीलिंग हो जाते हैं—

प्रत्यय—अक।	शब्द—रमक, घसक।	आई = बडाई, चूंडाई।
—अत।	—बढत, चढत।	णी = मारणी = चालणी।
—आस।	—हगास।	ओरी = हगोरी।

देशी शब्दों के विकसित रूपों के लिंग भी हरियाणी मे 'देशी' शब्दों के समान ही हैं—ओड्ढणं, ओढ़णा (पुं०)। ओल, ओल्लल (पुं०)। कोत्थले, कोथला (पु०)। खली, खल (स्त्री०)। चूडो, चूडा (पुं०)। डलो, डला (पु०)। चि, पीजू (पुं०) पेंढा, पैढा, पैंडा (पु०)। पुप्मा, फुफा (पु०)। राड़ि, राड़ (स्त्री०)। वहडो बैहडा।

गुजराती और हरियाणी के अधिकांश शब्दों में भी लिंगसाम्य हैं— कचरो (पुं०) कचरा, अडंगा (पुं०)। कज्जियो (पुं०) कजिया (पुं०)। कबीलो (पु०)। कबीला (पु०)। कसर (स्त्री०) कसर (स्त्री०)। गमाण (स्त्री०) गुमाण (स्त्री०)। घडो (पुं०) घड़ा (पुं०)। छाटो (पुं०)। छांटा (पुं०)। डूचो (पुं०) डूजा (पु०)।

हरियाणी शब्दावली का अंतिम वर्ण के आधार पर वर्गीकरण करके यह निष्कर्ष प्रतिपादित किया गया है कि हरियाणी के अधिकांश शब्द अकारान्त, आकारान्त, इकारान्त, ईकारान्त, उकारान्त, ऊकारान्त हैं। एकारान्त शब्द आकारान्त शब्दों के बहुवचन हैं। व्यंजनान्त अकारान्त इत्यादि में अन्तर्भूत हो गए हैं। हरियाणी के पुलिङ्ग शब्दों के उदाहरण निम्न प्रकार हैं—अंगरखा, अंगोछा,अलबेडा, आटण, आटेबाटे, उकड़ू, उठाऊ, उलग्ड, ओजणे, ओल्ला, कचोला, कनागत, क्यार, करोंत, कलिल्ला, काम्ना किराड़, कुतका, खुलिया, गामड़, गेड्डा, गोस्ता, चोपड़, तिरमरे, मरोटा, मुगड़े, सोंट।

हरियाणी के स्त्रीलिंग शब्दों के उदाहरण हैं—आगली, आंगी, आगो, आंट, आवटी, इतरी, उलाई, कड़ी, कंठी, कस्सी, कुबाण, कुढ़ी, खुबात, गिरणी, गुमड़ी, गौसटी, घिस्सी, चिरली, छाकरी, टिन्डी, डाफा ढांढ़ी, ढाक, थोथ, दड़ी, घोक, न्योली, बिलंगणी, मिरड़, मोच, सांथल। हरियाणी उपभाषा में संज्ञाओं, विशेषणों और क्रियाओं के पद भी लिंगानुसार बदलते हैं—

जैसे—छोरा आवै सै। छोरी आ सै। छोरा सोणा सै। छोरी सोणी सै।

संज्ञा में लिंग परिवर्तन—

पुलिंग—छोरा, किराड। स्त्रीलिंग—छोरी, किराड़ी।

हरियाणी में विशेषण में लिंगानुसार परिवर्तन भी होता है—

पुलिंग—चोखा, मुण्डा, नाटा, घुन्ना, मीड, छैला। स्त्रीलिंग—चोखी, मुण्डी, नाटी घुन्नी, मीड़ी, छैली।

अत: निष्कर्ष यह निकला कि संस्कृत के पुलिंग शब्दों का तद्भव रूप हरियाणी में पुलिंग रूप में प्रयुक्त होता है। संस्कृत के अधिकांश नपुसक लिंग शब्द हरियाणी में पुलिंग बन गए हैं तथा संस्कृत के अधिकाश स्त्रीलिंग शब्द स्त्रीलिंग ही हैं। यही स्थिति प्राकृत शब्दावली की है। विदेशी भाषाओं के शब्दों का लिंग मूलभाषा वाला ही हरियाणी मे प्रयुक्त होता है। देशी नपुसक शब्द हरियाणी में पुलिंग बन गए हैं। संस्कृत, अरबी एवं फारसी से आगत गुजराती और हरियाणी शब्दावली मे लिंगसाम्य है। उक्त निष्कर्ष के कुछ अपवाद भी हैं। शब्द की निरुक्ति, ससर्ग, स्थान-भेद तथा काल भी लिंग-निर्धारण के प्रमुख अग हैं। इसके अतिरिक्त लिंग निर्णय मे सामान्य तत्व यह है कि जिन शब्दो के अर्थ में ओज, बल, कठोरता उग्रता, विशालता, श्रेष्ठता, महत्ता आदि भावो की अनुभूति होती है, वे पुलिंग हैं। जिन शब्दों के अर्थ मे कोमलता, दौर्बल्य, सुन्दरता और लघुता आदि भाव संपृक्त होते हैं, वे स्त्रीलिंग होते हैं। स स्कृत के पुल्लिग और स्त्रीलिंग शब्दो के स्थानापन्न हरियाणी शब्द क्रमश: पुलिंग और स्त्रीलिंग हैं। सस्कृत के कुछ नपुमक शब्द पुलिंग और कुछ शब्द स्त्रीलिंग बन गए हैं। संस्कृत का नपुसक 'लवन' शब्द हरियाणी मे 'लामणी' (स्त्री०) बन गया है।

वि वि धा

रामसिंह-कृत युगलविलास : एक परिदृष्टि

वरवर-नरेश महाराज रामसिंह जी देव कूर्मवंशी क्षत्रिय राजा छत्रसिंह के पुत्र थे। अनुमान से इसका जन्म समय सं० १८०० वि० के लगभग है। सुकवि तथा कवियों के संरक्षक महाराज रामसिंह अपने वैदुष्य और कलानुराग के लिए ऐतिहासिक ख्याति के व्यक्ति रहे हैं और अब तक हैं। इनकी रचनाओं मे एक अवेक्षक रचनाकार की पारंगतता दिखाई पड़ती है। इनका प्रावीण्य, जो आलोचकों की ओर से प्रायः प्रशंसित होता रहा है,[1] समकालीन प्रथित स्वीकृतियों के मध्य न्यूनाधिक मौलिकता की अन्वेषण और सिद्धि में निहित है। आरंभ मे हमें इनकी चार कृतियों का पता चला था—रसशिरोमणि (रचनाकाल स० १८३० वि०), अलकारदर्पण (सं० १८३५ वि०), रसनिवास (सं० १८३९ वि०) और रसविनोद (सं० १८६० वि०)। अलंकारदर्पण, ३८३ दोहों मे लिखित, अर्थालंकारों का महत्वपूर्ण ग्रंथ है। यह भारतजीवन प्रेस काशी, से सन् १८९९ ई० मे प्रकाशित हुआ। रसनिवास रस तथा नायिकाभेद-विषयक ग्रंथ है। रसशिरोमणि का मूल विषय 'शृंगार' है। इसमें कुल २३२ छद हैं।[2] नवीन खोजो मे इनकी तीन अन्य रचनायें भी मिली, जिनमे 'जुगलविलास', 'मनमोहन भक्तिविलास' और 'सहस्रनाम चौपही' का स्थान है।[3] इनमे केवल एक ही ग्रथ 'मनमोहन भक्तिविलास' के हस्तलेख का लिपिकाल (सं० १८३० वि०) ज्ञात हो सका है,[4] शेष दो ग्रंथो के संबंध मे 'खोज-विवरणिका' चुप है।

नागरी-प्रचारिणी सभा के संक्षिप्त खोज विवरण मे 'युगलविलास' का रचनाकाल सं० १८३६ वि० दिया गया है,[5] परन्तु इसके लिपिकाल का कोई उल्लेख उसमें नहीं है।

---

१. हिन्दी साहित्य का इतिहास—(पं०) रामचन्द्र शुक्ल; ना० प्र० स०; सं० २०२२; पृष्ठ २८५—'ये एक अच्छे और प्रवीण कवि थे।'

२. हिन्दी साहित्य कोश—भाग २; ज्ञानमण्डल, वाराणसी; प्रथम संस्क०, सं० २०२० वि०; पृष्ठ ४९४।

३. हस्तलिखित हिंदी पुस्तकों का संक्षिप्त विवरण-द्वितीय खण्ड; ना० प्र० सभा, काशी; सं० २०२१ वि०; पृष्ठ ३०७।

४. उपरिवत्; पृष्ठ १३०।

५. उपरिवत्—प्रथम खण्ड; पृष्ठ ३५१।

मेरे पास 'युगलविलास' की जो लीथो-प्रति है, उससे भी उपरिलिखित 'समय' की पुष्टि हो जाती है। पुस्तक के अन्तिम छद से स्पष्ट ज्ञात होता है कि इसे 'नरवरनाथ छत्रसिंह-सुत रामसिंह,' ने माघ, शुक्ल पंचमी, गुरुवार, सं० १८३६ में पूर्ण किया। छन्द देखिए--

"अथ कविता की ग्रन्थोत्पत्ति वर्णन : राग सोरठ"
नरवरनाथ छत्रसिंह सुत रामसिंह, रुचित बनायो ग्रंथ जग को निवास है।
गावें जो गवावें सुनें प्रेम में मगन होय, ताके उर राधा मनमोहन को वास है।।
संवत से अष्टादस बरष छत्तीस पुनि, शुदि तिथि पाँचे गुरवार माघ मास है।
रसिक हुलास करि, सुमति प्रकाश कर, नवल प्रगट भयौ जुगल विलास है।।[1]

'युगल विलास' की इस प्रति का मुद्रण सौ वर्ष पूर्व मतबअ लताफत, आगरा से सं० १९२६ वि० मे हुआ है। 'पुष्पिका' के मूल शब्द ये हैं--[2] इति श्री मन्महाराजाधिराज महाराज श्री श्रीरामसिह जी देव कृत जुगल विलास वर्नन संपूर्णम्।। संवत् १९२६।।

महराजाधिराज श्री रामसिह जी देव--प्रणीत 'युगल विलास' का शिलायंत्र-मुद्रण बादामी रग के सामान्य पत्रो पर दोनो ओर सुंदर और काले सुडौल अक्षरों मे हुआ है। पुस्तक का आकार ८"×५½" तथा सम्पूर्ण पृष्ठ सख्या ३२ है। आवरण-पृष्ठ पर फूल-पत्तीदार किनारे बने हुए हैं। बीच मे आलिंगनबद्ध वेणुधर कृष्ण और उनकी दयिता राधा परिचारिकाओ के साथ चित्रित हैं। एक सेविका के हाथ मे चँवर है। चित्र मुशी मीरपनाह अली ने आँका है। इसके ठीक नीचे 'यत्रालय' और 'मुद्रक' के नाम छपे हैं। पूरा लेख यथावत् इस प्रकार है--जुगल विलास ऽ--मतबअ लताफ़त आगरा मदारी खाँ के कटरे मे जहाँगीर खाँ के एहतमाम से छपा।।[3]

जहाँ तक मैं जान सका हूँ, यह 'युगल विलास' की प्राचीनतम मुद्रित प्रति है। ग्रथारंभ पृष्ठ-संख्या ३ से हुआ है। 'गणेश' सर्वप्रथम स्मरण किये गये हैं और बाद में 'मदन मोहनो जयति' आया है--।।श्री गणेशायनमः।। ।।श्री मदनमोहनो जयति।। अथ जुगलविलास लिख्यते।[4]

कवि ने प्रथम कवित्त मे श्रीकृष्ण से 'सुमति प्रकाश' की प्रार्थना करते हुए विलास-वर्णन का 'हुलास' अपने हृदय में होना स्वीकारा है। प्रकट है कि वह 'कन्हाई सुमिरन के बहाने' विलास-वर्णन करने नही जाता, प्रत्युत विलास-वर्णन की सफल सार्थक समाप्ति के लिये ही प्रथमतः संस्कृत-चित्त होना चाहता है। उसके निवेदन की भाषा पर ध्यान दें--

---

१. जुगल विलास; पृष्ठ ३१।
२. उपरिवत्।
३. उपरिवत् (मुखपृष्ठ)।
४. जुगल विलास; पृष्ठ ३।

मंजुल मुकुट सीस कुंडल श्रवण सोहै, मुरली अधर धुनि मोहै त्रिभुवन को।
लोचन रसाल बंक भृकुटी बिसाल सोहै, सोहै बनमाल गरें हरें लेत मन को।
रूप मनमोहन अनूप लखि लखि बीर, वारि-वारि डारों दृष्टि कोटिन मदन को
जगत निवास कीजै सुमति प्रकाश मेरे, उर में हुलास है विलास वर्णन को॥[1]

कवि के वंदनीय 'मनमोहन' (नायक) के सौन्दर्य का प्रत्यक्ष प्रभाव ही ऐसा है कि 'भक्ति' के अंकुर स्वतः मुरझा जाते हैं और कवि की 'नायिका' कम्प-पुलक-प्रस्वेद की उस भूमिका में प्रस्तुत होती है, जहाँ नायक-नायिका (युगल) तत्क्षण विलास में निमग्न हो जाते हैं।

'युगल-विलास' के शृंगार-मंच पर क्रमानुसार उपस्थित होनेवाले पात्र संख्या में इने-गिने हैं। गणना करने पर 'नायक', 'नायिका' 'सखी', 'सखा' और 'पथिक' से आगे कोई नाम नही बढ़ता। कथा-प्रसंग की विकासयात्रा संभाषण-पथ से होती है, अर्थात्— नायक और नायिका, सखी और नायिका, सखी और नायक, सखी और सखी, नायिका की सखी और नायक (कृष्ण) का सखा आपस में समय-समय पर वार्तालाप करते पाये जाते हैं। 'पथिक' की अवतारणा दूरस्थ नायक को संदेश देने के लिये की गयी है। नायिका की सखी का नायक के सखा से वार्तालाप एक नयी उद्‌भावना है। 'सखी' सर्वत्र है—कभी स्वतंत्र रूप से दूसरी सखी के साथ विचार-विमर्श करते हुये या कभी नायक-नायिका के आपसी संबंधों को व्यवस्थित रखने के लिये 'मध्यस्थ' बन कर। नायक-नायिका परस्पर पत्राचार भी करते हैं। यहाँ (परम्परा से हट कर) दूरगत नायक अपनी प्रिया की 'पाती' उत्तरित करते दिखाया गया है (शायद ऐसा न करने पर 'विलास' के विषाद' मे बदल जाने की संभावना थी!) इन पत्रों का उत्तर 'वैयक्तिक' है और स्वर 'शास्त्रीय' इस स्थिति में नायिका का पत्र (नायक के नाम) केवल पत्र न रह कर आह्वान-पत्र लगता है और नायक जो 'उत्तर' भेजता है, वह धाराहीन या'प्रतिहत—वाक्सरणि' प्रतीत होता है—

नायिका का पत्र

सुमति के निधान रतिपति के समान तुम, हित सों सिये में दीन बिनती कों धरियों।
रैनि दिन चैन है न मैन दुख देन लाग्यो, रावरे दरश बिन नाहिं धीर धरियो॥
तुम तो प्रवीन महा तुमकों मैं लिखौं कहा, हहा तुम नेह के निबाहते न डरियो॥
पातीलिखि तुम को पठाई मनमोहन जू, पाती बाँचि-बाँचि करि मेरी सुधि करियो॥

---

१. उपरिवत्।

नायक का उत्तर

सूरति तेरी बसै उर में अब तो सुधि जाय नहीं बिसराई।
मो मन मोहन होय रह्यौ नित होत रहै हित की सरसाई।।
कागद मांझ कहाँ लौं लिखौं गुन जात लिखे नहिं तेरे निकाई।
तेरे बियोग ते तातीं हुती जब पाती पढ़ी तब छाती सिराई।।[1]

वियोगानुभूतियो के चित्र 'विलास' में कम हैं—प्राधान्य है संयोगपक्षीय प्रणयालाप, मान-मनुहार और समर्पण के अनुभव-संवेदनों के अंकन का! इसीलिए अष्टमिलाप, षट्ऋतु-विहार, दानलीला इत्यादि के वर्णन अधिक विस्तृत और सुव्यवस्थित ढंग से प्रस्तुत किये गये हैं। ग्रीष्म, पावस, शरद आदि भिन्न-भिन्न ऋतुओं में सम्पर्क-सुख के विविध रूपों की झलकियाँ अत्यन्त रम्य हैं। नयी व्यवस्था के अन्तर्गत सखियाँ, 'युगल' को 'आशीष' देती हैं और स्नेह-बन्धन में उनके चिरजीवी होने की कामना करती हैं।[2] 'प्रेम' का स्वरूप रीतिकालीन से अथवा ऐन्द्रिय आसक्ति से परे नही कहा जा सकता है या कि मानव के सामान्य मनोविज्ञान से वह स्फुरित हुआ है। कवि ने जो भी कहना चाहा है, सफाई से कह दिया है—आवरण में स्वयं होकर या आवरण में कुछ रख कर नही—और यह बडी सफलता है कि उसकी अभिव्यक्ति प्रभवशाली रही है। साथ ही रीतिबद्ध कवियो के शिविर मे वह खो नही गया है, सर्वथा मलिन और अतीक्ष्ण नही हो गया है—इसे प्रमणित करती है 'नेह' की यह व्याख्या—

जा दिन तें निरखे तुम हो मन मेरो लग्यो तुमहीं में रहै।
है जु वहो मनमोहन ह्वै करि चाहत ताहि होनित्य चहै।।
नैन वहो जु निहारै वहो मुख बैन वही रसना जु कहै।
नेह कहा लगि कै जु छुटै वह नेह वही जु सदा निबहै।।[3]

अंतिम कवित्त 'भक्त उक्ति' का है, यानी मूलतः शृंगारी मनोवृत्ति के कवि ने अपने 'भक्त' होने की घोषणा की है तथा युगल-मूर्ति को अन्तर्मन में बसाने की परम अभिलाषा व्यक्त की है। यह दूसरा प्रश्न है कि उसे अपवर्ग का आकांक्षी भक्त माना जा सकता है अथवा नही!

विशिष्टः

महाराज रामसिंह संगीतज्ञ भी थे। उनके संगीत-ज्ञान का परिचय 'युगलविलास' से भी मिलता है। इस कृति में प्रत्येक गेय छन्द के लिये एक निश्चित 'राग' की योजना है

१. युगलविलास; पृष्ठ २६-२७।
२. उपरिवत्; पृष्ठ ३०-३१; छंद संख्या-९९।
३. उपरिवत्; पृष्ठ ७-८।

व्यवहृत रागों में प्रमुख ये हैं—गौरी, कान्हरी, ईमन, सोहनी, सोरठ, मटपाल, वागरी कान्हरो पूर्वी, श्यामा, गौड़ मलार, अलो, हंसकिंकिणी, हमीर, जैत, जैजैवन्ती, खंमाच (खंमायच), भैरव, विभास, रामकली, गूजरी, सारंग, बिलावल, टोड़ी, सोरठ मलार, शुद्ध मलार, केदारो, वागेश्वरी कान्हरी, अडाणो, परज, धनाश्री, गौड़ सारंग, ललित और वृन्दावनी सारंग!

'कृति' सम्पन्न भाषा में सुष्ठु और सु-कृत है। आशा रखी जा सकती है कि रीति-काव्यानुशीलन में प्रवृत्त जन इसकी उपयोगिता तथा महत्ता पर विचार करेंगे।

—(डा०) उदयशंकर माथव

रीवाँ-नरेशों की हिन्दी-सेवा

मध्यप्रदेश के बघेलखण्ड प्रान्त का बाघेल क्षत्रिय राजवंश यद्यपि गुजराती है, पर यहां आने पर इस राज-वंश ने जो हिन्दी-सेवा की है वह बड़ी मूल्यवान् है। ये लोग सब विद्या-प्रेमी होते आये हैं, पर बीच की इनकी तीन पीढ़ियाँ संस्कृत के साथ ही हिन्दो भाषा के महाकवि हो गयी हैं। इन्हीं का यहां क्रमशः परिचय दिया जाता है।

महाराजा जयसिंह (१८०९-३३ ई०)

इनका समय भक्ति-काल में आता है। उस समय भक्ति-साहित्य का निर्माण हो रहा था। महाराजा जयसिंह देव ने भी हिन्दी में भक्ति-साहित्य का निर्माण किया। इस विषय का उनका 'हरि-चरितामृत' बहुत बड़ा ग्रन्थ है। उसमे विष्णु के चौबीस अवतारों की कथा वर्णित है। उसमें केवल कृष्णावतार कथा का पूर्वार्ध "हरि-चरित्र चन्द्रिका" नाम से प्रकाशित हुआ है। उसके विषय में मैं अपने से कुछ न कह कर स्वर्गीय लाल चन्द्र कीर्ति सिंह के वर्णन का एक वाक्य यहां उद्धृत किये देता हूँ:

"कोमलता, मंजुलता, मधुरता, सरलता, सरसता, स्वाभाविकता, अर्थगौरवता एवं विवेचन की व्यापकता, गम्भीरता और सूक्ष्मातिसूक्ष्म निदर्शन आदि उत्कृष्टताएं ग्रन्थ-गरिमा को सीमा के समीप पहुँचाती हैं। यह कहने की आवश्यकता नहीं कि तुलसीकृत मानस रामायण के नमूने पर जितने भी ग्रन्थों का निर्माण हुआ उन सब में सब से अधिक 'मानस' के समीप पहुंच सकने वाला एक यही गम्भीर ग्रन्थ है।"

इसमें दोहा-चौपाई छन्दों की विशेषता है, पर हैं और भी अनेक वर्ण-वृत्त एवं मात्रावृत्त। कृष्ण चरित्र का पूर्वार्ध इसमें वर्णित है; परन्तु विशुद्ध भागवत के अनुसार, न कि 'ब्रज विलास' के अनुसार। भाषा भी मानस के अनुसार अवधी-बघेलखण्डी मिश्रित है।

सिसुकृष्ण का चित्रण देखिए :

पालना परे कबहुं पद झटकत । बारहिं बार कबहुं पद पटकत ॥
कबहुं क बिहंसत कबहुंक रोवत । अधखुल नैन उताने सोवत ॥
गूं करि गां करि मा मुख ताकत । मुख छबि छाकि मातु मन छाकत ॥

बालकृष्ण को भी देखिए :

कोमल कर नवनीत लसो है । मनहुँ कमल सिसु हँस बसो है ॥
नुपुर बाजहिं चलत पग डोलैं । मनु मराल बालक कल बोलैं ॥
आनन कर पग धूरि धुरिटै । मनु कुल कमल पराग लपेटै ॥

सोवत सित पट खुलत कहुं यों मुख सुखद लखाइ ।
मनु पयोधि ते बिधु कढ़त फटत फेन दरसाइ ॥

गो-चारण मे बाल-केलि देखिए :

बालक हरि पद अति अनुरागे । बेनु बिखान बजावन लागे ॥
कोई गुंजत अलि की नाईं । कोई कूजत कोकिल धाईं ॥
निज तन छांह जोहि जल पावै । मुख बिकार बहु बिधि दरसावै ॥

अब शरद् वर्णन देखिए :

कुसुमित कानन परम सोहावन । मुनि मन मनसिज लग्यो लजावन ॥
लहलह लता तरुन लपटी लचि । मंद पवन परसत उठती नचि ॥
कहुं ताल तमाल रसाल बने । लपटी लतिका सुबितान तने ॥
तित फूलनि सो अस जानि परे । तरु एक धने रंग फूल धरे ॥
अलि कुंजन कुंजन गुंजि रहे । मनुम मै मनोरथ मंत्र लहे ॥
वन फूल सुगन्धि की लहरैं । चहुं ओर समीर चलै छहरैं ॥

ता छन उयो अरुन एका ससि । प्राची कुंकुम दिया मनोधसि ॥
रमा बदन सम द्युति दरसावत । इन्दीवर कानन बिहंसावत ॥
नभ चढ़ि भयो पीत पट छाजत । निसि मुख लखि मन बिवरन भावत ॥
पुनि कछु चढ़ि सित भयो बिराजत । मदन महीप छत्र जनु छाजत ॥
लसत कौमुदी कांस कुसुम पर । मनु महताब प्रकास फटिक घर ॥
जपा मालती बेला कुंजनि । गहगह फूले लखियत कुंजिनि ॥
ससि कर परसि चमक इमि साजहिं । चुनि चुनि कनिमनु डाक बिराजहिं ॥

पवन परसि सित सुमन लसि, यों सोभा सरसाइ ।
जिमि छीरधि मे छीर की लहरति लहर सोहाइ ।।

रास-वर्णन पढ़िए :

पद गति विधि चंचल कहुं अचंचल फहरत अंचल लंक लचैं।
कल झुमकन डोलति गोल कपोलनि कुंतल लोलनि रंग रचैं।।
श्रम जलकनि छावनि मुख छबि भावनि करनि चलावनि मोद संचै।
कछु सिथिलित कबरी गुंजै भमरी ह्वै ह्वै भमरी बाल नचैं ।।

फिरि मंडल बांधै कल गति नाधै तालनि साधैं रंग राचै।
झुकि झूमकि लेही प्रीति पनेहीं मतिनि अछोही पुनि नाचै ।।

उद्धव गोपी सवाद का एक दोहा देखिये :

ऊधो इन अंखियानि सों, यदि निरखहु नँदलाल ।
बहुरि ज्ञान पथ मन रमै, तौ उपदेसहु बाल ।।

इसी प्रकार के मार्मिक एवं सरस वर्णनों से ग्रन्थ भरा पड़ा है। इसके अतिरिक्त निम्न लिखित ग्रन्थ इनके अप्रकाशित हैं-- १--कृष्णतरंगिणी (कृष्ण लीला के साथ रस अलंकार वर्णन। २--गंगा लहरी ३--४--'त्रय वेदान्त प्रकाश' और 'निर्णय सिद्धान्त'। दोनों वेदान्त दर्शन के ग्रन्थ है।

महाराजा विश्वनाथ सिंह (१८३३-५४ ई०)

यह महाराजा जयसिंह के पुत्र हैं। इनके संस्कृत ग्रन्थों के अतिरिक्त हिन्दी ग्रन्थ भी अनेक हैं। 'आनन्द रघुनन्दन' नामक इनका नाटक हिन्दी भाषा का सर्वप्रथम नाटक है। इसमें रामकथा का वर्णन है। भाषा इसकी ब्रजभाषा है, पर इसके पात्रों की भाषा और उनके नाम सब विचित्र हैं। पात्रों के नाम —

भुवनहित : विश्वामित्र। हितकारी : राम। दिग्पाल : दशरथ। दिक्शिर : रावण। सुगल : सुग्रीव। डील धराधर : लक्ष्मण। दहदहजगकारी : भरत। डिम्भदिर : शत्रुघ्न। जगद्योनिज : वसिष्ठ। त्रेतामल्ल : हनुमान। इत्यादि

भाषा में यह विशेषता है कि भारत के प्रान्त प्रान्त के और फारस, इंग्लैण्ड आदि के मनुष्यों को प्रवेश करा कर उनके मुख से उन्ही की भाषा में उनके भाव व्यक्त कराये गये हैं और उनका अनुवाद दिया गया है।

इसके अतिरिक्त आपके और कई ग्रन्थ अप्रकाशित हैं। उनमें एक बहुत छोटा-'ध्रुवाष्टक' आठ छन्दों की पुस्तिका है। पर उसमें राज-शासन के सिद्धान्त ऐसी निपुणता से भरे गये हैं कि 'गागर में सागर' कहावत प्रत्यक्ष हो गयी है। इन आठ कवित्तों में चार में राजा

के दुर्गुण, राज्य नष्ट होने के कारण और अन्तिम चार छन्दों में राजा की उन्नति, राज्य स्थिर होने के कारण बताये गये हैं। प्रथम का उदाहरण देखिए :

> जो बिन कामहिं चाकर राखत,
> भौन अनेक वृथा बनवावैं ।
> आमद ते अधिकै करैं खर्च,
> रिनैं करि ब्योहरै ब्याज बढ़ावैं ।।
> बूझत लेखा नहीं कछुऐ,
> नहिं नीति की राह प्रजानि चलावैं ।
> भाषत हैं बिसुनाथ ध्रुवै,
> अस भूपति के घर दारिद आवैं ।।

अब दूसरे (राज्य स्थिर रहने के) नियमों का भी एक पद्य पढ़िए :

> चाकर दै धन बाँचै जोई,
> अठयौं तिहिं भागहिं धर्म लगावै ।
> साहलिए धेरै सातयों भाग,
> छठौं सुत। व्याहु हितै रखवावै ।
> पाँचयें बिन्ति बढ़ै धरि चौथहिं,
> तीनि ते खर्च कै रखै बढ़ावै ।
> भाषत हैं बिसुनाथ ध्रुवै,
> तेहि भूपति भौखन दारिद आवै ।।

भाषा इसकी बघेलखण्डी हिन्दी है। सुनते हैं इस अष्टक की स्वयं ग्रन्थकर्ता महाराज ने 'राज-रंजनी' नामक टीका (भाष्य) भी बनायी है, जिसमें अनेक दृष्टान्तों द्वारा मूल के सिद्धान्तों का प्रतिपादन किया गया है। इनके रचे हुए ग्रन्थ चालीस के लगभग हैं। उनमें साहित्य, संगीत, आयुर्वेद एवं वेदान्त के भी ग्रन्थ हैं। इससे इनकी योग्यता का पता मिलता है। लाल चन्द्रकीर्ति सिंह इनके विषय में लिखते हैं :—"निसर्ग के निर्माण में एक बड़ी विचित्रता है कि राजनीतिज्ञता एवं साहित्यकता दोनों में दीर्घ दक्षता का सौभाग्य एक ही व्यक्ति को बहुत कम सुलभ होता है, किन्तु बान्धवेश विश्वनाथ सिंह जी में दोनों विभूतियों का समुचित समन्वय था। आप की साहित्यिकता भी सुदीर्घ और सफल थी।...आप कवि, नाटककार और गद्य-लेखक सब कुछ थे।"

महाराजा रघुराज सिंह (१८५४-८० ई०)

यह महाराजा विश्वनाथ सिंह के पुत्र थे। वंशक्रम से साहित्यिक प्रतिभा प्रस्फुटित होती

हुई इनमें वह अपने विकास के चरम सीमा तक पहुंच गयी थी। इन्होंने 'रुक्मिणी-परिणय' नामक महाकाव्य बनाया। जो साहित्य शास्त्र के नियमानुसार हिन्दी का प्रथम महाकाव्य है। 'रामस्वयंवर', सरस दोहा चौपाइयों में श्री मद्भागवत का प्रामाणिक अनुवाद 'आनन्दाम्बुनिधि' और 'भक्तमाल' आप के बड़े बड़े ग्रन्थ हैं। इसके अतिरिक्त हिन्दी-संस्कृत में और कई छोटी-भक्ति एवं देवस्तुति-प्रधान पुस्तकें हैं। भाषा इनकी ब्रजभाषा मिश्रित अवधी, बघेलखण्डी है। उदाहरण के लिए एक पद्य देखिये :

तारन पै कंज कंज हूं पै रम्भ खम्भ राजै,
रम्भ खम्भ हूँ पै सिंह तापै एक वापी है।
वापी पै भुजंग त्यों भुजंग पै कपाट है,
कपाट पै कपोत तापै बिम्ब द्युति व्यापी है।
तापै सुक तापै मनि तापै अहिबाल कारे,
तापै अर्ध चन्द्र द्युति सूरज प्रतापी है।
मध्य तें उठयो मृणाल तापै छत्र छाया किये,
रघुराज मेरे दृग याही छवि व्यापी है॥

इनका गीति-साहित्य भी परमोत्तम है। जिस प्रकार गोस्वामी तुलसीदास का साहित्य साहित्य-संगीत से साथ ही समन्वित है उसी प्रकार महाराज रघुराज सिंह का साहिय भी साहित्य संगीत से समन्वित है; क्योंकि ये दोनों महाकवि साहित्य के साथ संगीत के भी आचार्य थे। आप के एक जाज मलार (मलार राग का भेद) गीत का यहां उदाहरण दिया जाता है, जिसमे साहित्य-संगीत दोनों का समावेश है :

झरत झर झर सलिल झकर झोंकना लगी।
सघन घन घुमड़ि घहरत घुछहरति घटा
छमक छवि छिति मिलति मनहुं आनंद पगी।
ललित लहरत ललित उड़त अंचल अमल मनहु
छहरत कुसुम धनु धुआ के रँगी।
वहर वहरत सिखी सुखित सिखननि युत।
करत धुनि मधुर जलधरन सँग मे लसगी।
सखी कोउ मचति कोउ रचति कोउ रचिसि
मति लचति कोउ लंक उर प्रीति की बगवगी।
परम कमनीय सिय पवि सँग झूलत सु फूलत
हृदय हेरि रसि सगबगी।

इसी प्रकार रीवाँ के उक्त तीनो नरेशों की हिन्दी कविता एक से एक बढ़ कर है। स्थानाभाव से परिचय-मात्र दिया गया है।[1]

महाराजा रघुराज सिंह का समय रीति-साहित्य का समय है, पर आप की रचना में रीतिकालीन नायिका भेदादि की गन्ध मात्र नही है। यहाँ तक कि अपने 'रुक्मिणी-परिणय' महाकाव्य में इन्होंने रास-क्रीड़ा भी गोपियो के साथ नही रुक्मिणी के साथ वर्णन किया है। सब मिला कर आप का युद्ध-वर्णन उत्तम है।

—भानुसिंह बघेल

भारतेन्दुयुगीन निबन्धकार : हरिश्चन्द्र शर्मा

हिन्दी साहित्य के इतिहास-ग्रन्थो मे भारतेन्दु के निबन्धकारों में बालकृष्ण भट्ट, प्रतापनाराण मिश्र, प्रेमघन और श्रीनिवासदास आदि के नामो का उल्लेख किया गया है, पर हरिश्चन्द्र शर्मा का नाम किसी इतिहास-ग्रन्थ मे नही आया। प्रेमघन के अनुज हरिश्चन्द्र शर्मा भारतेन्दुयुग के उन निबन्धकारों मे थे जिन्होंने हिन्दी मे ललित-निबन्धों की परम्परा का सूत्रपात किया। इनके निबन्धो का सग्रह 'साहित्य हृदय' नाम से मिलता है। इसके दो भाग हैं जिनमे कुल ३७ निबन्ध हैं। शर्मा जी को प्रसिद्धि प्राप्त नही हुई, इसके दो कारण हो सकते हैं : प्रथम ! जैसे श्री मैथिलीशरण गुप्त के विशाल साहित्यिक व्यक्ति के समक्ष श्री सियारामशरण का साहित्यिक व्यक्तित्व उभर नही सका उसी प्रकार प्रेमघन के विशाल व्यक्तित्व के समक्ष इनका व्यक्तित्व उभर नही सका। द्वितीय कारण. पुस्तक के स्वय प्रकाशित कराने के कारण अधिक प्रचार नही हो सकना है। शर्मा जी मौन साधक थे। वह प्रचार से दूर रहते थे और अपने जीवन के अन्तिम दिनों मे संन्यासी हो गए थे।

भारतेन्दु युग के निबन्धकारों की समस्त विशेषताएँ शर्माजी के निबन्धो मे मिलती हैं। इनके निबन्ध व्यक्तिगत और सामाजिक जीवन के छोटे-छोटे विषयों से सम्बद्ध हैं। निबन्धों मे विषय का तटस्थ एव गभीर विश्लेषण नही हैं। इनमे अत्यन्त आत्मीयता, तल्लीनता एवं मनमौजीपन के साथ विषय को प्रस्तुत किया गया है। सरदार पूर्णसिंह, आचार्य रामचन्द्र शुक्ल और डा० हजारीप्रसाद द्विवेदी के भाव प्रधान ललित-निबन्धो की विशेषताओ के बीज शर्मा जी के निबन्धों मे मिल जाते हैं।

विश्लेषण की सुविधा की दृष्टि से शर्माजी के निबन्धों को पाँच वर्गों मे बाँट सकते हैं : प्रथम वर्ग के अन्तर्गत उनके मनोवृत्ति-प्रधान निबन्ध आयेंगे जिसमे उनके प्रेम, संतोष-

१. खेद है कि इन नरेशों की अधिकांश रचना अप्रकाशित पड़ी है, और जो प्रकाशित है वह भी अब अप्राप्य हो गयी है।—लेखक

क्षमा, आनन्द, धैर्य, दया और बदला निबन्धों को लिया जा सकता है। इन निबन्धों में मनोभावों का गंभीर और सैद्धान्तिक विवेचन नही है । इनमें मनोभावों को व्यक्तिगत, सामाजिक एवं राष्ट्रीय जीवन के व्यावहारिक क्षेत्र में रखकर उनकी व्याख्या की गई है। कही-कही भावो का विश्लेषण आध्यात्मिक दृष्टि से भी किया गया है। इनके निबन्धों में आलंकारिक भाषा का प्रयोग हुआ है, वाक्य लम्बे-लम्बे आए हैं। शर्माजी संस्कृत और अंग्रेजी के उद्भट विद्वान् थे । इसीलिए इनके निबन्धों के बीच-बीच में अंग्रेजी एवं संस्कृत के कवियों एवं विद्वानों के उद्धरण आए हैं। शर्माजी प्रेम नामक निबन्ध में प्रेम की व्याख्या करते हुए लिखते हैं : "प्रेम हृदय की अपूर्व ग्रन्थि, किम्वा ज्वर अथवा मूर्छा वा प्रियतमा एक प्रतिबिम्ब का बन की रूप की शोभा का हृदय में खचित हो जाना है। वा प्रतिदिन जाता है जो फिर त्रिकाल मिटने वाला नही । शैक्सपियर कहता है कि प्रेम सीसे का पर देखते-देखते हृदय दर्पण पर है, उज्वल धुआं है, ठंडी आग है, भला चंगा बीमार है, जागती नीद है, अवश्य ही वह इसका रूप नही जो दिखाई देता है।"

आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ने 'प्रेमघन' के लिए लिखा है कि वे कभी-कभी ऐसे पेचीदे मजबून बाँधते थे कि पाठक एक-एक डेढ़-डेढ़ कालम के लम्बे वाक्य मे उलझा रह जाता था । शुक्ल जी का यह कथन शर्माजी के निबन्धो के लिए भी सही है। इनके निबन्धों में सामासिक पदावली से युक्त, दो-दो पृष्ठों तक के लम्बे वाक्य मिलते हैं।

दूसरे वर्ग में वे निबन्ध आते हैं जिनमें वैयक्तिक परिवेश की व्यंजना है। वस्तु विधायिनी उन्मुक्त कल्पना के साथ-साथ पैनी सौन्दर्यदृष्टि इन निबन्धों की विशेषता है । इनमे अनुप्रासिक पदावली से पूर्ण क्लिष्ट एवं ललित भाषा प्रयुक्त हुई है । इस वर्ग मे हमारीकुटी, हमारा कृत्रिम शैल-गृह, हमारी दिनचर्या, शीतलागंज की जन्माष्टमी तथा हमारी मसहरी आदि निबन्ध आते हैं । इन निबन्धों में निबन्धकार के व्यक्तित्व की स्पष्ट छाप व्यंजित है। हमारी महसरी की आलंकारिक भाषा और अल्पना बाण भट्ट की गद्यशैली की याद दिलाती है—"यह कृत्रिम हालैण्ड की भूमि सी है जिसके बाहर ही (मसा-मक्षिका-समूह) समुद्र की घनी लहरें इसके आवरण बाँध से टकराती हुई विचित्र सुहावने शब्दों को सुनाती पर मजाल नही कि उनकी मौजे भीतर प्रवेश पा सकें, वा यह मानव शरीर का द्वितीय पिञ्जर कवच है वा चञ्चल मन के एकमग्र करने का एक विचित्र योगस्थल है वा अशान्त मे लोक एक कृत्रिम शान्ति स्थली है। . . . . . किसी राजसि के तपोवन की शान्त कुटी है वा किसी प्रतापी छितिपाल का राज्य है ।"

तीसरे वर्ग के अन्तर्गत प्रकृति सम्बन्धी निबन्ध हैं। इनमे प्रकृति के मनोरम सौन्दर्य का काव्यात्मक वर्णन है । फाल्गुन, असाढ़ का प्रारम्भ, ज्येष्ठ, शरद आदि बिनन्ध इसी वर्ग मे आते हैं । इनमें एक ही वस्तु का अनेक रूपों में वर्णन हुआ है । बाणभट्ट का विशेष प्रभाव दिखता है—

अब पूर्वानल सनसनाता गुहियो का चुम्बन करता, मालती को अंकभर भेंटता, मानो

निज प्रियतमाओं से उनकी रहस्य कथा पूंछता, कठोर आम्रवृक्षों से फलदान लेता, साँकरी कुंजों की वीथिकाओं मे मुक्त कण्ठ गाता, पथिकों को लौटने का मंत्र देता, कलहान्तरिताओं के परिताप बढ़ाता सयोगिनियों के सुरत ग्लानि के स्वेद को सुखाता योगियों के प्राणायामायिक क्रिया से संतप्त मस्तिष्क को शीतल करता।.........बड़े वेग से वह चला।"

चौथे वर्ग में कविता, भक्तियोग सन्यास योग, सत्य आदि सैद्धान्तिक निबन्ध आते हैं। इन निबन्धों में विषय वस्तु का गंभीर विश्लेषण नही है। निबन्धकार ने अपने मत की पुष्टि के लिए स्थान-स्थान पर काव्यात्मक भाषा मे पौराणिक आख्यानों को प्रस्तुत किया है। शर्मा जी मानते हैं कि सच्ची कविता मनुष्य के हृदय की ग्रंथिको खोलती है और उस प्रकार का आश्वासन देने मे समर्थ होती है जो और किसी प्रकार सम्भव नही है। उन्होंने काव्य की महत्ता को स्पष्ट करते हुए कहा है: "हमने तो बहुत दिनों से यह सिद्धान्त स्थिर कर लिया है कि जिसको कविता से कुछ आनन्द नही उठता वा जो कमी पवित्र प्रेम के सरोवर में स्नान नही किया है उससे प्रणाम आशीर्वाद के सिवा और कोई सम्बन्ध न रक्खेंगे।"

शर्माजी के पत्नी, लक्ष्मी, जन्मभूमि, पुस्तकों की महिमा लखनऊ आदि निबन्धों को विविध विषय के निबन्ध के वर्ग के अन्तर्गत रखा जा सकता है। इन निबन्धो मे वस्तु की पकड और उसके सश्लिष्ट चित्रण की क्षमता देखी जा सकती है। लखनऊ नामक निबन्ध मे लखनऊ के लोगों की संगीत-प्रियता, दीवानगी, नज़ाकत और शराफत का वर्णन करते हुए विविध मुहल्लों की विशेषताओं, उनके ऐतिहासिक महत्त्व और वर्तमान दुर्गति का चित्र प्रस्तुत किया गया है—"यदि प्रेम मे मूर्छित दीवानो दिलों का मान वा पूजा कही होती तो इसी नगरी में, यदि मनुष्य कही भी बिना दाम कौड़ी के सारे जीवन के लिए गुलामी का पट्टा लिखाते हैं तो लखनऊ मे। मासूकों की जातियाँ लात और डण्डे खाकर भी उनके शरीर के कल्याणार्थ मसजिदों और मन्दिरों मे दोआएँ और मिन्नते मानते हैं तो यही के लोग।......यदि प्रेम पादरी कहीं भी घर पर शिक्षा देता है तो लखनऊ मे। केसरबाग जो अप्सरा सरीखी यवनियों की बिहार स्थली थी, वहाँ एक्का और गाड़ी खड़-खड़ाते हैं। जिन महलों में चन्द्रमुखियों के पूर्ण चन्द्र आनन देख पडते थे वहाँ सुफेद दाढ़ी-वाला कोई कुत्सित मकान का रखवार भृत्य निष्कर्म मक्खी मारता हुआ दिखाई पड़ता है।"

शर्मा जी के निबन्धों की भाषा स्थान-स्थान पर दोष पूर्ण है। तो के स्थान पर तौ तथा अथवा, या, वा के स्थान पर वा का प्रयोग हुआ है। लम्बे-लम्बे वाक्यों में विराम-चिह्नों का समुचित प्रयोग नहीं हुआ है। इनके सभी प्रकार के निबन्धों मे सामाजिक एवं राष्ट्रीय जीवन की गंध मिलती है। वर्णनात्मक और भावात्मक दोनों प्रकार के निबन्ध भावात्मक शैली में लिखे गए हैं। हिन्दी निबन्ध साहित्य के प्रवर्तकों मे शर्माजी का प्रमुख स्थान है। अनजाने ही हिन्दी गद्य साहित्य के इतिहास लेखकों ने इनकी उपेक्षा की है जिसका निराकरण किया जाना चाहिए।

—(डा०) छोटेलाल दीक्षित

भवप्रीत संगीत : मैथिली की नई गीति-विधा

'भवप्रीत संगीत मैथिली-काव्य की नई गीति-विधा' शीर्षक रूप में श्री रमानाथ झा ने साहित्य के अध्येताओं के समक्ष कुछ नवीन समग्री प्रस्तुत की है। श्री झा मैथिली भाषा और साहित्य के मर्मी विद्वान् हैं और एतद् विषयक उनकी साहित्यिक उपलब्धियों से विद्वज्जन परिचित है। प्रस्तुत सामग्री प्रयागस्थ गंगानाथ झा अनुसंधान-संस्थान की शोध पत्रिका के सद्यः प्रकाशित 'महामहोपाध्याय उमेश मिश्र अंक' में समाविष्ट है तथा अपनी अभिनव स्थापना की दृष्टि से विद्वानों का ध्यान आकृष्ट कर सकती हैं।

विद्वान् लेखक ने यह निरूपित किया है कि विद्यापति के समय से ही मिथिला की काव्य-परम्परा मे दो विशिष्ट धाराएं परिलक्षित होती हैं। प्रथम पण्डितों द्वारा निर्मित संस्कृत-काव्य धारा है जिसका उन्नयन राजन्यों एवं सामन्तों के आश्रय में हुआ। दूसरी काव्य-धारा देशी वअना में निर्मित लोक काव्य की है जो आख्यान अथवा गीतकाव्य के रूप मे जनसाधारण के लिए सुलभ रही। संस्कृत कवि जयदेव ने लोककाव्य से प्रेरणा ली और विद्यापति ने अपनी भाषा-रचनाओं से इस प्रेरणा को बलवती बनाया तथा देशी भाषा में रचति अपनी गीत-रचनाओं के माध्यम से अभिनव जयदेव की संज्ञा प्राप्त की। लोकगीत परम्परा की साहित्यिक विधा के रूप में प्रतिष्ठित करने का श्रेय विद्यापति को है। मध्यकालीन मैथिली काव्यधारा मे सौहर, समदाउनि, मलार, लगनी, रास, होरी, चौमासा, बारहमासा की व्यापक छाप स्पष्ट दिखाई देती है। इन लोकगीतों की प्रभावान्विति मे इस काव्यधारा ने लोकप्रियता अर्जित की है।

इस परम्परा का अनुशीलन करते हुए लेखक ने बताया है कि मिथिला में लोकगीतों से साहित्यिक काव्यधारा का प्रभावित होना अब भी समाप्त नही हुआ है। इस संदर्भ मे उन्होंने देवघर के श्री भवप्रीतानन्दजी ओझा की रचनाओं के अनुशीलन पर बल दिया है जिस पर लोकगीतों का व्यापक प्रभाव है। भवप्रीतानन्द की रचनाएं बगला में भी हैं किन्तु उनकी अधिकांश रचनाएं श्री झा के अनुसार मैथिली मे हैं। वस्तुतः उस मैथिली मे जो भागलपुर, मुंगेर एवं संथाल परगना के भूमि भाग मे बोली जाती है। भवप्रीतानन्द राजकीय सम्मान प्राप्त कर चुके हैं किन्तु श्री झा के अनुसार उनकी रचनाएँ बिहार मे उपेक्षित रही हैं क्योंकि उसकी भाषा हिन्दी नहीं है और मैथिली लोग इस तथ्य से अपरिचित से रहे कि मिथिला के पूर्वी छोर पर उनकी भाषा की प्रमुख बोली में क्या रचित हो रहा है। वस्तुतः भवप्रीतानन्द की रचनाएँ देवघर के आसपास ही लोकप्रिय रहीं हैं और उनको वह अपेक्षित सम्मान नही मिला जो उनके काव्य-गुण के कारण मिलना चाहिये था।

भवप्रीतानन्द ने दो प्रकार की काव्य रचनाएँ की हैं—झूमर एवं घेरा। झूमर मानर के साथ तथा घेरा उम्का के साथ गाया जाता है। उनकी रचनाओं का प्रेरणा-स्रोत लोकगीत झूमर एवं घेरा रहा है। किन्तु अपनी गीतमयता एवं देशज अभिव्यक्ति से रचनाएँ

अत्यधिक लोकप्रिय सिद्ध हुई हैं। देवघर के समीपवर्ती क्षेत्र में भक्त कलाकार सामूहिक रूप से इनकी रचनाओ का गायन करते हैं और संगीत की दृष्टि से अभिनव प्रस्तुति करते हैं। भवप्रीत संगीत यहाँ अत्यधिक लोकप्रिय रूप ग्रहण कर चुका है। गीत एवं आख्यान काव्य के रूप मे भवप्रीतानन्द ने सहस्रों झूमर एवं घेरा की रचना की है। रामबनवास एवं रुक्मिणीहरण के प्रसंग को भावात्मक ढंग से प्रस्तुत किया है जो करुणा से आपूरित एवं प्रभावोत्पादक हैं।

भवप्रीतानन्द की रचनाओं की पृष्ठभूमि में लेखक ने झूमर की ऐतिहासिकता पर विचार किया है और विद्यापति द्वारा इस विधा का उल्लेख किया जाना सूचित किया है—

गाबहु है सखि लोरि झूमरि मदन अराधने जाइ ।।

विद्यापति से लगभग एक शताब्दी पूर्व 'रत्नाकर' में कविशेखर ज्योतिरीश्वर ने झूमला अथवा झूमर का उल्लेख किया है। श्री झा के अनुसार मध्य मिथिला मे प्रचलित झूमर की लय पूर्व मे प्रचलित झूमर से भिन्न है और वह भोजपुरी के समान है। उन्होंने सम्भावना व्यक्त की है कि मध्य मिथिला की झूमर पर भोजपुरी का प्रभाव है किन्तु उनकी दृष्टि मे यथार्थ मैथिली लय मिथिला के पूर्व छोर पर सुरक्षित है। यही सामान्य भाषा वैज्ञानिक पृष्ठभूमि मे उन्होंने यह कहने की चेष्टा की है कि मैथिली सभ्यता पूर्व से प्रभावित है पश्चिम से नही। अतः पूर्व प्रचलित मे झूमर की लय मूल मैथिली लय है जिसका अध्ययन अन्वेषण होना चाहिए। मैथिली संगीत जिसका व्यापक प्रसार था, संरक्षण एवं सराहना के अभाव मे मृतप्राय हो रहा है। अत. उसके मूल की सुरक्षा होनी चाहिये। ये गीत कोरस में गाये जाते हैं, "सोलो" मे नही और यह मैथिली संगीत की निजी विशेषता है। उनके सौभाग्यवश भवप्रीतानन्दजी ने उनकी प्राचीन परम्परा को पुनर्जीवित रखा है। यही उन्होने भवप्रीतानन्द की काव्य-रचना उल्लेख करते हुए उन्हें अभिनव विद्यापति कहा है और उनकी काव्य-रचना की बानगी स्वरूप तीन गीतों को प्रस्तुत कर दिया है।

वस्तुतः श्री झा ने यह स्थापनाएँ शीघ्रता में की हैं और उनका दृष्टिकोण पूर्वाग्रह रहित नहीं कहा जा सकता। सम्प्रति उनके विचारों का विश्लेषण यहाँ अपेक्षित है। विद्यापति ने जयदेव की काव्यात्मा को हृदयंगम कर उसे और अधिक लोकप्रिय बनाया था। विद्यापति के संदर्भ में भवप्रीतानन्द ने भी उतनी उपलब्धि की है, यह नहीं कहा जा सकता। विद्वान् लेखक ने तुलना के लोभ में यह भी सोचने की चेष्टा की है कि विद्यापति के व्यक्तित्व में कवि एवं विद्वान् का मणिकांचन संयोग था। उनकी विद्वता और संस्कृत वाङ्मय-पटुता तो सिद्ध थी ही, लोकानुप्राणित उनका काव्य इतना प्रिय था कि सुदूर दिल्ली मे विजातीय लोगों द्वारा उसकी चर्चा हुई। अभिनव विद्यापति भवप्रीतानन्द की रचनाओं की अनुगूंज देवघर में ही सुनाई पड़ती है। मिथिला के शेष भूमिभाग में भी नही पहुँच पाई है।

अब रही झूमर गीत की लोक परम्परा, ऐतिहासिकता आदि पर विचार की बात, तो

इस संदर्भ में इतना ही कहना श्रेयस्कर है कि लोक गीतों के उत्स, प्रचार प्रसार के रूप में कोई सीमा-रेखा खीचना असंगत है। लोकवार्ता विशेषज्ञों का कथन है कि लोक-गीत लोक के लिए लोक के द्वारा निर्मित नैसर्गिक कविता है। लोक की सीमा इन गीतों के संदर्भ में बहुत व्यापक रही है। एक लोरकी लोकगाथा है जो उत्तर भारत में छत्तीसगढ़ से लेकर मिथिला तक अनेक रूपों मे प्रचलित रही है। कही वह लोरकी है, कही चनैनी। यही तथ्य अनेक लोकगाथाओं के संदर्भ में प्रस्तुत किया जा सकता है। लोरकी का उल्लेख वर्णरत्नाकरकार ज्योतिरीश्वर ने भी किया है। फिर झूमर के लिये ही यह आग्रह क्यों कि मैथिली संगीत में उसका अलग रूप और उत्स है? लोकगीतों में देश, काल के अनुसार परिवर्तनशीलता आती रही है और उन पर किसी की समीपवर्ती दूसरे भूमिभाग की छाप हो सकती है। फिर झूमर तो इतना लोकप्रिय गीत रहा है कि अनेक संदर्भ में उसकी चर्चा सुलभ हो जाती है। अवधी सूफी प्रेमकाव्य निर्माता मलिक मुहम्मद जायसी ने झूमर के एक विशिष्ट रूप 'मनोराझूमका' का उल्लेख किया है—

चहइ मनोरा झूमक होई। फर अउ फूल लिहै सब कोई ॥

संगीत के मार्च १९७० के अंक में 'मनोरा झूमक' का एक उदाहरण प्रस्तुत किया गया है--

फागुन जाड़ गुलाबी पिया मोके अंगिया सियाउ,
मनोरा झूमका ॥

भोजपुरी लोकगीतो की दृष्टि से अत्यंत समृद्ध है। झूमर मे भोजपुरी लोकगीतों का प्राण स्पन्दित है, उसकी शृंगारमयी भाषाभिव्यक्ति से एक मनोरम वातावरण की सृष्टि का उद्दाम रूप निःसृत होता है। भक्ति भावना का पक्ष अत्यत ही गोढा है—

पटना सहरिया से सोना मंगवले
देख यार नथिया गढ़ावे हरि अपने ।
देख यार नथिया गढ़ावें हरि अपने ॥
नथिया पहिरि हम सुतली ओसरा ।
देख यार चोरी करेलें हरि अपने ।
देख यार चोरी करेलें हरि अपने।
चोर चोर कहि हम हरि के पकड़ लीं।
देख यार पइयाँ परेले हरि अपने ।
देख यार पइयाँ परेले हरि अपने ।

झूमर की प्रथम पंक्ति को चौताल के समान माना जाता है। अन्तर इतना है कि इसमें अन्तरा अधिक लम्बा रहता है, शेष प्रक्रिया चौताल की तरह होती है।

वस्तुस्थिति तो यह है कि झूमर अधिक समय से लोकप्रिय संगीत रहा है और उसकी संगीतमयता से आकृष्ट होकर शास्त्रीय संगीत की चर्चा के संदर्भ में भी उसका उल्लेख हुआ है, स्वत: मिथिला की संगीत परम्परा में शुभंकर ठाकुर ने 'संगीत दामोदर' में झूमर का लक्षण निरूपण करते हुए उसकी शृंगारिकता का उल्लेख किया है :

> प्रायः शृंगार बहुलामाध्वीकमधुरा मृदुः
> एकैव झुमरिलोके वर्णादि नियमोज्झिता ॥
> अतो लक्षणमेतस्या नोवाहारि विशेषतः ॥

वस्तुत: उपर्युक्त विवेचन से यह सिद्ध होता है कि झूमर लोकगीत मिथिला में पूर्व से ही लोकप्रिय रहा। लोकगीतों की रागात्मकता, आकर्षण शैली एवं प्रभावोत्पादन क्षमता को देखकर शिष्ट साहित्य के निर्माताओं ने सर्वदा उससे प्रेरणा ली है। भवप्रीतानन्द की प्रेरणा भी इसी कोटि की है। उनकी उद्धृत रचनाओ से प्रतीत होता है कि वह एक भजनीक हैं और झूमर गीत में उन्होंने अपने भजनों को जनव्यापी बनाने की चेष्टा की है, जिसमें मिथिला की झूमर लय का अवशेष न होकर लोकव्यापी झूमर का अवशेष है। भवप्रीतानन्द की प्रतिभा के प्रति अपनी हार्दिक सद्भावना व्यक्त करते हुए यह कहने मे कोई संकोच नही प्रतीत होता कि काव्य उत्कर्ष की दृष्टि से उनकी रचनाओं से अभी बहुत कुछ अपेक्षा है। वह विदग्ध हृदय एक भक्त हैं जो अपने भक्तों के लिए गेयय पदों की रचना करते हैं। कविता-रचना उनका मूल उद्देश्य नहीं, हरिभक्ति का ललित पदो मे विस्तार ही उनका अभिप्रेत है। इस टिप्पणी के अनन्तर भी मेरी विनम्र सम्मति मे भवप्रीतानन्द को एक नवीन सगीत-विधा के उन्नायक रूप मे स्मरण करना श्रेयस्कर होगा। जहाँ तक भाषा का प्रश्न है उनकी समस्त रचनाओ की उपलब्धि के अभाव मे कुछ कहना ठीक न होगा। यद्यपि श्री झा द्वारा उद्धृत रचनाओ मे उनकी भाषा की कृत्रिमता की और किसी भी व्यक्ति का ध्यान सहज ही आकृष्ट होगा। साहित्यक्षेत्र में पूर्व और पश्चिम की प्राचीर खड़ा करना श्रेयस्कर नहीं। साहित्य के अध्येताओं से यह बात छिपी नही है कि ब्रजभाषा ब्रजबुली के रूप में बंगाल, आसाम, उत्कल तक व्यापक रही। अत. मिथिला के झूमरों पर भोजपुरी झूमरों का प्रभाव नही हो सकता, यह कहना ठीक नही। मध्य मिथिला मे प्रचलित मैथिली झूमरों पर भोजपुरी का प्रभाव वह स्वत: स्वीकार करते हैं। तथाकथित पूर्वी मैथिली झूमर का जो भेद वह निरूपित करते हैं वह देश, काल और पात्र के संदर्भ में उत्पन्न यत्किंचित परिवर्तित रूप ही है जिसके लिए कोई जड़ता मूलक आग्रह नही किया जा सकता।

—श्रीमन्नारायण द्विवेदी, एम० ए०

लल्लूलाल और उनका 'प्रेमसागर'

आधुनिक खड़ीबोली गद्य-साहित्य के प्रवर्तकों में लल्लूलाल का नाम अग्रगण्य है। उनका जन्म आगरा के एक गुजराती ब्राह्मण परिवार में सन् १७६३ ई० में हुआ था। कुछ विद्वानों के अनुसार लल्लूलाल का वास्तविक नाम लल्लूजी 'लाल कवि' था।

लल्लूलाल हिन्दी तथा संस्कृत आदि के अतिरिक्त उर्दू आदि भाषाओं के ज्ञाता भी थे। अपने जीवनकाल में उन्होंने अपनी अनेक रचनाएं साहित्य-जगत् को प्रदान की जिनमें 'सिंहासन बत्तीसी', 'शकुन्तला नाटक', 'माधोनल', 'बैताल पच्चीसी' तथा 'प्रेमसागर' आदि का नाम उल्लेखनीय है।

लल्लूलाल से पूर्व खड़ीबोली गद्य की अनेक रचनाएं लिखी जा चुकी थी परन्तु उनमे से कोई भी तत्कालीन अंग्रेज व्यापारियों की शिक्षा के योग्य सिद्ध न हो सकी। खड़ीबोली गद्य से इस अभाव को दूर करने की दृष्टि से लल्लूलाल ने अपनी 'प्रेमसागर' नामक रचना प्रस्तुत की जिससे सर्वसाधारण का उपकार तो हुआ ही साथ ही यह खड़ीबोली गद्य साहित्य की शृंखला की एक कड़ी के रूप मे भी सिद्ध हुई। 'प्रेमसागर' की रचना वस्तुतः भागवत के दशमस्कंध के ब्रजभाषा मे किए गए अनुवाद का सार लेकर की गई है। यह इसके निम्न-लिखित उद्धरण से स्पष्ट होता है—'एक समे व्यासदेवकृत श्रीमत भागवत के दशमस्कंध की कथा को चतुर्भुज मिश्र ने दोहे चौपाई में ब्रजभाषा किया, तो पाठशाला के लिये..... संवत् १८३० में श्री लल्लूलाल कवि ब्राह्मण गुजराती सहस्र अवदीच आगरे वाले ने विसका सार ले, यामनी भषा छोड़, दिल्ली आगरे की खडी बोली में कह, नाम प्रेमसागर धरा—उसी कवि ने संवत् १८६६ में पूरा कर छपवाया पाठशाला के विद्यार्थियो के पढ़ने को' (प्रेमसागर, हिन्दुस्तानी प्रेस, १८२५ ई०, पृ० १,२)

उक्त उद्धरण से यह भी स्पष्ट होता है कि यह विशुद्ध खडीबोली मे लिखी गई रचना है। विशुद्ध खड़ीबोली मे लिखे जाने पर भी यत्रतत्र अरबी, फ़ारसी, तुर्की तथा अंग्रेजी आदि विदेशी भाषाओं के शब्द पर्याप्त संख्या में उपलब्ध होते हैं। यहाँ अरबी फारसी आदि के 'बला', 'गुलाब', 'बैरख', 'सामान' तथा अंग्रेजी के 'लागवरनर जनरल', 'लार्ड' आदि शब्द उदाहरण स्वरूप हैं। विदेशी शब्दों के अतिरिक्त ब्रजभाषा के शब्द पर्याप्त संख्या में प्रयुक्त किए गये हैं, यथा 'बैर', 'बासन', 'सुरत', 'पठाना', 'तिससे', 'तिनके,' 'बुझाना', 'यमना' आदि। स्पष्ट है कि इन विभिन्न भाषाओं तथा बोलियों के शब्द तत्कालीन जनता में नित्यप्रति बोलचाल की खड़ीबोली में प्रयुक्त हो रहे थे जिनसे लल्लूलाल अपने को सर्वथा विलग न रख सके। इसके अतिरिक्त लल्लूलाल का स्वयं ब्रजभाषा क्षेत्र का निवासी होने एवं ब्रजभाषा के ग्रन्थ से अनुवाद करने के कारण उसकी शब्दावली एवं व्याकरणिक प्रवृत्तियों का प्रभाव उनकी रचनाओं में आना स्वाभाविक ही था। वास्तव में प्रत्येक विकासोन्मुख भाषा अपनी समकालीन देशी तथा विदेशी भाषाओं के तत्वों को किसी न किसी रूप

में अवश्य ग्रहण करती है। यह भाषा का प्राकृतिक नियम है। यहाँ यह उल्लेखनीय है कि उक्त विभिन्न भाषाओं तथा बोलियों के शब्द कही तो इस प्रकार ढाल लिए गए हैं कि खड़ी बोली की उच्चारण प्रकृति तथा व्याकरण के अनुसार उनका पूर्ण सामंजस्य स्थापित हो गया है तो कहीं मूल भाषा से ज्यो के त्यौं उद्धृत किए गए हैं। इस प्रकार 'प्रेमसागर' में भाषागत वैचित्र्य के उदाहरण के स्थल-स्थल दृष्टिगत होते हैं।

'प्रेमसागर' मे प्राप्त होने वाली भाषागत अन्य विशेषताओं को इस प्रकार देखा जा सकता है:—आधुनिक साहित्यिक खड़ीबोली की तुलना मे 'प्रेमसागर' की खड़ीबोली पर्याप्त ध्वनि-अन्तर रखती है। यह अन्तर शब्द की आदि, मध्य तथा अन्त तीनों स्थितियों में ध्वनि-परिवर्तन, ध्वनि-लोप और ध्वनि-आगम के रूप में द्रष्टव्य है यथा :

ध्वनि परिवर्तन :—'ण' के स्थान पर 'न' तथा 'य' 'व', 'श' के स्थान पर क्रमशः 'ज', 'ब', 'स' की प्रवृत्ति मिलती है। उदाहरणार्थ— ण < न, छण—छन, पुराण < पुरान। य < ज यशोदा—जसोदा, योग < जोग। व—ब व्याकुल < ब्याकुल, विधि—बिधि। श < स श्यामता—स्यामता आदि।

ध्वनि-लोप :—ध्वनि-लोप की प्रवृत्ति 'प्रेमसागर' मे बहुलता से प्राप्त होती है। उदाहरणार्थ—और—औ, मनुष्य—मनुष, सत्य—सत, निश्चित—निचित।

ध्वनि-आगम:—ध्वनि-आगम मे 'अ' स्वरभक्ति के कारण व्यंजन की सयुक्तता को समाप्त कर दिया गया है। उदाहरणार्थ—लग्न—लगन, मग्न—मगन आदि।

'प्रेमसागर' मे प्राप्त होनेवाले शब्द गठन की दृष्टि से रूढ़ तथा यौगिक दोनों प्रकार के हैं। यौगिक शब्दो की रचना मे प्रत्यय तथा समास प्रक्रिया प्रमुख है। अनेक प्रत्ययो का प्रयोग उनके परपरागत अर्थ मे किया गया है तो कही उनके विशिष्ट प्रयोग व विशिष्ट अर्थ प्राप्त होते हैं। यह प्रेमसागर की प्रमुख विशेषता है। उदाहरणार्थ—अ+जीत—अजीत। अन+खाना—अनखाना। अन+रस—अनरस। क्रोध+वान—क्रोधवान। माथुर—मथुर+नी—मथुरनी आदि।

रूप रचना मे प्राचीन खड़ीबोली तथा ब्रजभाषा दोनो की प्रवृत्तियाँ प्राप्त होती हैं। तत्कालीन खड़ीबोली की रूपरचना की प्रवृत्ति संज्ञा पदो में प्रधान है। ऐसी अवस्था में पुल्लिग आकारान्त सज्ञा पदो के बहुवचन रूपों मे विभक्ति प्रत्यय—'ओं' से पूर्व शब्द के अन्तिम स्वर—'आ' का लोप कर दिया गया है। इस प्रकार उनकी रूपरचना अकारान्त संज्ञा पदों के समान की गई है। आकारान्त रूपों मे यह प्रवृत्ति 'प्रेमसागर' में अत्यन्त सबल है उदाहरणार्थ :—राजा—ओं—राजों। आत्मा—ओ—आत्मो आदि।

यत्र-तत्र इसकी विपरीत प्रवृत्ति भी दृष्टिगत होती है, जहाँ शब्द के अन्त को आ स्वर का लोप नही किया गया है। मूलप्रकृति मे प्रत्यय का विधान किया गया है। स्त्रीलिंग संज्ञा पदों में यह प्रवृत्ति प्रधान है उदाहरणार्थ— बछिया—ओं—बछियाओं आदि।

संज्ञा-पद रचना में वर्त्तमान खड़ीबोली की रूप-रचना की प्रवृत्ति भी यत्र-तत्र प्राप्त

होती है। ऐसी अवस्था में अकारान्त पुंल्लिग संज्ञापदों में विभक्ति प्रत्यय से पूर्व शब्द के अन्तिम स्वर आ का लोप कर दिया गया है। उदाहरणार्थ—लड़क्—ओं—लड़कों

अकारान्त संज्ञा पदों में मूलप्रकृति ज्यों की त्यों रहती है, यथा—ग्वाल—ओं—ग्वालों। बाल—ओं—बालों आदि।

भाषागत अपवाद के उदाहरण इन रूपों में भी कम नहीं कहे जा सकते। यहाँ अकारान्त पुल्लिगसंज्ञा पदों में विभक्ति प्रत्ययों से पूर्व आ स्वर का आगम कर दिया गया है। इस प्रकार इनकी रूपरचना आकारान्त स्त्रीलिंग संज्ञापदों के समान की गई है। उदाहरणार्थ—पुरुष–आ—ओं—पुरुषाओं।

'प्रेमसागर' में प्राप्त होनेवाले सर्वनामपद खड़ीबोली तथा ब्रजभाषा दोनों के हैं। निश्चयवाचक, दूरवर्ती सर्वनामों के विकारी कारकों के बहुवचन एवं सम्बन्ध कारक के बहुवचन रूप ब्रजभाषा के हैं। उदाहरणार्थ—तिससे : तिससे उसका मर्म नही पहचाना। तिनके : तिनके पीछे मूसल हाथ लिये आदि।

ब्रजभाषा का प्रभाव क्रियापद रचना में अपेक्षाकृत अधिक है। खड़ीबोली की सहायक क्रिया के भूतकालिक रूप 'हुआ' के साथ-साथ ब्रजभाषा के 'भया, 'भई' आदि रूप रखे गए हैं। उदाहरणार्थ—भए : खेलते-खेलते प्यासे भए। भई : तहाँ आकाशबानी भई आदि।

पूर्वकालिक कृदन्त पद-रचना में खड़ीबोली तथा ब्रजभाषा दोनों की प्रवृत्तियाँ मिलती हैं। खड़ीबोली के अनुसार मूल धातु मे 'के', 'कर' प्रत्ययों का योग किया गया है। उदाहरणार्थ—के : निकट बुला के पूछो। कर : अपना बखान कर आदि।

ब्रजभाषा के प्रत्यय 'आय' का प्रयोग इसके साथ-साथ मिलता है। उदाहरणार्थ—आय—हाय हायकर पछताय-पछताय बिन रोये न रहा। आय कर के : झुंझलाय कर कहा, समझाय के कहो, आदि।

नामधातुओं की रचना में प्राचीन खड़ीबोली तथा ब्रजभाषा की प्रत्ययात्मक प्रवृत्ति की प्रधानता के कारण 'संकल्पी', 'जन्मी' जैसे रूप स्थान स्थान पर प्रयुक्त किए गए हैं।

अव्यय-पदों मे भी ब्रजभाषा के रूप मिलते हैं यथा, ज्यों', 'क्यों', 'औ' आदि।

ब्रजभाषा-काव्य की तुकान्तता का प्रभाव प्रेमसागर की वाक्य-रचना में दृष्टिगत होता है। फलस्वरूप गद्य में काव्य का आभास होना 'प्रेमसागर' की मुख्य विशेषताओं में से एक है। उदाहरणार्थ—

'कलियुग में राजा उपजे हैं अभिमानी, धन के मद से अंधे हो भये हैं दुखदानी, अब मैं उसको दू हूं श्राप, वही भोग पावेगा आप।'

इनके गद्य में पद्यात्मकता का आभास होने के सम्बन्ध में यह उक्ति उचित है कि विलायती कवि जर्मी टेलर के लेखों के समान उनका गद्य भी प्रायः पद्यमय हो जाया करता है।

वर्तमान खड़ीबोली की तुलना में भाषागत शैथिल्य वाक्य-रचना में भी प्राप्त होता है।

उनमें सम्बद्धता का अभाव है। अनेक स्थानों पर प्राचीन अप्रचलित प्रयोग प्राप्त होते हैं। उदाहरणार्थ 'बिलग मानना', 'बिलोवन बैठीं', 'बिनका पुकारना किसू ने न सुना', 'इसी समय जताया चाहिये' आदि।

रोमन लिपि के प्रभाव से पूर्ण विराम के लिए खड़ीपाई के स्थान पर बिन्दु और वृत्त का प्रयोग प्रेमसागर मे प्राप्त होता है।

भाषागत उक्त विश्लेषण के आधार पर यह स्पष्ट होता है कि 'प्रेमसागर' विशुद्ध खड़ीबोली की रचना नही है वरन् इसे ब्रजभाषा-मिश्रित खड़ीबोली की रचना कहना अधिक युक्ति संगत है। वर्तमान साहित्यक खडीबोली की तुलना मे 'प्रेमसागर' की खड़ी बोली अपनी इसी विशेषता के कारण भिन्न हो गई है। भाषागत विविधता रहने पर भी हिन्दी भाषा तथा गद्य साहित्य के विकास मे 'प्रेमसागर' का महत्वपूर्ण योगदान है। (प्रस्तुत लेख मे उद्धरण हिन्दुस्तानी प्रेस से प्रकाशित प्रेमसागर से लिए गए हैं।)

—(डा०) कुमारी उषा माथुर

पूर्वोत्तरी राजस्थानी में प्रचलित रिश्तों की शब्दावली

राजस्थानी उपभाषा के अन्तर्गत करीब ७३ बोलियाँ हैं।[१] इनके वक्ताओं की संख्या करीब दो करोड हैं।[२] डॉ० ग्रियर्सन ने इन बोलियों को मारवाड़ी, मध्यपूर्वीय, पूर्वोत्तरी, मालवी, निमाडी, लमानी, गूजरी तथा अनिर्दिष्ट वर्गों मे विभक्त किया है।[३] १९२१ ई० मे पूर्वोत्तरी राजस्थानी के वक्ताओ की सख्या १५७००९९ थी।[४] "डॉ० धीरेन्द्र वर्मा १६ लाख[५] एव डॉ० उदयनारायण तिवाडी १५ लाख मानते हैं।[६] पूर्वोत्तरी राजस्थानी की मेवाती एव अहीरखाटी प्रधान बोलियाँ हैं। इनके अतिरिक्त अनेक उपबोलियाँ हैं। पूर्वोत्तरी राजस्थानी का क्षेत्र राजस्थान मे जिला अलवर एव जिला भरतपुर का पश्चिमी भाग, जिला जयपुर की तहसील कोटपूतली, हरियाणा मे जिला गुडगाँव का दक्षिण-पश्चिमी भाग एव जिला महेन्द्रगढ़ तक विस्तृत है। पूर्वोत्तरी राजस्थानी पश्चिमी हिन्दी एवं पश्चिमी राजस्थानी के मध्य संधिस्थल की भाषा का काम करती है। यहाँ मेव (स० मेद) एव अहीर (सं० अभीर) जातियों के लोगों का बाहुल्य है। मेवाती का अपना साहित्य भी है, परन्तु वह अभी प्रकाश में

१. लिंग्विस्टिक सर्वे ऑव इंडिया, ग्रियर्सन, परिशिष्ट १.
२. राजस्थानी भाषा और साहित्य, मोतीलाल मेनारिया, पृ० २.
३. भारत का भाषा-सर्वेक्षण, भाग १, खण्ड १, पृ० ३१६
४. वही पृ० ३१६
५. हिन्दी भाषा का इतिहास, पृ० ६७.
६. हिन्दी भाषा का उद्गम और विकास, पृ० १८१

नहीं आया है।[1] इसकी अनेक उपबोलियाँ भी हैं जिनमें अपार शब्द-भण्डार भरा पड़ा है।[2] अहीरवाटी (आभीर पट्टी) में यद्यपि साहित्य का अभाव है, परन्तु भाषा-वैज्ञानिक दृष्टि से इसका अपना महत्व है।[3] खेद है कि अभी तक मेवाती[4] एवं अहीरवाटी—बोलियों पर विद्वानों का पूर्ण ध्यान नहीं गया है। इन शब्दावली का भाषाशास्त्रीय अध्ययन अपेक्षित है। आज राष्ट्रभाषा हिन्दी को सभी प्रकार की अभिव्यक्ति को सशक्त एवं प्रभावशाली साधन बनाने के लिए प्रादेशिक एवं आंचलिक भाषा एवं बोलियों के सहयोग की आवश्यकता है। अब आंचलिक साहित्य भी बहुत प्रकाश में आने लगा है। उन्हें समझने के लिए भी इन बोलियों की शब्दावली का ज्ञान होना आवश्यक है। इसी उद्देश्य को ध्यान में रखते हुए हम यहाँ पूर्वोत्तरी राजस्थानी में प्रचलित रिश्तों-सबंधी शब्दावली प्रस्तुत करते हैं।

सर्व प्रथम 'पितामह' शब्द को लेते हैं। पूर्वोत्तरी राजस्थानी मे इसके लिए 'बाबो'[5] या 'दादो' शब्द का प्रयोग होता है। बाबा के पिता के लिए 'पड' उपसर्ग लगा कर 'पडदादो' एव पडदादा के पिता के लिए 'सड' उपसर्ग लगा कर 'सड़दादो' शब्दो का प्रयोग किया जाता है। हिन्दी के प्रभाव से आजकल शिक्षित वर्ग में 'दादाजी' या 'बाबा जी' शब्दों का भी प्रयोग होने लगा है। पिता की माता के लिए 'दादी'[6] या 'बूढी मा' कहा जाता है। पिता की दादी के लिए क्रमशः 'पड' और 'सड' उपसर्गों का प्रयोग कर 'पडदादी' तथा 'सडदादी' कहा जाता है। पौत्र के लिए 'पोतो' (स० पौत्र-पोत्तो-पोतो) एवं पौत्री के लिए 'पोती' (सं० पौत्री पोत्ती पोती) शब्द प्रचलित हैं। माता के पिता के लिए 'नानो' एवं माता के दादा के लिए 'पडनानो' एवं 'सड़नानो' शब्द प्रचलित हैं। माता की माता के लिए 'नानी' एवं माता की दादी के लिए 'पड नानी' एव 'सड़नानी) शब्दों का प्रचलन है। पुत्री के पुत्र को 'दोयता (दुहितापुत्र) एवं पुत्री की पुत्री के लिए 'दोयती' (सं० दुहिता पुत्री) शब्द प्रयुक्त होते हैं। 'दोयता' एवं 'दोयती' के पुत्र एवं पुत्री के लिए क्रमशः 'पड़ या सड़दोयता' एवं 'पड़ या सड़ दोयती' कहा जाता है।

---

१. मरुभारती, पिलानी, वर्ष १५, अंक २, जुलाई '६७, प्रस्तुत लेखक का लेख।

२. 'विनय', अलवर, ६८–६९, प्रस्तुत लेखक का लेख—'अलवर जिले की बोलियाँ'।

३. मरुभारती, पिलानी, वर्ष १६, अंक २, अप्रैल ६८, प्रस्तुत लेखक का लेख—'अहीरवाटी बोली : एक सर्वेक्षण।

४. प्रस्तुत लेखक 'मेवाती के उद्गम और विकास' पर शोध प्रबन्ध लिख रहा है।

५. 'खाटू में बाबो स्याम बड़ो दातार' —लोकगीत (लेखक के संग्रह से)

६. 'काणी दादी बाय बालिख, के आरै पोता तूनें बही को बही दूयूं।—कहावत

पिता को 'काको'[1] या 'बाप'[2] कहा जाता है। लोकगीतों में 'बाबल'[3] शब्द का भी प्रयोग किया जाता है। पिता के छोटे भाई को भी 'काको' या 'चाचो' कहा जाता है। कुमायुनी, बंगला, मराठी, गुजराती, मारवाडी आदि भाषाओं में भी 'काका' शब्द का प्रचलन है।[4] पिता के बड़े भाई को 'ताऊ'[5] या 'बाबो'[6] कहा जाता है। माता के लिए 'मा', 'माई' (सं० मातृ माइ मा), 'मायड'[7] 'कहा जाता है। चाचा की पत्नी के लिए 'काकी, या 'चाची' शब्द प्रयुक्त होते हैं। ताऊ की पत्नी को 'ताई' कहते हैं। पिता की बहन को फूफी या 'भूवा' तथा भूवा के पति को 'फूफो' कहा जाता है। भाई को वीर, भाई, बीरो, शब्दों का प्रचलन है। बड़े भाई की पत्नी को 'मामी' या 'भौजाई' (स० मातृजाया) कहते हैं। बहन (बडी एवं छोटी) को 'भाण' या 'जीजी' कहा जाता है। बहन के पति को 'जीजो'[8] या 'बहणेऊ' कहते हैं। बहन के पुत्र को 'भाणजा' (बहनजआ) एवं पुत्री को 'भाणजी'[9] (बहनजई) कहा जाता है। बहन के श्वसुर को 'मोसा जी' एवं सास को 'मौसी जी'[10] कहते हैं। माता की बहन के पति को भी 'मोसाजी' एवं बहन को' मोसीजी' कहने का प्रचलन है।

पुत्र को 'बेटो', 'छोरो' या 'पूत'[11] कहा जाता है। पुत्री को 'बेटी' या 'छोरी'[12] कहते हैं। सद्य: प्रसूत बच्चे को 'होलर'[13] (पुलिंग) कहा जाता है। साथ ही

---

१. चंचल घोड़ी चालनी मथुरा सूं आई।
   ले मेरे काका मोल की तेरी होय बड़ाई। (लोक-गीत लेखक के संग्रह से)
२. 'सील सपूती बूढ़ सुहागण हो, तेरा बाप भाई जीवता रहो . . . .।'--वृद्धाओं की बहुओं को आशीष
३. आयो बाबल पछवा को मेह, लड़ी लड़ी भीजूं बड़तलै।
   हूंनी बरसियो रे मेह, जहां मेरा बाबल को हर चलें। (मेवाती लोक-गीत, लेखक-संग्रह से)
४. भाषा (त्रैमा०), दिल्ली, जून १९६५, वर्ष ४, अंक ४, पृ० ९३
५. 'ताऊ लम्बड़दार मेरा घर की लम्बड़दारी रे।
६. प्रस्तुत लेखक इसीखबोली क्षेत्र का निवासी है। इनके पड़ोस में ही बच्चे 'ताऊ' को 'बाबो' कहते हैं।
७. आ मेरी मायड़ देख ले, बालो भोली बैठ्यो उबटणें'—लोकगीत
८. जीजा राम राम हो, जीजा फेर मिलाला हो।—लोकगीत
९. 'सात मामा की भाणजी सदा भूकी''—कहावत
१०. ये लो मोसा कोथली, म्हारी भाण संवाई।
    सावण होलरेंयो सावण बीड़ै क दूर।—लोकगीत
११. ये लो मौसी कोथली, म्हारी भाण संवाई।—लोकगीत
१२. पूत का पक पालणैई दीखै। —कहावत
१३. 'होलर की मा लाडू खाय, आडो बुरी बलाय।' —लोकगीत

'लालो'[1] भी कहते हैं। कन्या को 'लाली', 'कन्या' या 'भाट'[2] कहा जाता है। सामान्यतः बच्चों को 'टाबर'[3] कहने का प्रचलन है। जब तक बच्चा किशोर नही हो जाता तब तक अधूरे या आधे नाम से ही सम्बोधित किया जाता है।

पति के दादा के लिए 'दादसरो' (दादा श्वसुर), पति की दादी के लिए 'दादस' (दादी सास), पति के ताऊ के लिए 'तायसरो' तथा पति की ताई के लिए 'तायस', पति के चाचा के लिए 'काकसरो' तथा पति की चाची के लिए 'काकस' या 'पीतस' शब्दों का प्रयोग होता है। पति के पिता के लिए 'सुसरो' (श्वसुर) तथा पति की माता के लिए 'सासु'[4] 'सासड़' पति के नाना के लिए 'नानसरो' तथा नानी के लिए 'नानस' पति के मामा के लिए 'मामसरो' तथा पति की मामी के लिए 'मामस' शब्द प्रचलित हैं। पति के बड़े भा को 'जेठ'[5] (सं० ज्येष्ठ—जेट्ठ—जेठ) तथा छोटे भाई को 'देवर'[6] (सं० देवृ) या 'स्याणो' कहा जाता है। पति के बड़े भाई की पत्नी को 'जिठाणी'[7] तथा देवर की पत्नी को 'द्योराणी' '(देवरानी) कहा जाता है। पति की बहन को 'नणद'[8] 'नदी' या 'नणदी'[9] कहते हैं। ननद के पति को 'नणदेऊ' कहने का प्रचलन है। पत्नी की माता को 'सास'[10] एवं पत्नी के पिता को 'सुसरो' पत्नी के भाई को 'सालो'[11] एवं साले की पत्नी को 'सालाहेली' कहा जाता है। पत्नी की बहन को 'साली' एवं साली के पति को 'साढ़ू' कहने का प्रचलन है। माता के भाई को 'मामो' तथा मामा की पत्नी को 'मामी' कहने की प्रथा है। मामा के पुत्र को 'भाई' एवं पुत्री को 'जीजी' या 'भाण' कहा जाता है। पुत्री के पति को

---

१. सोजा लाला सोजा तेरी मा गई सै पाणी नैं,
ल्यावैगी गुड़धाणी, तूनैं देना मूनैं देना, आपई कुटकावैगी।
तेरे देगी चट्टू को मेरे देगी मूसल की।—लोकगीत (लोरी)

२. प्रायः पुत्री का जन्म अच्छा नहीं माना जाता। अतः उसे 'भाट' (पत्थर) कहा जाता है।

३. 'टाबरा को के हाल सैं (बच्चों का क्या हाल है)।

४. गैरगड़ी ये गैर गडी, सासु छोटी बहू बड़ी।—लोकगीत

५. 'जेठ का हात मैं फावली फलको सी लावया ई करैं सै।'—कहावत

६. काहे धूं देवर मोसू होय न्यालो'। —लोकगीत

७. दिल्ली आयो तबाक ले तो आयो, जिठाणी कुमला पैं लड़ी।'—लोकगीत

८. 'नणकूआ मैं पड़गी, जाणैं नणद नैं देदई धी'।—कहावत

९. 'मेरी नणदी का बीरा परवत मैं मोरा नाच रो।
देख तो चलूंगी या को नाच, तनक डोलो डालियो।—लोकगीत

१०. 'कबमरी सासु कब आया आंसु'।—कहावत

११. 'गुड़ सैं गंडेरी मीठी, गंडेरी सैं रालो।
भाई सैं भतीजो प्यारो, सब तैं प्यारी सालो।।—लोकगीत

'गंवाई'[1] कहते हैं। छोटे भाई की पत्नी, पुत्रवधू, पौत्रवधू, दोयला वधू को 'बहू' (वधू) या 'बहोड़िया' कहा जाता है। पति के लिए 'नणदी का बीरा', 'मर्द', 'घरवाली', 'आदमी', 'खसम', पिया'[2] बलम,[3] ढोलो[4] या कोई विशेषण प्रयुक्त होता है। पत्नी के लिए 'बीर',[5] 'रांड'[6] 'बेरबानी', औरत, या किसी बच्चे की माँ कह कर सम्बोधित किया जाता है।

पुरुष को दूसरी पत्नी लाने पर दोनो स्त्रियाँ प्राय. 'सौक'[7] (सपत्नी) कहलाती हैं। बाद मे आने वाली को 'घरवासो' की हुई भी कहते हैं। दूल्हेको 'नौसा'[8] तथा दुल्हन को 'नौसी' कहते हैं। पिता के घर को पीर (पितृगृह < पीहर < पीर) तथा श्वसुर के घर को 'सासरो' (श्वसुरालय < ससुराल < सासरो) कहा जाता है। कही-कही ससुराल को 'सु ।राड़' भी कहते हैं। परिवार को 'कुणणो' (स० कुटुम्ब) कहते हैं। 'विधवा' को 'राड' या 'बेवा' तथा विधुर को 'रडवा' कहा जाता है।

इस प्रकार पूर्वोत्तरी राजस्थानी के कतिपय रिश्ते-सबधी शब्दावली यहाँ दी गई है। उपर्युक्त शब्दावली मे अनेक तत्सम, तद्भव एव देशज शब्द हैं। कुछ शब्द सीमा भाषाओं—जैसे शेखावटी, जयपुरी, ब्रज एवं हरियाणवी—मे भी प्रचलित हैं। यदि इन शब्दो का तुलनात्मक अध्ययन किया जाये तो राष्ट्रभाषा का शब्द-कोष अधिक बढ़ेगा, ऐसी मेरी मान्यता है।

—महावीर प्रसाद शर्मा, एम० ए०

आचार्य बोधायन

आचार्य बोधायन शकर के पूर्वकालिक हैं तथा आपका नाम ब्रह्मसूत्र पर टीका लिखने वालों मे सर्वप्रथ माना गया है। विशिष्टाद्वैत के आचार्यों मे सम्भवतः सूत्रकार के बाद आप ही सर्वप्राचीन आचार्य हैं। आपके जन्मस्थान तथा जन्मकाल के बारे मे कोई भी जान-

---

१. राजस्थान के 'जंवाहे' लोकगीत प्रसिद्ध ही हैं।

२. मेरो पिया जलेबी को टूक मं मिसरी की डली।
मिसरी की डली गोखया मे धरी, गोखया मे गई फूट।—लोकगीत

३. 'बलम मेरो चौपड़ को खिलाड़ी रै'—लोकगीत

४. 'ढोला उतर गयो तू मेरा मन सं, ज्यूं पिडली को मैल।—लोकगीत

५. बीर मर्द गी लड़ाई मुंह हुया करं सै—लोककथा

६. 'तैलनाताई रांड रारं गुलगुला आई।हे—कहावत

७. 'सौक को सो बोरो'—उपवाक्य

८. 'कामा का बाग मं कामसाई बेर'
या नौसा की बहना लाग गई। लाला वाह-वाह रे।—लोकगीत

कारी उपलब्ध नहीं है। परवर्ती ग्रन्थों में आपके सम्बन्ध में जो थोड़ी बहुत सामग्री उपलब्ध हैं, उसे यहाँ संकलित किया जाता है।

आचार्य बोधायन ने ब्रह्मसूत्रों पर एक अतिविस्तृत वृत्तिग्रन्थ की रचना की। परवर्ती काल में आचार्यों ने इस वृत्ति ग्रन्थ से सार संकलित किया। आचार्य रामानुज ने भी बोधायन के मत के अनुसार ही श्रीभाष्य की रचना की।[1] आचार्य रामानुज ने आपका नाम अत्यन्त श्रद्धा से लिया है। सम्भवतः आप ही विशिष्टाद्वैत सम्प्रदाय के प्रवर्तकाचार्यों में प्रथम या अतिप्राचीन आचार्य हैं। आचार्य रामानुज ने कई स्थलों पर यह दिखाने का प्रयत्न किया है कि विशिष्टाद्वैत की एक अतिप्राचीन परम्परा है और उनका श्रीभाष्य कोई नवीन मत का प्रतिपादक ग्रन्थ नहीं है वरन्च पूर्वाचार्य तथा पूर्व परम्परा या सनातन-परम्परा-सम्मत विचारसरणि है।

अति विस्तृत वृत्तिग्रन्थ की रचना करने के कारण आचार्य बोधायन वृत्तिकार के नाम से ख्यात हैं। इस वृत्तिग्रन्थ का नाम सम्भवतः 'कृतिकोटि' था। इसमें २० अध्याय थे जिसमें १२ जैमिनिसूत्रों पर, ४ देवताकाण्ड तथा ४ उत्तरमीमांसा सूत्रो पर उपनिबद्ध थे। यह समाचार प्रपचहृदय नामक ग्रन्थ मे उल्लिखित है।[2] आचार्य उपवर्ष ने इस विस्तृत ग्रन्थ का सारसंकलन किया। उपवर्ष भी वेदान्त सम्प्रदाय मे वृत्तिकार के रूप मे परिचित हैं। कुछ विद्वान् बोधायन और उपवर्ष को अभिन्न मानते हैं। शायद बोधायन उपवर्ष का गोत्र परिचायक नाम हो। आचार्य वेंकटनाथ ने अपनी तत्त्वटीका मे बोधायन और उपवर्ष को अभिन्न कहा है।[3] बहुत सम्भव है इसी उक्ति को ध्यान मे रखकर महामहोपाध्याय कुप्पुस्वामी शास्त्री ने भी दोनों मे ऐक्यस्थापन करने का प्रयत्न किया है।[4] आचार्य रामानुज ने अपने वेदार्थसंग्रह मे अनेक पूर्ववर्ती आचार्यों के नाम गिनाये हैं उनमे बोधायन का नाम तो है परन्तु उपवर्ष का नाम नही है।[5] तब वेंकटनाथ का दोनो को अभिन्न कहने का मत सदेहास्पद नही है। बोधायन

---

१. भगवद्बोधायन कृतां विस्तीर्णां ब्रह्मसूत्रवृत्ति पूर्वाचार्याः संचिक्षिपुः। तन्मतानुसारेण सूत्राक्षराणि व्याख्यायन्ते श्रीभाष्य उपक्रमणिका।

२. विंशत्यध्यायनिबद्धस्यमीमांसाशास्त्रस्य कृतकोटिनामधेयं भाष्यं बोधायनेन कृतम्। तद्ग्रन्थ बाहुल्यभयात् उपेक्ष्य किंचित् संक्षिप्तंमुपवर्षेणकृतम्। —प्रपंच हृदय पृष्ठ ३९ म० म० गणपति शास्त्री सम्पा०

३. वृत्तिकारस्य बोधायनस्यैव हि उपवर्ष इति स्याद्नाम। वेंकतटनाथ कृत तत्त्व टीका काञ्जीवरम् सि० ६.

४. मद्रास, ओरियन्टल कान्फ्रेंस प्रोसीडिंग्स १९२४ पृष्ठ ६५–६८.

५. भगवद्बोधायन—टंक–द्रमिड–गुहदेव—कपर्दि—भारुचि—प्रभृत्यविगीत–शिष्टपरिगृहीत पुरातनवेदवेदान्तव्याख्यानसुव्यक्तार्थ श्रुतिनिकट–निदर्शितोऽयं पन्थाः।–वेदार्थ संग्रह, पृष्ठ १४८, काशी संस्करण

कृत वृत्ति का सार लेकर संक्षेप में उपवर्ष ने अन्य ग्रन्थ की रचना की—यह सुप्रमाणितवाद है। शंकर ने अपने भाष्य मे वृत्तिकार का मत अनेक स्थलों पर खण्डित किया है। प्रायः 'अन्ये तु' 'अपरे तु' केचित्तु' कह कर वृत्तिकार का मत ही उद्धृत किया है। शायद यह वृत्तिकार बोधायन ही होंगे।

उपवर्ष के मत को वृत्तिकार का मत कह कर शबर स्वामी ने अपने मीमांसा भाष्य में उल्लेख किया है। इसी प्रकार से शंकराचार्य ने भी उपवर्ष को वृत्तिकार कह कर अपने भाष्य में उल्लेख किया होगा।[1] परन्तु दो स्थलों पर भगवानुपवर्ष भी कहा है।[2] इससे यह अवश्य जाना जा सकता है कि शंकर बोधायन और उपवर्ष को एक और अभिन्न नही मानते थे क्योकि उन्हांने बोधायन के मत का खण्डन किया है और उपवर्ष के मत को अपने मत की पुष्टि के लिए उद्धृत किया है। वेदार्थसग्रह मे आचार्य रामानुज की शिष्टपरम्परा की एक तालिका दी है उसमें उपवर्ष का नाम नही है परन्तु बोधायन की वृत्ति का अन्य आचार्यों द्वारा संक्षेप किया जाना अपने श्रीभाष्य की उपक्रमणिका मे स्वीकार किया है। अतः दोनों भिन्न व्यक्ति होंगे।

'यतीन्द्र मत दीपिका' मे वेदान्त के पूर्वाचार्यों की एक लम्बी तालिका दी है जिसमे व्यास के पश्चात् दूसरा नाम बोधायन का ही है।[3] नाम इस क्रम से है :—व्यास (सूत्रकार) बोधायन, गुहदेव, भारुचि—ब्रह्मानन्द—द्रविडार्य—पराङ्कुश—नाथमुनि—यामुनाचार्य आदि। रत्नप्रभा मे 'ब्रह्मजिज्ञासा' पद के पदच्छेद का विवरण प्रस्तुत करते समय वृत्तिकार समस्त पदच्छेद 'ब्रह्मणि जिज्ञासा' है, जब कि शकर सम्मत पदच्छेद 'ब्रह्मणः जिज्ञासा' ऐसा लिखा है। स्पष्ट ही वृत्तिकार एवं शंकर के दृष्टि कोण के मूलभूत अन्तर को स्पष्ट किया है। शंकर द्वारा अनेक स्थलो पर उद्धृत मत को टीकाकारो ने नामोल्लेख पूर्वक वृत्तिकार का मत कहा है। गीता भाष्य मे भी शंकर ने वृत्तिकार के मत का खण्डन किया है।[4] शायद भेदाभेद कर्म समुच्चयवाद तथा ब्रह्मपरिणामवाद उस काल के प्रमुख वाद थे जिनका खण्डन केवल-अद्वैतवाद की स्थापना के लिए किया गया हो।

शाबरस्वामी को ईसा की चौथी या पाचवी शती के पश्चात् नही रख सकते। उपवर्ष

---

१. ब्रह्मसूत्र १.१.१६; १.१.२७; १.१.३१; १.२.२३; ३.३. ५३ पर शंकरभाष्य में वृत्तिकार का मत उद्धृत है।

२. अथ गौरित्यत्र कः शब्दः। गकारौकारविसर्जनीया इतिभगवानुपवर्षः अतएव च भगवतोपवर्षेण प्रथमे तन्त्रे आत्मास्तित्वाभिधानप्रसक्तौ शारीरके वक्ष्याम इत्युद्धारः, कृतः शंकरभाष्य ३.३.५३ पर।

३. व्यास—बोधायन—गुहदेव—भारुचि—ब्रह्मानन्दि—द्रविडार्यश्रीपरांकुश नाथयामुनमुनि-यतीश्वरप्रभृतीनां मतानुसारेण।—यतीन्द्रमत दीपिका।

४. २. ११; ४.८. गीता।

शाबर से बहुत पूर्ववर्ती थे। यदि बोधायन की कूटनीति वृत्ति का उपवर्ष ने ही संक्षिप्तीकरण किया और यदि उन्होने संक्षिप्त वृत्तिका का ही उपयोग किया तो इससे यह निष्कर्ष निकला कि ईस्वी प्रथम या द्वितीय शती के पश्चात् उपवर्ष को नही रखा जा सकता।

वेदान्त वृत्तिकार बोधायन और कल्पसूत्रकार बोधायन एक ही व्यक्ति हैं या भिन्न यह प्रश्न विचारसापेक्ष है। बोधायन गृह्य शेषसूत्र २. २२. १ में गीता का ९.२६ तथा बोधायन पितृ मेध सूत्र मे तृतीय प्रश्न के प्रारम्भ में गीता का श्लोक 'पत्रं पुष्पं फलं तोयं' को तदाह भगवान् कहकर उद्धृत किया है। कृष्ण के प्रति ऐसी श्रद्धा अद्वैती लोग नही करते थे, विशेषतः जब कि स्वयं गीता मे ही भगवान् को अवतार नही कहा है और केवल 'वृष्णीनां वासुदेवोऽस्मि' 'आदित्यानामहं विष्णुः' कह कर छोड़ दिया गया है।

--वे० सत्यनारायण (तिरुपति)

संस्कृत और हिन्दी में हास्य-साहित्य

काव्य मे रस काव्य की आत्मा है। सरस काव्य ही पठनीय माना जाता है। काव्य मे, हास्य की गणना भी नौ रसो के अन्तर्गत ही की जाती है। हास्य का स्थायी भाव हास है। विकृत आकार, वाणी, वेषादि को देखने मात्र से हास्य रस की उत्पत्ति होती है; यही उसका आलम्बन है। हास्यजनक चेष्टाएँ उद्दीपन तथा ओष्ठ, नासिका, कपोल आदि का स्फुरण व्यग्य आदि वाक्य अनुभाव हैं। आलस्य, निद्रा संचारी हैं। हास्य के छह भेद होते हैं—स्मित, विहसित, अवहसित, अपहसित, अट्टहास तथा अतिहसित।

हास्य का जीवन मे बड़ा महत्व है। हास्य एक प्रकार का अच्छा व्यायाम है। यह शोक का विरोधी है, शोक दुःखात्मक अनुभूतियों का परिणाम है, हास्य सुखात्मक अनुभूतियों का परिणाम है। हँसने से शारीरिक सौंदर्य मे वृद्धि हो जाती है। फूल का खिलना ही उसका हँसना है, उससे उसके सौंदर्य की वृद्धि होती है। बालक जब हँसता है तो माँ का हृदय प्रफुल्लित हो उठता है। वैज्ञानिकों ने यह सिद्ध कर दिया है कि उद्भिज आदि अचेतन प्राणी में सुख-दुःख का अनुभव करते हैं; फिर साहित्य तो इन्ही की अभिव्यक्ति है।

साहित्य मे हास्य का स्थान आदिकाल से ही मानना चाहिए। वैदिक मंत्रों मे देवाराधन की प्रधानता है। सभी देवी-देवताओं की हँसमुख मुद्राएँ ही आह्लादकारिणी मानी जाती हैं। देवों में महादेव का अट्टहास तो प्रसिद्ध ही है।

संस्कृत-साहित्य में शृंगार और करुण की प्रधानता है। तथापि हास्य को भी यत्र-तत्र-सर्वत्र ग्रहण किया गया है। 'काव्येषु नाटकं रम्यम्' के अनुसार नाटक का ऊँचा स्थान है। नाटक में विदूषक के सारे कार्य-व्यापार हास्यजनक ही होते हैं।

संस्कृत साहित्य का हास्य बहुत शिष्ट, मर्यादित तथा परिष्कृत है। उसमें माधुर्य को

सर्वत्र स्थान मिला है। गम्भीरता भी सर्वत्र मिलती है। हास्य-प्रसंग में ही कभी-कभी बहुत ऊँची, शिक्षाप्रद तथा आदर्श की बातें कह दी जाती हैं। एक उदाहरण देखिए—

> भिक्षो, मांसनिषेवणं प्रकुरुषे किं तेन मद्यं विना
> किं ते मद्यमपिप्रियं प्रियमहो वारांगनाभिः सह।
> वेश्या द्रव्यरुचिः कुतस्तवधनं द्यूतेन चौर्येण वा
> चौर्यद्यूतपरिग्रहोऽपि भवतो नष्टस्य काऽन्या गतिः॥

'हे भिक्षुक! क्या तुम मांस का सेवन करते हो? तो फिर तुम्हारा मद्य के बिना कैसे काम चलता है? क्या तुम्हे मदिरा भी प्यारी है? पर मदिरा तो वेश्याओं के सम्पर्क होने पर ही अच्छी लगती है। वेश्याएँ तो पैसे को प्यार करती हैं, धन के प्रति आसक्त रहती हैं, तुम नग-धडग भिखारी के पास पैसा कहाँ से आता है? पैसा तुम्हारे पास या तो जूए से आ सकता है, या चोरी से, तुम कोई जीविकोपार्जन का कार्य, व्यवसायादि तो करते नही? तुम जैसे भिक्षुक को भी चोरी; जुआरी का व्यसन है? एक बार (समाज तथा आचरण से) नष्ट व्यक्ति के पास दूसरा चारा ही क्या है?'

'दशरूपक' के अनुसार हास्य तीन प्रकृतियो पर आधारित छः प्रकार का होता है। स्मित हास्य वह है, जहाँ केवल नेत्र ही विकसित हो। हसित वह है जहाँ दाँत कुछ-कुछ नजर में आ जायें। मधुर स्वर मे हँसना विहंसित कहलाता है, सिर का हिलाकर हँसना उपहंसित होता है। आँखो मे आँसू भर आये, इस तरह हँसना अपसहसित कहा जाता है। अगों को फेंक कर हँसना अतिहंसित कहलाता है। इनमे दो-दो प्रकार के हसित क्रमशः ज्येष्ठ, मध्यम तथा अधम प्रकृति के होते हैं।

कालिदास ने 'कुमारसम्भव' मे हास्य की सुन्दर व्यंजना की है। ब्रह्मचारी और पार्वती का सवाद हास्यरस से भरा पडा है। शंकर की बारात में सब के सब विकृत वेष-धारी ही एकत्रित होते हैं, जिनको देखकर हँसी आती है। शिव के बूढे बैल पर बैठने से पार्वती के उस सौंदर्य की भी विडम्बना होगी जो विवाहोपरान्त हाथी पर बैठकर पतिगृह जाने योग्य है। उस दरिद्र के पास हाथी कहाँ से आएगा, वहाँ तो केवल बूढा बैल है और पार्वती को उसी पर बैठना पडेगा—

> इयं च तेऽन्या पुरतो विडम्बना यदूढया वारणराजहार्यया।
> विलोक्य वृद्धोक्षमधिष्ठितं त्वया महाजनः स्मेरमुखो भविष्यति॥

—कुमारसंभव ५ : ७२

संस्कृत साहित्य की यही परम्परा हिन्दी मे भी आई, पर उसे दूसरे रूप में ग्रहण किया गया। वीरगाथा काल मे हास्य का विशेष रूप मे नही, सामान्य रूप मे ग्रहण किया गया था। उसमें उतनी गम्भीरता तथा काव्यात्मकता भी नही थी जितनी होनी चाहिए।

उस समय प्रायः वीररसात्मक कविताएँ ही लिखी गईं, क्योंकि परिस्थितियाँ तथा वातावरण भी उसी के अनुरूप था। राष्ट्रीय-सकट की घडी मे हँसने-हँसाने का अवकाश ही किसको था? खुसरों की पहेलियों में हास्य के कुछ तत्त्व अवश्य मिलते हैं—

मूड़ मुड़ाये तीन गुण, मिटै टाट की खाज।
बाबा बाज्यो जगत में, मिल्यो पेट भर नाज॥

इन पहेलियों का उद्देश्य मात्र मनोरंजन या मनोविनोद था। भरतमुनि ने अपने 'नाट्यशास्त्र' में विनोद को नाटक का प्रमुख उद्देश्य माना है, विनोदजननं लोके नाट्यमेतद्-भविष्यति।' तथापि विनोद को काव्य का सर्वोच्च उद्देश्य नही माना जा सकता। काव्य का उद्देश्य तो चार पुरुषार्थों (धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष) की प्राप्ति है, (सा० द० १:२)। उससे यश, धन व्यवहार-कुशलता, कल्याण, परनिवृत्ति, कान्तासम्मित सुख तथा उपदेश की भी प्राप्ति होनी चाहिए। काव्य मधुर दवा के समान अविवेक रूपी रोग का नाशक है—कुन्तक।

वीरगाथा काल मे जो हास्य लिखा गया वह इन उद्देश्यों की प्राप्ति मे सफल नही है। हिन्दी साहित्य के भक्तिकाल तथा रीतिकाल को भी हास्य की दृष्टि से सफल नही कहा जा सकता। भक्तिकाल के कवियो को देवाराधन तथा रीतिकाल के कवियों को राजाओं की यश-प्रशस्ति तथा नायक-नायिका भेद-वर्णन के अतिरिक्त कुछ और लिखने का अवकाश ही न मिला। यद्यपि तुलसी आदि कवियो ने यत्र-तत्र हास्य को भी ग्रहण किया है, तथापि वह वर्णनात्मक तथा प्रसंगानुकूल होने पर उतना मार्मिक नही है। कुछ प्रसंग भावात्मक अवश्य हैं—

बिन्ध्य के बासी उदासी तपो ब्रतधारी महा बिनु नारि दुखारे।
गौतम तीय तरी, तुलसी सो कथा सुनि भे मुनिबृन्द सुखारे।
ह्वै हैं सिला सब चन्द्रमुखी परसे पद मंजुल कंज तिहारे।
कीन्हीं भली रघुनायक जू करुनाकरि कानन को पग धारे॥
—तुलसी

हिन्दी-कवियों में हास्य के प्रति उपेक्षा की भावना मिलती है। संस्कृत के प्रायः हर काव्य मे हास्य को येन-केन-प्रकारेण ग्रहण किया गया है। सुभाषित ग्रंथों मे भी हास्य निरूपित है। सुभाषितरत्न कोश, हास्यार्णव, वैद्यजीवनम्, खेटकौतुकम् आदि मे हास्यरस के प्रसंग हैं।

संस्कृत साहित्य का यह हास्य लोक जन-जीवन को प्रभावित करने में पूर्ण सफल है, जब कि हिन्दी का हास्य ऐसा करने मे सफल नही है। रहीम की उक्तियाँ इस दृष्टि से सफल कही जा सकती हैं, हिन्दी मे हास्य को व्यग्य के साथ ग्रहण किया गया है। भारतेन्दु जी

ने गद्य रचनाओं मे भी हास्य का विधान किया है। 'वैदिकी हिंसाहिंसा न भवति' तथा 'अन्धेर नगरी' आदि नाटकों में हास्य-व्यग्य की अच्छी व्यजना है। भारतेन्दु जी ने इसका आविर्भाव ऊँचे लक्ष्य को लेकर किया था, पर बाद मे चल कर इसकी उपेक्षा की गई। द्विवेदीयुग मे इसे आगे बढने का अवसर ही न मिला। तृतीय उत्थान काल मे पुनः इस ओर ध्यान दिया गया है।

पिछले तीन दशकों से हास्य-व्यंग्य को लेकर एक आन्दोलन सा चल पडा है। शोध-प्रबन्ध प्रस्तुत किये जा रहे हैं, पत्र-पत्रिकाएँ, कविता-सग्रह तथा काव्य-ग्रथ भी प्रकाशित हो रहे हैं। पद्य के अतिरिक्त गद्य मे भी हास्य का प्रभूत साहित्य लिखा जा रहा है। आचार्य शुक्ल आदि के निबन्धों मे हास्य-व्यग्य को एक शैली के रूप मे स्थान मिला था; किन्तु वर्तमान युग के कवियों मे हास्य-व्यंग्य लिखने की एक परिपाटी सी चल पडी है जिसे 'फैशन' की संज्ञा भी दी जा सकती है। प्राय कवि हास्य-व्यग्य लिखने का अभिनय करता है। वास्तव मे हास्य लिखना और समझना दोनों कठिन है। बेढब बनारसी ने लिखा है--

"बहुत से लोग नही समझते कि हास्य बौद्धिक वस्तु है, जैसे-जैसे बुद्धि का विकास होता है, हास्य की बारीकियाँ समझ मे आती है। जिसका बौद्धिक विकास नही है, वह न हास्य लिख सकता है, न समझ सकता है।"

सस्कृत कवियो ने हास्यरस मे भी ऊँची बाते कह डाली है किन्तु हिन्दी के कवियों में इसका अभाव खटकता है। हास्य-साहित्य का उद्देश्य मात्र मनोरंजन नही होना चाहिए; मनोरजन के तो बहुत-से साधन है।

--अर्जुनदास केसरी, एम० ए०

डॉ० देवराज उपाध्याय और साहित्यशास्त्र के नये प्रश्न

डॉ० देवराज उपाध्याय हिन्दी-आलोचना के क्षेत्र मे मनोविश्लेषणात्मक आलोचना के प्रवर्तक के रूप मे माने जाते हैं। इस क्षेत्र में उन्होंने उपन्यासों का साहित्यशास्त्र रच डाला है। मनोविश्लेषण इनके साहित्य-चिंतन में कुछ ऐसा रच-बस गया है कि जब भी वे किसी अन्य प्रसग की चर्चा करते हैं तब भी वे घूम-फिर कर मनोविश्लेषणात्मक आलोचना के किसी पहलू को हृदयंगम करते होते हैं। अपने विभिन्न निबन्धो मे चाहे उन्होने साहित्य के विभिन्न प्रश्नो पर साधिकार लिखा हो, पर कुल मिलाकर वे मनोविश्लेषण के अतिरिक्त अन्य किसी क्षेत्र मे कोई सिद्धान्त प्रतिपादित कर रहे हों--ऐसा प्रभाव कथमपि अकित नही होता। इनके निबधों मे कही एक या अधिक गूढ़ सत्य विश्लेषित होते हैं, कही पिष्टपेषण या विरोधाभास भी मिल सकता है। अपनी बात को स्पष्ट करने के लिये वे मनोरंजक शैली मे अपने सस्कृत उर्दू, अंग्रेजी आदि साहित्य के ज्ञान को भी विवेचन मे नियोजित कर देते हैं। परन्तु सभी

निबंध मिलकर भी एक मनोविश्लेषण के अतिरिक्त, किसी विशेष विचार (धारा) का निरन्तर प्रतिपादन करते प्रतीत नही होते । एक उदाहरण लीजिए—"साहित्य के लिए तो तन्मयीभवन योग्यता ही यथेष्ट मानी गयी है, तन्मयीभाव नही। नशा का आलम रहे मजा का नही। मजा दूसरी चीज है, नशा दूसरी। जिस समय प्राण निकलने लगते हैं, निकल गये नही रहते, उस अवस्था को नशा कहते हैं। सूफी लोग इस नशा के आलम में बुत रहने की ख्वाइश करते हैं। मजा सिद्धावस्था है। निष्ठा प्रत्ययान्त है। नशा शतृशानच-प्रत्ययान्त है। सिद्ध्यमान है। एक गत है, दूसरा गच्छन्। साहित्य आपको बनाता नहीं, आपमें बनने की शक्ति पैदा करता है। इसी से अभिनवगुप्त ने तन्मयीभाव नही, तन्मयी-भवन् योग्यता ही रसास्वादन के लिए पर्याप्त मानी है।"

उपर्युक्त उदाहरण बहुत सोच-समझकर नही चुना गया है। वास्तव मे ऐसे उदाहरण उपाध्याय जी के आलोचना-ग्रथो मे चुनने के लिए ज्यादा ढूँढने की आवश्यकता ही नही पडती। इस उदाहरण मे प्रथम और अन्तिम पक्ति मे प्रतिपाद्य विषय है और उसे समझाने के लिए आलोचक ने सस्कृत व्याकरण व सस्कृत, अग्रेजी एव सूफी साहित्य-विषयक अपने ज्ञान का उपयोग किया है। इसमे कुछ अश विविध क्षेत्रो के तकनीकी शब्द हैं। स्पष्ट है, डॉ० उपाध्याय का इन विषयो का ज्ञान अत्यन्त सुलझा हुआ है, तभी तो वे इनके तकनीकी पदों का निश्चिन्त होकर, साधन रूप मे, उपयोग करते हैं। आप चाहे तो कह सकते हैं कि आलोचक ने अपना पाडित्य प्रदर्शित किया है। एक दो समीक्षको ने ऐसा कहा भी है परन्तु उपाध्याय जी के साहित्य से परिचित व्यक्ति जानता है कि एक ही प्रसग को इस प्रकार स्पष्ट करते चलना उनकी शैली है।

परन्तु उपाध्याय जी के समीक्षा साहित्य मे अवगाहन करनेवाले सस्कृत-साहित्य के विद्वान् डॉ० जयशंकर त्रिपाठी ने स्थापित करने का यत्न किया है कि डॉ० उपाध्याय के साहित्य चिन्तन मे सस्कृत की साहित्यशास्त्रीय सम्पदा का साधनवत् उपयोग ही नही हुआ है वरन् उसके उलझे हुए कतिपय प्रश्नों का निदान भी विद्यमान है। डॉ० त्रिपाठी का मत है कि डॉ० उपाध्याय जिस मनोविश्लेषणात्मक आलोचना का मार्ग प्रशस्त कर रहे हैं उसके सूत्र सस्कृत-साहित्यशास्त्र मे हैं। जो आज का मनोविज्ञान कह रहा है, वही तो हमारे साहित्य-शास्त्रियो ने कहा है। डॉ० त्रिपाठी का यह चिन्तन उनके ग्रथ—"देवराज उपाध्याय : साहित्य शास्त्र के नये प्रश्न"[1]—मे प्रतिफलित हुआ है। त्रिपाठी जी ने सर्वत्र डॉ० उपाध्याय के ग्रथों से उदाहरण चुन कर अपनी बातो का पोषण किया है। अपने ग्रथ के प्रारंभिक अध्यायों मे उन्होने आधुनिक साहित्य के क्षेत्र मे हो रही भाषागत-क्रान्ति का मूल भी संस्कृत साहित्य-शास्त्र मे खोजते हुए, इसे हिन्दी मे अवतरित करने का श्रेय डॉ० उपाध्याय को दिया है। उपाध्याय जी के प्रारंभिक निबध-संग्रहो को ध्यान से पढा जाय तो उनमे यह स्वर क्रमशः

---

१. अनुपम प्रकाशन, जयपुर —३ से (१९७० ई० में) प्रकाशित।

मुखरित हुआ मिलता है कि कविता में भावों की प्रधानता का युग लद गया है और आज की कविता तो भावों के भार के विरुद्ध विद्रोह कर रही है। उनके हाल के निबन्ध-संग्रहों में यह धारणा इतना प्रबल पोषण पा गई है कि वे सचमुच इस विचार (धारा) के पोषक हो गये जान पड़ते हैं। डॉ० त्रिपाठी ने उनकी प्रमुख मान्यताओं के रूप मे इस धारणा का जो उल्लेख किया है वह वास्तव मे उनकी सही सूझ है। डॉ० उपाध्याय ने अब यहाँ तक कहा है कि कविता केवल 'व्यक्त मध्य होती है और हमे उसके शब्दार्थाक्षरात्मक स्वरूप पर विचार करना चाहिए। यह मान्यता आलोचना के क्षेत्र मे प्रचलित अनेक पूर्ववर्ती मान्यताओं को उलटती है और कविता के भाषायी स्वरूप पर ही मुख्यत. विचार का आह्वान करती है। हिन्दी में इस तरह की धारणा अभी एक दो आलोचको ने ही व्यक्त की है, यद्यपि अग्रेजी मे तो इलियट ने अपने 'वैयक्तिक प्रतिभा और परम्परा' निबध मे ही यह बात स्पष्ट रूप से कह दी थी। उपाध्याय जी ने इसकी व्याख्या अपने ढग से की है।

'आनंद, रसास्वादन या रहस्यदर्शन' निबध मे डॉ० त्रिपाठी ने डॉ० उपाध्याय की आलोचनात्मक महत्ता का एक नवीन लोक उजागर किया है। रस-सिद्धान्त की पृष्ठभूमि का सम्यक् विश्लेषण कर डॉ० त्रिपाठी ने यह दिखाने का प्रयत्न किया है कि इस विषय की जो आपत्तियाँ शास्त्रकारों ने उठाई हैं, उनका समाधान हमे डॉ० उपाध्याय के निबंधो मे प्राप्त हो जाता है। हजारीप्रसाद द्विवेदी के 'चारुचन्द्र लेख" की व्याख्या मे डॉ० उपाध्याय जी ने जिस रहस्य-दर्शन वृत्ति की व्याख्या की है (और जिसे उन्होंने सृजन की पहली शर्त भी कहा है) डॉ० त्रिपाठी ने उसे रस-सिद्धान्त का विकल्प स्वरूप प्रस्तावित किया है और इस प्रस्तावना के माध्यम से साहित्यशास्त्र को एक नया आयाम प्रदान किया है। रहस्य-दर्शन को रससिद्धि, भावना-दोष, अशून्य आदि की 'सज्ञा' देते हुए उन्होंने इसकी व्यापकता की सटीक व्याख्या की है। रस-सिद्धान्त की पूर्व-पीठिका पर प्रकाश डालकर उन्होंने यह भली भाँति दिखाया है कि रस के लिए नई सज्ञा का प्रयोग कोई अनहोनी बात नहीं है क्योंकि ऐसा प्रयोग अतीत मे बराबर होता रहा है। 'रहस्य-दर्शन' सज्ञा उनके मतानुसार इसलिए भी स्वीकार्य होनी चाहिए कि इससे इस क्षेत्र मे अब तक उठती रही आपत्तियों का निराकरण हो जाता है।

उपर्युक्त स्थापना प्रस्तुत ग्रथ की रीढ है। यही इस ग्रथ की जहाँ सबसे बड़ी उपलब्धि है और इससे डॉ० उपाध्याय की आलोचना नई गरिमा से मंडित हुई दिखती है, वहीं यह इस ग्रथ की कमजोरी भी है। कमजोरी इस अर्थ मे कि डॉ० उपाध्याय के उद्धरणों को रसशास्त्र की समस्या सुलझाने मे नियोजित करने मे लेखक इतना व्यस्त हो गया है कि डॉ० उपाध्याय की मनोविश्लेषणात्मक मौलिक उपलब्धि—मनोविश्लेषणात्मक साहित्य-शास्त्र का निर्माण उसके लिए गौण हो गया है। स्पष्टतः उपाध्याय जी रसवादी चिन्तक नहीं है। निश्चय ही, इस का अर्थ यह नहीं कि उनका चिन्तन रस-स्थानीय हो सकता है; डॉ० त्रिपाठी ने सो यही दिखाने की कोशिश की है, वह रस स्थानीय हो सकता है, बल्कि है।

त्रिपाठी ने अचेतन की भाषा का विधान भी संस्कृत में दिखाया है और अलंकारवाद को उन्होंने भाषागत क्रान्ति कहा है। शब्द-प्रयोग मे निरा हेर-फेर ही भाषागत-क्रान्ति का आधार हो तब तो साहित्य के क्षेत्र की हर क्रान्ति भाषागत-क्रान्ति ही होगी, क्योंकि आखिर जो कुछ भी साहित्य में आयेगा शब्दो के माध्यम से ही आयेगा। यहाँ लेखक भूल गया है कि वर्तमान भाषागत-क्रान्ति हर शब्द और ध्वनि को सार्थक *व्यंजना* के लिए रखना चाहती है, जब कि अलकरवाद का आरभ चाहे जिस दृष्टि से हुआ हो, उसका पर्यवसान शब्दो के साथ अनाचार मे ही दिखाई पडता है।

निश्चय ही स्वय डॉ० उपाध्याय ने अनेक जगह आधुनिक साहित्य की प्रवृत्तियों को समझाने मे प्राचीन साहित्य के उदाहरणो का सहारा लिया है। एक जगह प्राचीन और आधुनिक आलोचनात्मक प्रवृत्तियों की तुलना करते हुए उन्होने यहाँ तक कहा है कि 'नई आलोचना ले-देकर वहीं पहुँच रही है जहाँ कुंतक पहुँचे थे।' परन्तु उनके ऐसे कथनों का अभिप्राय नई आलोकना का अंकुर प्राचीन साहित्य मे खोजना नही होता, बल्कि प्राचीन साहित्य शास्त्र मे पड़े लोगों को आधुनिक बीहड़ताओ से क्रमशः परिचित कराना होता है। यदि ऐसा नही होता है तो फिर मनोवैज्ञानिक रचनाओ और अन्तर्द्वंद्व-प्रधान रचनाओ मे उनके लिए अंतर नही रह जाता।

परन्तु डॉ० त्रिपाठी ने इस स्थिति को ठीक से नही समझा है, फलतः उपाध्याय जी की सभी आलोचनात्मक नूतनताओं का स्रोत संस्कृत साहित्यशास्त्र मे दिखाने की झोंक में वे इनके मनोविश्लेषणात्मक साहित्य-शास्त्र का सम्यक् महत्त्वांकन नही कर सके हैं और उपाध्याय जी की आलोचना का मूल्यांकन करनेवाली पुस्तक उनकी मनोविश्लेषणात्मक देन का स्वतन्त्र रूप से महत्व नही आँक पायी तो उसे उसकी कमजोरी के अतिरिक्त और क्या कहा जायेगा? *'आधुनिक हिन्दी कथा साहित्य और मनोविज्ञान'* और *'साहित्य का मनोवैज्ञानिक अध्ययन'* तथा अन्य पुस्तकों मे डॉ० उपाध्याय ने साहित्य और मनोविज्ञान से सबंधित प्रश्नों के जो उत्तर खोजे हैं उन पर एकांगी विचार हो पाया है। यही कारण है कि 'उपन्यास का शिल्प और उपलब्धियाँ' इस ग्रंथ का कमजोर अध्याय रहा है। 'अनाप्त लेखकत्व' की विस्तृत चर्चा, इसी शीर्षक-अध्याय मे की गयी है। परन्तु वहाँ भी डॉ० त्रिपाठी ने अपनी ओर से ही इस पद की विभिन्न व्याख्याओं मे ज्यादा रुचि दिखायी है। एक अन्य अध्याय मे उपाध्याय जी की आलोचना-विषयक कतिपय अन्य मान्यताओं पर विचार किया गया है परन्तु इस प्रसंग में 'कथा के तत्त्व' और 'विचार के प्रवाह' पुस्तकों की नितान्त उपेक्षा खटकती है। इससे भी बढ़कर एक बात यह खटकती है कि उपाध्याय जी के मनोविश्लेषण से इतर मान्यताओं की उनकी मनोविश्लेषणात्मक धारणाओं के साथ कितनी संगति है—उस ओर देखने का उन्होंने किंचित् भी कष्ट नही किया है। उदाहरणार्थ डॉ० त्रिपाठी ने उपाध्याय जी की एक मान्यता उद्धृत की है कि 'कवि के उद्देश्य का ज्ञान कला के वस्तु के मूल्यांकन में सहयोग देनेवाले ज्ञान का आवश्यक अग नही है।' इसी तरह उनका मत है कि रचना के संघटन मे

किन तत्वों ने कैसा योग दिया है और वे कैसा प्रभाव उत्पन्न करेंगे, इस सरेब मे कुछ भी निश्चयपूर्वक नहीं कहा जा सकता। एक ओर उपाध्याय जी की ये मान्यताएँ हैं (इन्हीं से मिलती-जुलती मान्यता पीछे भी उद्धृत है कि कविता केवल 'व्यक्त मध्य' होती है) और दूसरी ओर उनके अनेक प्रयत्न हैं, जहाँ उन्होंने उपन्यासो के स्रोतो का उनकी मनोविश्लेषणात्मक व्याख्या में उपयोग किया है। इन दोनो मे कोई सगति कैसे स्थिर की जाये? इसी तरह के कुछ प्रश्न कतिपय विरोधी मान्यताओं के कारण उनके अध्येता के मन मे आ सकते हैं, परन्तु सुधी समीक्षक का ध्यान उस ओर नहीं आ पाया है। कदाचित् इसका कारण यही है कि डॉ० त्रिपाठी ने डॉ० उपाध्याय के आलोचनात्मक साहित्य को जिस दृष्टि से देखा-परखा है, उसमें उनका ध्यान उनकी मनोविश्लेषणात्मक उपलब्धियों पर कम गया है। उनकी दृष्टि इसी पर अटक गयी है कि उपाध्याय जी द्वारा आविष्कृत एव व्यवहृत सज्ञाएँ संस्कृत साहित्य-शास्त्र की व्याख्या मे और उसकी समस्याओ को सुलझाने मे कैसे सहायक हो सकती हैं। परिणामतः उनकी आलोचना में एकागिता आ गई है।

परन्तु इसके विपरीत भी उपाध्याय जी की आलोचना की संभावनाएँ खोजने का श्रेय डॉ० त्रिपाठी को ही दिया जायेगा। शायद उपाध्याय जी का भी ध्यान, इससे पूर्व, इस ओर नहीं गया होगा कि वे अपने निबंधो मे संस्कृत साहित्यशास्त्र की समस्याएँ भी सुलझा रहे हैं। हमारी शिकायत तो डॉ० त्रिपाठी से यह है कि यह उपाध्याय जी की आलोचना का एक पहलू है; दूसरा पहलू निखिल मनोविश्लेषणात्मक है और एक अन्य वह भी है जहाँ वे पुरानी बातों का सहारा लेते हैं, पर सुलझाते हैं आधुनिक समस्याओ को। इन सभी का ठीक-ठीक निरूपण किये बिना हिन्दी-आलोचना को उनकी देन उजागर नहीं हो पायेगी। इनका निरूपण करने से प्रकट होगा कि जितना प्रभाव उन्होंने सस्कृत से आत्मसात् किया है उससे कम पाश्चात्य जगत् से नहीं। यह तो उनकी चिन्तन शक्ति है कि वह उसे (पाश्चात्य ढंग को) अपने रंग मे रग लेते हैं। यही तो एक आलोचक के लिए आज सर्वाधिक अपेक्षित है। कुछ इस सम्बन्ध मे और कुछ उनकी शैली के सम्बन्ध मे और कहा जाना तो पुस्तक सर्वांगीण होती।

अंत मे एक बात और। डॉ० उपाध्याय की पुस्तको मे छापे की गलतियाँ भरपूर रहती हैं, उन पर लिखी गई पुस्तक मे भी वे कम नहीं है। विवृति को विकृति, सुहागिन का दुहागिन और भारवहन का मानवहन छपा है और ऐसा अनेक जगह छपा हुआ है। ऐसे उदाहरण तो अनेक है जहाँ विभक्तियाँ गलत हैं। परन्तु छपाई साफ और साज-सज्जा सुन्दर है।

कुल मिलाकर, डॉ० देवराज उपाध्याय की आलोचना से परिचित होने और रस-सिद्धान्त की कतिपय आधारभूत अक्षमताएँ समझना चाहनेवालों के लिए पुस्तक पठनीय है।

—मोहनकृष्ण बोहरा, एम० ए०

विमर्श

प्राचीन हिन्दी-काव्य : पाठ एवं अर्थ-विवेचन

वस्तुतः पाठ एव अर्थ की दृष्टि से प्राचीन हिन्दी काव्य का अनुशीलन अत्यन्त महत्त्व-पूर्ण है। सम्प्रति प्राचीन काव्य-ग्रंथो के सम्पादन में शब्द एवं अर्थ के उचित समन्वय के अभाव मे भयंकर से भयकर भूलें देखने को मिलती हैं। यही कारण है कि भारतीय वाङ्मय मे शब्द और अर्थ के एकात्मक स्वरूप की उपेक्षा कभी भी नही की गई। शब्द और अर्थ की अन्योन्याश्रित सम्बन्ध-विषयक स्थिति पर प्रकाश डालते हुए वाक्यपदीय के रचयिता श्री भर्तृहरि ने भी एक स्थल पर यों कहा है—

आत्मरूपं यथा ज्ञाने ज्ञेयरूपञ्च दृश्यते।
अर्थरूपं तथा शब्दे स्वरूपञ्च प्रकाशते॥

अर्थात् ज्ञान जैसे अपने को और अपने ज्ञेय को प्रकाशित करता है, उसी प्रकार शब्द भी अपने स्वरूप को तथा अपने अर्थ को प्रकाशित करता है।

इस दृष्टि से सम्पादन की दो सरणियो का उपयोग हो रहा है—(१) वैज्ञानिक सम्पादन और (२) साहित्यिक सम्पादन।

वैज्ञानिक एवं साहित्यिक प्रक्रिया मे मूलतः अन्तर न होते हुए भी आज का वैज्ञानिक सम्पादक शब्द को अधिक महत्त्व देता है और साहित्यिक सम्पादन अर्थ को। इसमें सन्देह नही कि शब्द और अर्थ की सत्ता परस्पर असम्पृक्त नही है, फिर भी अर्थ को मूलतः ग्रहण किये बिना प्राचीन हिन्दी-काव्यो का सम्पादन सर्वथा निर्भ्रान्त नही। इन्हो सब कारणों से शब्द की तुलना मे अर्थ की महत्ता स्वीकार करनी पडती है। आज अधिकतर पाठ-सम्पादन मे जो भ्रान्तियाँ उत्पन्न होती हैं, वे अर्थ न समझने के कारण। प्रसगगत पूरे अर्थ की सभावना न करने के कारग मूल पाठ अपनी इयत्ता किस प्रकार खो देता है, यह कतिपय उदाहरणों से स्पष्ट हो जाएगा। पहले नवीन कविकृत 'प्रबोध सुधासर' के प्रथम तरंग का एक छन्द देखें—

पानी को लै पान तू प्रमान कर बार-बार,
सुधा लै प्रमान तोहि कीनों सिसु नन्दना।
तू तो पूर्ण आंख तले वह तो नखत ले
तू तो गहै अलक वह गहै तम छन्दना।

मुरली सुकवि स्वेत चीर तन धारो तें
याही ते गरं में डार्यो चाँदनी को फँदना।
चन्द चन्दना को लड़ी है प्यारी चन्द मुखी,
तेरे मुखचन्द की करत चन्द वन्दना।

(प्रबोध सुधाधर छन्द स० ६०१ डा० भवानीशकर याज्ञिक की हस्तलिखित प्रति मे उद्०)

रेखाकित अंश नितान्त भ्रष्ट प्रतीत हुआ, किन्तु ज्योही अर्थ की दृष्टि से विचार किया गया—तो स्पष्ट प्रतीत हुआ कि पाठ आँख तले के स्थान पर आखत ले (अक्षत लेकर) होना चाहिए। अर्थ औचित्य की दृष्टि से याज्ञिक जी ने भी इस पाठ को स्वीकार किया, यद्यपि उनकी उपलब्ध प्रतियो मे ऐसा पाठ कही नही मिला। जिन प्रतियो के आधार पर उन्होने 'प्रबोध सुधाधर' का पाठ तैयार किया है उनका सक्षिप्त लिपि-विवरण इस प्रकार है—

१—सभावाली प्रति लिपि-काल स० १६०१—रचनाकाल—१८६५।

२—भरतपुर की तेजसिंह द्वारा लिखित प्रति लि० का० स० १६१० रचना-काल स० १८६५।

३—मदनलाल जी की प्रति लिपि-काल स० १६३५ रचना काल स० १८८१

'आँखत ले' शब्द के सम्बन्ध मे ऐसा अनुमान है कि 'आँखत ले' पाठ का अश प्रतिलिपिकारो के प्रमाद के कारण आखत ले' हो गया और परवर्ती प्रतिलिपिकारो द्वारा 'आख' का 'आँख' हो गया। प्राय अर्थ न समझने के कारण पाठो के परिवर्तन की प्रवृत्ति स्पष्ट रूपेण परिलक्षित होती है। कई पाठो का ऐसा विचित्र हेर-फेर हुआ है कि उनके मूल रूप को समझना अत्यन्त दुरूह हो गया है, यथा जायसी कृत 'पद्मावत' मे एक शब्द 'सुसार' मिला है इसका पदमावत के विभिन्न सस्कारो मे किस प्रकार रूपान्तर हुआ देखे—

क. भई सुसार जेवई नरनारी।—'पद्मावत' डा० वासुदेवशरण अग्रवाल, पृष्ठ ४६७

ख भई जेवनार न जेंवई बारी।—जायसी ग्रथावली, आचार्य प० रामचन्द्र शुक्ल, पृ० १७८

ग. होइ लाग जेवनार सुसारा।—पद्मावत, डा० माताप्रसाद गुप्त।

घ. होइ लाग जेवनार पसारा।—जायसी, ग्रथावली—आचार्य रामचन्द्र शुक्ल।

'सुसारा' शब्द के सम्बन्ध मे पर्याप्त विचार किया गया। डा० वासुदेवशरण अग्रवाल के अनुसार 'सुसार' 'रसोई की सामग्री' के अर्थ मे प्रयुक्त हुआ है। डॉ० माताप्रसाद गुप्त ने मोनियर विलियम्स कृत सस्कृत अंग्रेजी कोश के अनुसार 'सुरस' (Having good essence or sap) मो० वि० पृ० १२३८, द्वि० स०) अर्थ माना है। 'सुसारा' का प्रयोग रामचरितमानस मे भी हुआ है।

(क) भरि भरि बसहु अपार कहारा। पठई जनक अनेक सुसारा।
—रामचरितमानस काशिराज, संस्करण आचार्य पं० विश्वनाथप्रसाद मिश्र, पृ० १२४।
(ख) भरि भरि बसहु अपार कहारा। पठये जनक अनेक सुआरा।
—रामचरित मानस, सं० डा० श्यामसुन्दरदास, पृ० ३२४
(ग) भरि भरि बसहु अपार कहारा। पठये जनक अनेक सुसारा।
—सेलेक्शंस फ्राम हिन्दी लिटरेचर, सं० लाला सीताराम, जिल्द तीन, पृ० ८० सन् १९२३

उक्त अर्धालियो में पाठगत जो अन्तर प्रतीत होता है उससे 'सुमारा' शब्द के सम्बन्ध मे सपादको की अनभिज्ञता ही प्रकट होती है। डा० श्यामसुन्दर दास ने 'सुसारा' की जगह 'सुआरा' (रसोइया) पाठ स्वीकार किया और अन्य सपादको ने 'सुसारा' का कुछ भिन्न अर्थ समझकर 'पठये' क्रिया का पुलिंग मे प्रयोग किया। लाल सीताराम बी० ए० ने भी 'पठये सुसारा' पाठ ही दृढ़ता-पूर्वक ग्रहण किया। उन्होने खड्ग बिलास प्रेस के संस्करण को उत्तम मानकर मानस का पाठ वही से ले लिया। इन सबो मे डा० वासुदेवशरण अग्रवाल का ही अर्थ अधिक औचित्यपूर्ण प्रतीत होता है। इसी प्रकार 'पद्मावत' मे एक स्थान पर 'चाहि' शब्द मिला है, उसका भी भिन्न-भिन्न अर्थ उसके संपादको ने किया है —

(क) बांके चाहि बांक सुठि कीन्हा। औ सब को चट चित्र कै लीन्हा।
—डा० माताप्रसाद गुप्त, पृ० ४१९
(ख) बांके चाहि बांक गढ़ कीन्हा। औ सब कोट चित्र कै लीन्हा।
—आचार्य रामचन्द्र शुक्ल, जा० ग्रंथावली, पृ०२२४
(ग) बांकं चाहि बांक सुठि कीन्हा। औ सब कोट चित्र कै लीन्हा॥
—पद्मावत, डा० वासुदेवशरण
(छ) बांक चाह बांक गढ़ कीन्हा। और सब कोट चित्र कै लीन्हा॥
—लाला सीताराम बी० ए०, सेलेक्शंस फ्रा० हिंदी लिटरेचर

डा० माता प्रसाद गुप्त के अनुसार "गढ़ पहले से ही बांका था उसे और भी अधिक बांका किया गया।" डा० अग्रवाल के अनुसार "गढ़ को दृढ़ मे भी और अधिक दृढ़ बनाया गया।" आचार्य प० रामचन्द्र शुक्ल के अनुमार 'बांके चाहि बांक' का अर्थ 'विकत-से-विकट' है। लाला सीताराम ने 'चाहि' की जगह 'चाह' पाठ माना है। उनके अनुसार 'चाह' फारसी का शब्द है और उसका अर्थ खाई (Ditch) है। वस्तुतः गढ़ को सुरक्षित रखने के लिए खाई की महती अपेक्षा होती थी। अतः यहां लाला जी का अर्थ उत्तम प्रतीत होता है।

इसमें सन्देह नही कि प्रयोग साक्ष्य और पूर्ववर्ती अथवा कवि की समकालीन रचनाओ के आधार पर भी पाठ-शुद्धता विषयक औचित्य पर सम्यक् विचार किया जा सकता है।

चैत्र-भाद्रपद, शक १८९२]

डा० वासुदेवशरण अग्रवाल के अनुसार जायसी-कृत पद्मावत मे प्राप्त 'चतुरसम' पाठ को न समझने के कारण उसका पाठ 'चित्रसम' किया गया। फारसी मे 'चित्रसन' और 'चतुरसम" एक सा पढा जा सकता है। अत. चतुरसम पाठ सपादकों को क्लिष्ट लगा और चित्रसम सरल। जायसी के मान्य विद्वान् आचार्य पं० रामचन्द्र शुक्ल ने 'चित्रसम' पाठ ही माना यही नही, कही-कही शुक्ल जी ने चित्रसब' पाठ भी लिया है—

करि स्नान चित्र सब सारहु।—जायसी ग्रन्थावली पृ० १२१। शुद्ध पाठ 'चतुरसम' ही है। इसे डा० अग्रवाल ने पूर्ववर्ती रचनाओं से प्रभावित भी किया है, यथा—जायसी से दो शताब्दी पूर्व के 'वर्णरत्नाकर' मे भी चतु'सम' का प्रयोक मिला है —चतु.सम हथ लिये मण्डु—वर्णरत्नाकर, पृ० १३ 'वर्णरत्नाकर' से भी दो शती पूर्व हेमचन्द्र के 'अभिधान चिन्तामणि' से भी उन्होने इसे प्रमाणित किया है—

चंदन गुरु कस्तूरी कुकुमैस्तु चतुः समन्। चन्दनादि चत्वारि समान्यत्र चतुः समन्।
—अभिधान चिन्तामणि ३।३०३।

सबसे पुष्ट प्रमाण रामचरितमानस मे मिला है—

बीथीं सींची चतुरसम चौकें चारु पुराइ
—बाल कांड २९६।१०, काशिराज संस्करण।

डा० माताप्रसाद गुप्त ने भी पहले 'चित्रसम' पाठ ही अपनी जायसी ग्रंथावली—काशिराज सस्करण मे माना था, लेकिन 'मानस' के ऐसे प्रयोग को देख लेने पर उन्होने अपने पूर्व पाठ को त्याग दिया।' 'चतुरमम' सस्कृत के 'चतु सम' शब्द का विकृत रूप है, जिसका अर्थ—चन्दन, अगरु, कस्तूरी और केसर का समान अश लेकर निर्मित सुगन्ध है।

'काव्य निर्णय' के नवें उल्लास के एक दोहे के सम्बन्ध मे विचार करें। यह दोहा परम्परा से विकृत रूप मे ही ग्रहण किया जाता रहा—

'बालम कलिका पत्र अस, खौरि सजे सब गात।
लाल चहिबे जोग यह, चित्रित चंपक पात।'

विभिन्न हस्तलेखो और मुद्रित प्रतियों के आधार पर संपादित किये गये जाने पर पाठ परम्परा से यही मिला। काव्य-निर्णय की चार-पाँच मुद्रित प्रतियाँ मिलती हैं। सब मे यही पाठ मिला। मुद्रित प्रतियो का विवरण उस प्रकार है

(क) काव्य निर्णय स० रामकृष्ण वर्मा स० १९५६, भारत जीवन प्रेस काशी।

(ख) काव्य निर्णय स० नकछेदी तिवारी स० १९५५, वेंकटेश्वर प्रेस बम्बई।

(ग) काव्य निर्णय सं० जवाहरलाल चतुर्वेदी सं० २०१६, कल्याणदास, ज्ञानवापी वाराणसी।

(घ) काव्य-निर्णय सं० महावीरप्रसाद मालवीय 'वीर' सं० १९८३, बेलवेडियर प्रेस प्रयाग।

(ङ) काव्य निर्णय—सं० पं० विश्वनाथप्रसाद मिश्र सं० २०१४, काशी नवरी प्रचारिणी सभा

(च) काव्य निर्णय—प्रतापगढ़ की मुद्रित प्रति

उक्त दोहे का अर्थ प्रस्तुत पाठ से निकल न सका। अतः नये पाठ की संभावना करनी पड़ी और ज्योंही 'बालम कलिका' की जगह 'बाल मकलिका' पाठ किया गया अर्थ तत्क्षण लग गया। अब इसके अनुसार इसका अर्थ यों होगा—

"कृष्ण से निवेदन करती हुई सखी अथवा दूती कह रही है कि हे कृष्ण (लाल) बाल ने (राधा ने) चन्दन एवं मकलिका पत्र (एक प्रकार की शृंगारिक रचना जिसका प्रयोग रासलीला एव रामलीला मे अब भी होता है।) से अपने शरीर को अलंकृत कर रखा है, अत यह रंगे हुए चम्पक पत्र जैसे शरीर वाली नायिका प्राप्त करने योग्य है।"

इस 'मकलिका पत्र' की पुष्टि 'शृंगार-निर्णय' के एक छन्द से भी हुई है। उसमें भी 'मकलिका पत्र' से अनभिज्ञ संपादक ने 'कलिका सु' पाठ ही स्वीकार किया—

'काहे को कपोलनि कलित कै दिखावती है,
कलिका सु पत्रन की अमल हुचटि है॥
—शृंगार निर्णय, भारत जीवन छं० सं० २६२, पृ० ८९, प्रेस काशी।

इस दोहे के पाठ औचित्य के सम्बन्ध मे रीति-काव्य मर्मज्ञ आचार्य प० विश्वनाथप्रसादजी मिश्र से भी सम्पर्क स्थापित करना पड़ा। उनका जो उत्तर मिला, उसे दिया जा रहा है —

"काव्य-निर्णय" के सकेतित दोहे के सम्बन्ध मे मेरा ध्यान पुस्तक मुद्रित हो जाने पर गया था। आप जैसा कह रहे हैं, वही मैंने भी सोचा था। इस प्रकार आपका सुझाव निश्चय ही ठीक है। वह छापे के कारण पुस्तकों मे गलत मुद्रित होता आया है। 'मकलिका' और 'कलिका' मे 'कलिका' लोगों को परिचित लगा—इसी से पाठ वैसा रख दिया गया। 'शृंगार निर्णय' वाली 'मकलिका' यहाँ भी है।—(व्यक्तिगत पत्र से उद्धृत अंश)

इसी प्रकार काव्य निर्णय के पाँचवें उल्लास में प्राप्त एक दोहा का अत्यत भ्रष्ट पाठ मिलता है। केवल आचार्य पं० विश्वनाथ प्रसाद मिश्र द्वारा सपादित 'काव्य निर्णय' मे ही उसका शुद्ध पाठ दृष्टिगत हुआ है। दोहा इस प्रकार है—

'चंद मुखिन कुचन पर जिनको सदा बिहार।
अहह करं ताही करन, चरखन फेखदार॥
—काव्यनिर्णय : आचार्य भिखारीदास, पाँचवाँ उल्लास, सभा संस्करण।

इस अंश का पाठ विभिन्न प्रतियो मे किस प्रकार मिलता है—उसे देखें—

(१) भारत जीवन प्रेस काशी वाली प्रति का पाठ:–'चखन फे खदार'

(२) बेलवेडियर प्रेस प्रयाग वाली प्रति का पाठ—'चिरियन फैरवदार'

(३) वेंकटेश्वर प्रेस बम्बई की प्रति का पाठ—'चखदन फे खदार'

(४) कल्याणदास ज्ञानवापी वाराणसी का पाठ—'चँखन फैरबदार'

वास्तव में फेखदार' का अर्थ 'शृगालिनी' है उसे न समझने के कारण फैरबदार' आदि पाठ स्वीकार किया गया और चर्वण के अर्थ से अनभिज्ञ रहने के कारण चँखन आदि गढ़न्त पाठों की कल्पना करनी पड़ी। इस प्रकार के पाठ गढन्त के नमूने अन्यत्र मिलते हैं। ब्रज-भाषा के पुराने टीकाकार सरदार कवि ने 'रसिक प्रिया' की टीका मे इस प्रकार का स्पष्ट उल्लेख किया है कि किस तरह 'लौंच' (रिश्वत) शब्द से परिचित न रहने के कारण लोगों में किसी-किसी प्रति में 'लोच' कर दिया है। 'लोच' शब्द वाली पंक्तियाँ हैं—

"जा लगि लौंच लुगाइन दै दिन नाच नचावत साँझ पहाऊँ।"
—रसिकप्रिया, केशवदास ५।१२, प्र० सं०, पृ० ७५, नवलकिशोर प्रेस लखनऊ।

पाषाण मुद्रणालय मथुरा मे प्रकाशित ग्वाल कवि कृत 'कवि हृदय विनोद' मे एक शब्द 'बाँधनी पौरि' मिला है। इस शब्द से परिचित न रहने के कारण 'ग्वाल रत्नावली' के सम्पादक ने 'बाँधनी' और 'पोरि' दो भिन्न शब्दो की कल्पना कर ली और 'पौरि' की टिप्पणी दी है 'घर में' जो अर्थ की दृष्टि से नितान्त अशुद्ध है। 'संक्षिप्त शब्दसागर' मे भी इस शब्द के शुद्ध अर्थ को देखा जा सकता था। वहाँ इसका अर्थ इस प्रकार किया गया है—'बाँधनी पौरि'—पशुओ के बाँधने का स्थान (संक्षिप्त शब्दसागर' पृ० ८०३) 'बाँधनी पौरि' वाली पंक्तियाँ हैं—'फिर बाँधनी पौरि सुहावनि है।' (कवि हृदय विनोद पृ० ८९) इसी प्रकार 'कवि हृदय विनोद' के एक अन्य छन्द के पाठ की दुर्गति ही नही की गई, वरन् उसका बड़ा विचित्र रूप देखने को मिला है—

खासो है तमासो चलि देख सुखमा सों बीर,
कुंज में मवासी है मयूर मंजु लाल को।
चारु चाँदनी की चर विमल बिछावत पं,
चँदवा तन्योहै, रविनातीरंगलाल की।'
—ग्वाल रत्नावली, पृ० ६२, छ० स० ११८

अंतिम अश होना तो यों चाहिए—"री बनाती रगलाल की।' किन्तु सपादक जी ने उसे 'रविनाती' (सूर्य का नाती) समझा।

अब बिहारी सतसई के 'तेजरो' शब्द पर विचार करे। इस रूप में यह शब्द पहले-पहल लाला सीताराम बी० ए० कृत 'सेलेक्शंस फ्राम हिन्दी लिटरेचर' भाग छः मे देखने को मिला। वहाँ इसकी टिप्पणी मे लाला जी ने इसे फारसी का शब्द बतलाया है और

इसका अर्थ अपनी अंग्रेजी टिप्पणी में फास्टट्राटर (Fasttrotter) अर्थात् 'शीघ्रगामी घोड़ा' किया है। लेकिन 'उर्दू हिन्दी शब्द कोश में 'तेजरों' शब्द का अर्थ 'शीघ्रगामी' (पृ० ३०२) ही मिलता है, घोड़ा उसमें नही मिला। वस्तुतः 'तेजरों' पाठ की दृष्टि से अत्यंत भ्रष्ट प्रतीत होता है, क्योकि 'तेजरो' से आगेवाले शब्द 'हालवर' की संगति ठीक तरह से बैठ नहीं पाती। लालाजी ने अपने संकलित दोहों के मूलस्रोत पर भी विचार किया है। उनके अनुसार इसमे अन्यान्य प्रामाणिक पाठो के उपयोग किये जाने के अतिरिक्त पटना के स्वर्गीय अम्बिकादत्त व्यास के भी पाठ को ग्रहण किया गया है। जो भी हो उसमें पाठ की दृष्टि से आकलित बिहारी के प्रायः सभी दोहे अत्यंत शुद्ध हैं। रत्नाकर जी—'तेजरो हालकर' पाठ की जगह 'तेज रौहाल-बल' पाठ को शुद्ध माना—

जदपि तेज रौहाल बल पलकौ लगी न बार।
तौ ग्वैंड़ो घर कौं भयौ पंडौ कोस हजार॥
—बिहारी रत्नाकर, १४५, प्र० सं० पृ० ६४।

'रौहाल' शब्द को उन्होने फारसी 'रहवार' का विकृत रूप बतलाया है। इसका अर्थ उनके अनुसार 'चलनेवाला' है घोडे के अर्थ मे उसकी योग रूढि है। उर्दू-हिन्दी कोश मे 'रहवार' 'अश्व' के अर्थ मे मिला है, अत. यहाँ अश्व अर्थ उत्तम प्रतीत होता है।

'काव्य-मीमासा' मे राजशेखर ने शास्त्रीय और अलौकिक अर्थ निबन्धन को कवि-समय की संज्ञा दी है—

अशास्त्रीयमलौकिकंच परम्परायातं यमअर्थमुपनिबन्धन्तिकवयः स कविसमयः।
—काव्यमीमांसा १४ अध्याय, पृ० १९८।

कवि-समय की परम्पराओ के ज्ञान से अनेक स्थलो पर शुद्ध पाठ एवं अर्थ की संभाव्य स्थिति को निर्णीत किया गया है। कवि-समय का सम्यक् ध्यान न देने का दुष्परिणाम यह हुआ कि 'मतिराम सतसई' के एक दोहे का पाठ अत्यत भ्रष्ट एवं विकृत रूप में मिला। वास्तव में इस दोहे की प्रकृत व्यंजना दोहा विषयक कवि प्रसिद्धि में अन्तर्हित है, दोहा देखें—

चितवनि कुच परिरंभ मुख, सिद्ध चरन हति केलि॥
कियौं तिलक कर बकनिमिल, लाल बकुल के केलि॥
—मतिराम ग्रंथावली दो सं० ६५६।

यह शब्द अर्थ-औचित्य की दृष्टि से नितान्त भ्रष्ट है। यहाँ सिद्ध की जगह शुद्ध पाठ 'सीधु' (मुख मंदिरा) और 'करबक निमिल' की जगह 'कुरबक मिल्ति' पाठ होना चाहिए; क्योंकि दोहद विषयक इस कवि-प्रसिद्धि के सम्बन्ध मे ऐसा कहा जाता है कि स्त्रियों की चितवन से तिलक, कुचपरिरम्भण से 'कुरबक' सीध (मुखमदिरा) से बकुल और पद प्रहार (चरन-

हति) से अशोक रकंकोलि—विकसित होता है। 'कुमार संभव' में मल्लिनाथ ने अपनी टीका में भी उक्त कवि प्रसिद्धि की चर्चा की है।

पादाहतः प्रमदया विकसत्यशोकः शोकं जहाति बकुलो मुखसीधुसिक्तः।
आलिंगितः कुरबकः कुरुते विकासमालोकितास्तिलक उत्कलिको विभाति।
—कुमारसंभव : ३।२६, बम्बई का संस्करण, सं० १९६९।

कवि-परम्परा में हाथ की उपमा विद्रुम, पल्लव और कमल आदि से ही दी गई है और कमल और चन्द्र के सहज वैर की भी चर्चा की गई है। इसे पूर्ण रूप से विचार न करने के कारण सूरदास के एक टीकाकार ने हाथ का उपमान राहु के रूप में ग्रहण किया है। राहु उपमान के कारण पद का समस्त स्वारस्य और सहज लावण्य प्राय. नष्ट हो गया है, पद देखे—

देखो भाई दधि सुत में दधि जात।
एक अचंभो देखि सखी री, रिपु में रिपु जो समात।

उनकी टीका का अश यों है—"(कोई गोपी कहती है) सखि, श्रीहरि के मुख-चन्द मे दधि (पुत्र के अन्दर पिता) जाते देखा। दूसरा आश्चर्य यह देखो कि शत्रु '(चन्द्र) में शत्र (राहु) प्रवेश कर रहा है। मुख चन्द्र मे श्याम वर्ण हाथ रूप राहु समा रहा है।"
—श्रीकृष्ण माधुरी पद स० २७।

'रिपु में रिपु जो समात' का अर्थ इस प्रकार होना चाहिए—
चन्द्रमुख में उसका शत्रु कमल रूप हाथ प्रवेश कर रहा है।

अब कुछ ऐसे शब्दो पर विचार किया जायेगा जिनके पाठ की शुद्धता तो असदिग्ध है, लेकिन प्रसंग एवं अर्थ की दृष्टि से उनकी सगति सर्वथा भ्रामात्मक है। कुछ उदाहरण लें—सूर-काव्य के एक मान्य विद्वान् ने सुर सुषमा नामक ग्रथ मे सूर के कतिपय पदो की टिप्पणी अत्यन्त भ्रमात्मक रूप से दी है—सूर का प्रसिद्ध पद है—

सिखिन सिखर चढ़ि टेरि सुनायौ।
बिरहिनि सावधान ह्वै रहियौं सजि पावसदल आयौ॥
नव बादर बानैत पवन चढ़ि चुटकि दिखायौ॥

—सूर-सुषमा पद सं० ११९

'ताजो' (अश्व) के प्रसंग से 'चुटकि' 'कोड़ा' अथवा 'चाबुक' मारने के ही अर्थ मे आया है। 'चुटकि दिखायो' का अर्थ सम्पादक ने 'चटकदार देख पड रहा है।" लिखा है—जो उत्तम नही प्रतीत होता। चुटकि का प्रयोग बिहारी ने भी 'चाबुक मारने' के अर्थ मे किया है, देखें—

करे चाहु सौं चुटकि कै खरैं उड़ौहैं मैन।

—बिहारी रत्नाकर, दो० सं० ५४२

लाला भगवान दीन जी के अनुसार चुटकिया या चुटकना । सन की एक गावदुम लम्बी रस्सी (वेणी के आकार की) सी बनाई जाती है। घोड़े की उड़ान, सिखाने के लिए इसका प्रयोग किया जाता है। अतः स्पष्ट है कि चटकि यहाँ भी उसी अर्थ में है। इसी प्रकार 'सूर सुषमा' मे 'परेखो' का अर्थ 'प्रश्न' किया गया जो आनमानिक ही है । यहाँ 'परखो' दुख अथवा पछतावा अर्थ मे लेना अधिक उत्तम होगा, पक्ति देखें—'सूरदास प्रभु यही परेखो गोकुल काहैं बिसारों। 'परखो' का प्रयोग आलम केलि में भी दुख ही अर्थ में है—

'कहा एती बात को परेखो जिय मानिये।'

—आलम केलि, सं० लाला भगवानदीन छं० सं० १८८

सम्पादक की दूसरी पुस्तक 'सूर संदर्भ' मे 'सँधान्यौ' का अर्थ—बनाया है, परोसा है' देख कर आश्चर्य हुआ । सत्य तो यह है कि प्रसगानुसार यहाँ—सँधान्यों का अर्थ अचार' है । अवधी मे यह उसी अर्थ मे खूब प्रचलित है। ब्रजभाषा में भी इसी अर्थ में आया है, सूर की वह पक्ति देखे—

'निबुआ सूरन आम सँधान्यौ और करौंदनि की रुचि न्यारी।'

—सूरसंदर्भ पद सं० ५४

'पद्मावत' मे भी 'सधान' शब्द आया है, वहाँ भी आचार ही अर्थ है—

पुनि सँधान आए बहु साँधे। —पद्मावत २८४।

जायसी ग्रंथावली मे 'अछवाई' शब्द का अर्थ शुक्ल ने 'सफाई' दि ा है और इसी अर्थ को डा० माताप्रसाद गुप्त ने भी स्वीकार किया है, किन्तु 'सौन्दर्य' अर्थ में यह अधिक उत्तम प्रतीत होता है—

(क) रूप सुरूप सिंगार सवाई, अछरी जसि रहै अछवाई।

—आचार्य शुक्ल

(ख) आछरि जसि नागरि अछवाई॥

—डा० माताप्रसाद गुप्त

डा० वासुदेवशरण अग्रवाल ने 'कियदंश' मे 'अछवाई' को अमुक्त और सौन्दर्य अर्थ में स्वीकार किया है। इस 'अछवाई' शब्द का प्रयोग घनानन्द के एक छंद मे भी मिला है—

रति सांब हरी अछबाई भरी पिंडरीन गुराईयं पेखि परं ।
—रसखान और घनानन्द, डा० अमीर सिंह, पृ० ८६

यहाँ भी 'सुन्दरता' ही अर्थ है ।

जायसी सूर और तुलसी ने खरे सोने के लिए 'बारहबानी' शब्द का प्रयोग कियाहै 'बारह' की संख्या के आधार पर आचार्य प० रामचन्द्र शुक्ल ने पुराणोल्लिखित बारह सूर्य माना है और इसी कारण सूर की निम्न पंक्ति मे प्रयुक्त 'बारहबानि' की टिप्पणी मे लिखा है—'द्वादश वर्ण अर्थात् सूर्य की तरह चमकनेवाला खरा' पक्तियाँ है—

सोहत लोहपरसि पारस ज्यों सुबरन बारह बान्न।
—भ्रमर गीत-सार, पृ० १९, पंचम संस्करण

ऐसी भ्रामकात्मक टिप्पणी जायसी ग्रथावली मे भी है। 'बारहबानी' के साथ-ही-साथ दसबानी सोना का भी उल्लेख मिला है, विद्यापति ने अपने एक गीत मे दसबानी का प्रयोग किया है ।

विद्यापति हरि निकष समान,
निज तनु परखि हेम दस बान।'
—सेलेक्शंस फ्राम हिन्दी लिटरेचर सातवाँ भाग पृ० २१

'आईन-ए-अकबरी' मे बारहबानी' और 'दसवानी' सोने की चर्चा विस्तारपूर्वक की गई है, एतद् विषयक वह अश देखे—

'ईरान मे सबसे शुद्ध सोने को दहदही कहते थे (जिसमे हिन्दी डहडही बना)और वहाँ दसबान की शुद्धि अन्तिम समझी जाती थी, किन्तु भारत मे सोने को बारहबानी तक शुद्ध करते थे ।"

—आईन-ए-अकबरी, ब्लाखमंन, द्वि० सं० पृ०१६

मैथिल भाषा का 'पजियार' शब्द आधुनिक कोशो मे प्राय. नही मिलता। मिथिला मे वैवाहिक सम्बन्ध को वैधानिक रूप देने वाले 'पँजियार' कहे जाते है और उनका दिया गया प्रमाण-पत्र 'असुजन पत्र' कहा जाता है । विद्यापति की रचना मे 'शिववरात' के सिलसिले मे इसका प्रयोग यो किया गया है—

'कोन कयल यह असुजन के ओ न हिनक परिवार।
कयल जौ विनक निबन्धन भूक भूक से पँजियार॥
—सेलेक्शंस फ्राम हिन्दी लिटरेचर, पृ० २३

विद्यापति में प्रयुक्त 'बेवि' शब्द का अर्थ लाला सीताराम ने अपनी अंग्रेजी टिप्पणी में 'सौन्दर्य' दिया है; किन्तु वह अर्थ अशुद्ध है। 'बेवि' का अर्थ 'दो' होना चाहिए, ब्रजभाषा में 'बेवि'की जगह 'बिय' और 'बिवि' का प्रयोग दो' के अर्थ में 'बराबर' मिलता है—'बेवि सरोरुह ऊपर देखलि, अइसन दुतिय चन्दा।' 'बेवि सरोरुह' दो कमल (नेत्र) के लिए है।

'देव-सुधा' में मिश्र-बन्धुओं ने 'अचौन' का अर्थ कटोरा दिया है। यहाँ 'कटोरा की अपेक्षा' आचमन अधिक समीचीन प्रतीत होता है। इसी प्रकार 'परसी मरौ' (देव-सुधा छं० सं० १७३) का अर्थ 'परसी मछली की तरह मरती हूँ" सर्वथा असंगत है। यहाँ 'परसी—'स्पर्श' अर्थ मे ही प्रयुक्त हुआ है। मिश्र-बन्धुओ ने देव के एक अन्य छन्द में 'मनोज' का अर्थ 'चित्त प्रसन्नकरने वाली' किया है। लेकिन छन्द-गत प्रसंग को देखते हुए यह अर्थ उत्कृष्ट नहीं प्रतीत होता—

सोधो सुधा बिन्दु-मकरन्द सी मुकुत माल,
लपिटी मनोज तरु-मंजरी शरीर है॥
—देव सुधा मिश्र-बन्धु प्र० सं० पृ० ८८

यहाँ मनोज 'तरु' का विशेषण है—अत: 'मनोज' तरु 'कल्पक्ष' के लिए आया है। अब पूरी पंक्ति का अर्थ देखे—"शुद्ध अमृत एवं मकरन्द बिन्दु उज्ज्वल मौतिक माला" कल्पवृक्ष रूपी शरीर मे लता की भाँति लिपटी है।" इसी प्रकार "अंक मे आप मयकमुखी लई लाल को बक चितै दृग कोरनि।" के पाठ एव अर्थ दोनो के सम्बन्ध मे डा० नगेन्द्र ने संदेह व्यक्त किया है। यही कारण है कि देव के इस छन्द की उत्कृष्टता की दाद वे न दे सके। उन्होने इस पंक्ति के वाक्य-विन्यास को व्याकरणीय दृष्टि से अनुत्तम माना है, लेकिन विचार करने पर इसके वाक्य-विन्यास पर सदेह नही किया जा सकता। इसका अर्थ भी स्पष्ट है—

"अंक में आने पर वक्रदृष्टि से देखती हुई मानिनी नायिका ने नायक को (अपनी छाती मे) लिपटा लिया।"

डा० नगेन्द्र ने देव के एक अन्य छन्द मे व्याकरणीय दृष्टि से दोष माना है, किन्तु गम्भीरता-पूर्वक विचार करने पर उक्त छन्द मे किसी भी प्रकार का दोष परिलक्षित नहीं होता—

"पायनि के चित चायन को बल लीलत लोग अथाइन बैठ्यो।'
—देव और उनकी कविता, डा० नगेन्द्र, प्र० सं० पृ० २१०

उन्होंने बैठ्यो क्रिया का प्रयोग 'लोग' के साथ अच्छा नहीं माना। उनके अनुसार लोग बहुवचन के साथ 'बैठ्यो' एक वचन की क्रिया ठीक नही है। लेकिन यहाँ 'बैठ्यो' शब्द विशेषण के रूप में प्रयुक्त हुआ है और 'लीलत' वर्तमानकालिक क्रिया का द्योतन स्पष्ट रूपेण कर रहा

है। यहाँ 'बैठकों में बैठे हुए लोग' के अर्थ में 'लोग अथाइन बैठ्यो' का प्रयोग हुआ है।

लाला भगवानदीन ने देव के छन्द में बदमुहावरे की प्रायः शिकायत की है। उनके अनुसार "लाजनि ह्रौं लरजौं गहिरी बरजौं गहिरी कहिरी केहि दायन" (सुख सागर तरंग, देव कवि-कृत, प्र० सं० पृ० २१० छ० सं० ५२४ सन् १८९७ में मुद्रित) में 'गहिरी लरजना' और 'गहिरी बरजना' उत्तम मुहावरा नही है, किन्तु बात ऐसी नहीं है। 'गहि री' यहाँ विशेषण न हो कर पूर्वकालिक क्रिया के रूप मे प्रयुक्त हुआ है। पूरी पंक्ति का अर्थ यों होगा—"नायिका अपनी सखी से कह रही है, हे सखी, नायक मेरी इतनी सेवा करता है कि मैं लज्जा के कारण अत्यन्त काँप रही हूं। भला, तूही बतला, मैं उसे किस प्रकार से पकड़ (गहि) कर मना करूँ।"

"कवितावली' के 'पातभरी सहरी सकल सुत बारे बारे' को लेकर विद्वानो में पर्याप्त विवादैषणा का मैदान तैयार हुआ। सच बात तो यह है कि परम्परा से इसका अर्थ सर्वथा भ्रमात्मक एवं अपूर्ण मिला। लाला भगवानदीन ने 'पातभरी सहरी' का अर्थ 'पत्तल या मछली' किया है। कुछ इसी प्रकार का अर्थ गीता प्रेस से प्रकाशित 'कवितावली' के टीकाकार ने भी किया है, लेकिन सबसे विलक्षण अर्थ प्रयाग से प्रकाशित चन्द्रशेखर शास्त्री की टीका में देखने को मिला और उससे विलक्षण अर्थ ब्रजभाषाविद् प० जवाहरलाल चतुर्वेदी के एक एक लेख मे मिला। यह लेख चतुर्वेदीजी ने 'पोद्दार अभिनन्दन ग्रंथ' मे प्रकाशित किया है। उस लेख के अनुसार 'पातभरी सहरी' का अर्थ इस प्रकार है—"सहरी का वास्तविक अर्थ जल मे चलने या रहने वाला होता है। अत: 'सहरी' का अर्थ मछली ही क्यो माना जाय? जब कि जल मे चलने वा रहने के कारण उसका अर्थ नौका (नाव) भी हो सकता है, जो कि यहाँ अभीष्ट है। 'भरी' का अर्थ भी तुल्य बराबर और हलकेपन का द्योतक है।'— पोद्दार अभिनन्दन-ग्रन्थ, पृ० ५५१। बहुत छानबीन करने पर पता चला कि सुलतानपुर के आस-पास 'पातभरी सहरी' मुहावरे के अर्थ मे अब भी प्रयुक्त होता है। वहाँ उसका अर्थ 'दीन' असहाय आदि रूप में ग्रहण होता है, यथा—'अमुक व्यक्ति' के मर जाने पर उसके बच्चे पातभरी मछली की भाति असहाय एव दीन हो गये। केवट के छोटे-छोटे बच्चो की दैन्यावस्था की व्यंजना पत्ते-भर उन मछलियों से ही हो जाती है, जिनका जीवन पानी के अभाव मे असहाय और क्षण मे नष्ट हो जानेवाला है। केवट के लिए मात्र नाव ही पत्ते भर मछली की भाँति दीन बच्चों के लिए सहारा है।

—(डॉ०) किशोरी लाल

पुस्तक-परिचय

बौद्ध सिद्धों के चर्यापद : लेखक--आचार्य परशुराम चतुर्वेदी; प्रकाशक : भारतीय विद्या प्रकाशन, वाराणसी-१; मूल्य, छह रुपये।

बौद्ध सिद्धों की रचनाओं का हिन्दी सन्त कवियों पर पर्याप्त प्रभाव पड़ा है। सन्त-साहित्य के गम्भीर अध्येता होने के नाते आचार्य परशुराम चतुर्वेदी ने उसके प्रधान उपजीव्य ग्रन्थों का भी अनुशीलन-मनन किया है। उसी के परिणामस्वरूप प्रस्तुत पुस्तक में सिद्धों के चर्यापदों का गवेषणात्मक अनुशीलन प्रस्तुत किया गया है।

इसके 'उपक्रम' मे आचार्य चतुर्वेदी जी ने 'चर्यापद' का पारिभाषिक अभिप्राय बताकर इस विषय पर प्रकाशित अब तक के समूचे अध्ययन का संक्षिप्त परिचय दिया है और चर्या पदों की सख्या निर्धारित करते हुए उनके रचनाकाल के सम्बन्ध मे अपने संतुलित विचार प्रस्तुत किये हैं। 'चर्यापद के रचयिता' शीर्षक द्वितीय अध्याय में उन्होने इनके रचयिताओं का सक्षिप्त परिचय दिया है; तीसरे, चौथे और पाँचवें अध्यायों मे क्रमश. उनकी दार्शनिक, धार्मिक पृष्ठभूमि, समाज एवं संस्कृति पर उनके प्रभाव तथा साहित्यिक क्षेत्र मे उनके योगदान का समाकलन किया है, अगले दो अध्यायों में चर्यापदों की भाषा तथा छन्द-योजना पर प्रकाश डाला है। उपसंहार में उनके समूचे कृतित्व का मूल्यांकन है। लगभग सवा सौ पृष्ठों की इस भूमिका मे चतुर्वेदी जी ने सिद्ध-साहित्य सम्बन्धी ज्ञातव्य सामग्री का सार-संकलन कर आगे अध्येताओं की सुविधा के लिए मूल चर्यापदों का पाठ भी सम्पादित कर दिया है।

बौद्ध चर्यागीतियों का संग्रह सर्वप्रथम सन् १९१६ ई० मे स्व० महामहोपाध्याय हरप्रसाद शास्त्री के "बौद्ध गान ओ दोहा" ग्रंथ में प्रकाशित हुआ। इसके बाद श्री विजयचन्द्र मजूमदार, डॉ० सुनीति कुमार चटर्जी, डॉ० शहीदुल्ला, डॉ० सकुमार सेन, डॉ० प्रबोधचन्द्र बागची, डॉ० शशिभूषण दास गुप्त आदि अनेक बंगाली विद्वानों ने सिद्ध-साहित्य के विभिन्न पक्षों पर कार्य किया। इनमें से अधिकांश विद्वानों ने लगभग सभी सिद्धों को बंगाल का निवासी माना और उनकी भाषा को बँगला का पूर्वरूप सिद्ध किया। आगे चलकर आर्तवल्लभ महान्ती आदि ने कुछ सिद्धों को उत्कल प्रदेश का निवासी और उनकी भाषा को प्राचीन ओड़िया सिद्ध किया। कुछ समय पूर्व डॉ० काकती, डॉ० डिम्बेश्वर नेओग, श्री के० एल० बरुआ आदि ने मीननाथ, महीधर, दारिकपा आदि को असम निवासी सिद्ध किया और उनकी भाषा को असमिया का पूर्वरूप माना। उधर डॉ० उमेश मिश्र आदि

सिद्धों का सम्बन्ध मिथिला से जोड़ने पर जुटे रहे। इसका परिणाम यह हुआ कि सिद्धों के सम्बन्ध में एक ऐसा शास्त्रार्थ खड़ा हो गया जिसे चतुर्वेदीजी के शब्दों में बहुत कुछ खींचातानी पर आधारित, निरर्थक अथवा हास्यास्पद तक ठहराया जा सकता है।

हिन्दी के लेखकों में इस विषय पर सर्व प्रथम चर्चा करनेवाले स्व० राहुल सांकृत्यायन जी थे। उनके विचारों का कुछ अंश फ्रेंच भाषा में अनूदित होकर १९३४ ई० मे ही प्रकाशित हो चुका था। 'गंगा' पत्रिका के पुरातत्वांक मे उन्होंने एतद्विषयक अनेक महत्वपूर्ण निबंध प्रकाशित कराये और फिर 'पुरातत्व निबन्धावली' में हिन्दी के प्राचीनतम कवि और कविताएँ शीर्षक निबन्ध प्रस्तुत किया। अन्त मे बिहार राष्ट्रभाषा परिषद् पटना से उनका 'सरहपादकृत दोहाकोश' भी प्रकाशित हुआ जिसमें सरह की अनेक रचनाओं के तिब्बती अनुवाद भी हैं। राहुलजी के विचार पूर्वग्रह-रहित हैं, इसलिए आचार्य चतुर्वेदी जी ने उन्ही के निष्कर्षों का अधिकतर प्रतिपादन किया है। राहुलजी ने ही सर्वप्रथम विद्वानो का ध्यान इस महत्वपूर्ण तथ्य की ओर दिलाया कि "न केवल सिद्ध गोरखनाथ जैसे नाथ पंथी, प्रत्युत रामानन्द, कबीर, नानक, दादू आदि से राधास्वामी दयाल तक सभी सन्त इन्ही चौरासी सिद्धों की टकसाल के सिक्के थे।.... वस्तुतः चौरासी सिद्ध नालन्दा और विक्रमशिला से सम्बद्ध थे। जब तक नालन्दा विक्रमशिला को बंगाल नही ले जाया जाता, तब तक सिद्धों की भाषा भी बँगला नही हो सकती।" आचार्य चतुर्वेदी जी का कथन है कि "मगही और अंगिका जैसी बिहारी बोलियों तथा बंगला एवं असमी तक के मूल रूप का एक ओर अभिन्न होना सम्भवत. सरलतापूर्वक सिद्ध किया जा सकता है और यदि उस आधारभूत भाषा को हम केवल 'मागधी अपभ्रंश' का नाम दे सकें तो ऐसा करना अनुचित भी नही कहला सकता।" (पृ० ११२) पुनः उपसंहार मे उन्होंने लिखा है कि "इन चर्यापदो की भाषा वस्तुतः प्राचीन 'मागधी अपभ्रंश' का प्रतिनिधित्व करती है तथा इनमे उसका वह रूप सुरक्षित है जिसे उपर्युक्त सभी प्रान्तीय भाषाओं का मूलाधार कहा जा सकता है। वैसी दशा में इन रचनाओं का महत्त्व भाषा-विज्ञान की दृष्टि से कही अधिक बढ़ सकता है।" (पृ० १२४) चतुर्वेदी जी के विचार कितने सन्तुलित हैं, इसे बताने की आवश्यकता नही।

आपाततः बौद्धदर्शन तथा तंत्र की ही खोज आवश्यक समझी जा सकती है, किन्तु इस पर शैव शाक्त तंत्र का भी प्रभाव युगपद् रूप मे पड़ा हुआ प्रतीत होता है। जिस वर्ष आचार्य चतुर्वेदी जी की प्रस्तुत पुस्तक प्रकाश में आई उसी वर्ष मधुबनी (दरभंगा) के डा० जयधारी सिंह का शोधप्रबंध "बौद्ध गान में तान्त्रिक सिद्धान्त" (मैथिली भाषा मे) भी प्रकाशित हुआ जिसमें सिद्धों के इसी पक्ष पर कुछ मौलिक विचार प्रस्तुत किये गये हैं। यद्यपि उनकी सभी मन्यताएँ सर्वथा स्वीकार्य नही हैं, फिर भी उनके इस शोधकार्य से सिद्धसाहित्य की एक नवीन दिशा का उद्घाटन होता है। आशा है, आचार्य चतुर्वेदी सदृश विद्वानों का ध्यान उसकी ओर आकृष्ट होगा।

आचार्य चतुर्वेदी जी की प्रस्तुत पुस्तक का महत्त्व इस तथ्य मे निहित है कि चर्यापदों

के सम्बन्ध में अब तक विभिन्न विद्वानों द्वारा जो भी सामग्री प्रकाश मे लाई गई थी उसका सार संकलन बहुत ही सुलझी हुई सरल शैली में यहाँ प्रस्तुत किया गया है। सन्त-साहित्य की अनेक गुत्थियाँ सुलझाने में शोधार्थियो को चतुर्वेदी जी के इस विशिष्ट अनुशीलन से अत्यधिक सहायता प्राप्त होगी। इतना अवश्य कहा जा सकता है कि मूल चर्यापदों के साथ यदि आचार्य जी ने अपनी व्याख्या भी प्रस्तुत कर दी होतीं तो इस पुस्तक की उपयोगिता और भी बढ़ जाती।

—(डॉ०) पारसनाथ तिवारी

हिन्दी का समस्या पूर्ति-काव्य : लेखक—डाक्टर दयाशकर शुक्ल; प्रकाशक—गंगा-पुस्तकमाला कार्यालय, लखनऊ, मूल्य, पच्चीस रुपये।

डा० श्री दयाशंकर शुक्ल कृत 'हिन्दी का समस्यापूर्ति-काव्य' अपने प्रस्तुत स्वरूप मे गहन अनुशीलन और मौलिक चिन्तन का संवाहक तथा लेखन-प्रविधि के स्तर पर प्रबंधात्मकता का पूर्ण निर्वाहक 'शोधग्रंथ' है। यह लेखक की व्यापक शोध-दृष्टि से अन्वेषित तथ्यो के कोश-रूप में शोध-परम्परा के स्वस्थ्य विकास की सूचना देता है। समस्यापूर्ति का काव्य स्वयं मे पर्याप्त रोचक होते हुये भी विचारको के मध्य अब तक नितान्त 'अछूता' था, फलतः इसका समुचित मूल्याकन नही हो पाया। सर्वप्रथम डा० शुक्ल ने पूरी साहसिकता और दृढ़ तत्परता के साथ ऐसे नवीन विषय पर वैदुष्यपूर्ण कार्य उपस्थित किया, जो मात्र प्रशंसनीय ही नही, स्तुत्य भी है। मेरी धारणा है कि वे इस क्षेत्र के भावी शोधकों के लिए सदैव मार्ग-निर्देशक रहेगे और उनकी कृति का 'ऐतिहासिक महत्त्व' अक्षुण्ण रहेगा।

उक्त शोधप्रबन्ध 'उपसहार' को छोड़कर मुख्यतः आठ विशद अध्यायो मे परिपूर्ण हुआ है। आरम्भत. समस्यापूर्ति-काव्य का स्वरूप स्पष्ट करने के ध्येय से 'समस्या' शब्द की व्युत्पत्ति, समस्यापूर्ति-काव्य के विविध लक्षण, उद्देश्य एवं वैशिष्ट्य आदि का विवेचन 'कामसूत्र', 'अग्निपुराण', 'शब्द-कल्पद्रुम' तथा अन्य संस्कृत-ग्रन्थों के आधार पर किया गया है। मुक्तक के दो भेद—भावमुक्तक और चमत्कार मुक्तक बताते हुए डा० शुक्ल ने समस्यापूर्तिकाव्य को चमत्कार मुक्तक की सीमा मे स्वीकार किया है और मत-विशेष अथवा सदर्भ-विशेष से सबधित पूवग्रहों से शत-प्रतिशत मुक्त रह कर समस्यापूर्तिकाव्य के 'स्वभाव' पर एक निर्भ्रान्त स्थापन दे दिया है—"समस्यापूर्ति-काव्य के रूप में भाव-सृष्टि कम और चमत्कार-सृष्टि अधिक हुई है।" —पृ० ३। आगे यह भी उद्घाटित कर दिया गया है कि इसमें बुद्धि-तत्त्व पर आश्रित वाग्वैचित्र्य का प्राधान्य है—'बुद्धि एव विचारत्तव पर आधारित उक्ति-वैचित्र्य और कौतूहल-प्रदर्शन इस काव्य मे अधिकाशतः मिलता है। —पृ० १८। तात्पर्य यह कि उन्होने कही भी विकृति को संस्कृति और सस्कृति को विकृति सिद्ध करने मे तत्पर शास्त्रार्थ-वृत्ति के उपासक 'पारंगतो' की हठधर्मिता को वरेण्य नही माना है। यह प्रसन्नता की बात है। एक उत्कृष्ट समीक्षक से जो वांछित है, वह कुछ इसी प्रकार का 'ताटस्थ्य' है, जिसका विरल दृष्टान्त उन्होने प्रस्तुत किया है।

यह सत्य है कि डा० शुक्ल की यात्रा 'विषम" से 'सम' की ओर रही है। 'प्रबंध-चिन्तामणि', 'भोजप्रबन्ध', 'अलंकारशेखर' आदि ग्रंथों में समस्यापूर्तिगत काव्यप्रवृत्ति को रेखांकित करना सहज न था। विद्वान् लेखक ने मनोयोगपूर्वक समस्यापूर्ति से सम्बद्ध उन प्राचीन सूत्रों की खोज की है,जो परिपाटी से चलकर मध्यकालीन और आधुनिक साहित्य में गृहीत हुए। हिन्दी—इतर भाषा के साहित्य मे भी 'समस्यापूर्ति' के उदाहरण मिलते हैं 'प्रबंध' मे एक ओर जहाँ मराठी के समस्यापूर्तिकाव्य पर सस्कृत साहित्य के प्रभाव की चर्चा हुई है, वही दूसरी ओर हिन्दी-समस्यापूर्ति-काव्य के समानान्तर उर्दू के 'तरह' काव्य को लाकर दोनों की स्वगत प्रवृत्तियो का सैद्धान्तिक रूप मे तुलनात्मक विवेचन भी हुआ है (दे० पृ० ६९)। यह कार्य निश्चय ही श्रमसाध्य रहा है। मेरे 'विषम से सम की ओर' कहने का तात्पर्य इसी मे सन्निहित है।

'प्रबन्ध' का चौथा अध्याय, लेखक के अनुसार, सर्वाधिक महत्वपूर्ण है याकि इसे अपेक्षाकृत अधिक महत्व देकर लिखा गया है और इसमे सन्देह नही कि यह किंचित् परिवर्द्धन के साथ एक स्वतन्त्र ग्रंथ बन सकता है। इस अध्याय को कुल १४२ पृष्ठ अर्पित हैं। यदि केवल इतना ही अंश सामने रखकर विचार किया जाय तो मनना पडेगा कि यह अपने-आप मे स्वत. एक प्रामाणिक, प्रौढ़ और सुविख्यात अनुसन्धान है। इसमें अनेक पत्र-पत्रिकाओं से एकत्र किये हुए समस्यापूर्ति-विषयक छन्दों तथा उनके पूर्तिकारों के जीवन-वृत्त का समावेश है। इसके अतिरिक्त 'टिप्पणी' में 'काव्य सुधाघर', 'रसिक-वाटिका'—जैसे अनुपलम्य पत्रों के संबंध में जो सूचनायें मिलती हैं, वे अत्यन्त महत्वपूर्ण हैं।

'समस्यापूर्ति' के भेद-प्रभेद का विवरण भी व्यवस्थित है। अधिक उत्तम होता, यदि सुधी लेखक ने अपने पक्ष से इस प्रसंग में कुछ और कहा होता। इससे पूर्ववर्ती विद्वानो के 'वर्गीकरण' मे यत्र-तत्र दीखनेवाली विसगतियों का निराकरण हो जाता है और अध्येता को नयी सामग्री भी मिलती है। अगले पृष्ठो पर आलोच्य कविता की रस-अलकार-मूलक भारतीय काव्यशास्त्र के निकष पर जो परीक्षा हुई है, वह युक्तियुक्त और सुविचारित है। अंतिम अध्याय 'प्रबन्ध' की समृद्धि के प्रतिवादन मे बहुत सहायक है। समस्यापूर्ति-काव्य मात्र कविगोष्ठी अथवा सभा से कोरी प्रशंसा बटोरने वाला चमत्कारी साहित्य ही न था, प्रत्युत उसमे समाज का यथार्थ प्रतिबिम्बन भी होता था—इस तथ्य का ज्ञापक है 'समस्यापूर्ति-काव्य और समसामयिक समाज'—जिससे 'भारतेन्दु' तथा उनके परवर्ती कवियो के युग के अंग्रेजी शासन से दबे जनसमाज का जीवन्त इतिवृत्त उभरता है। 'आधुनिक युग' के आरंभिक दशकों की सामाजिक, साहियिक एव भाषागत स्थितियों के सूक्ष्म पर्यवेक्षण के लिए यह शोध-ग्रंथ उपादेय, अतः पठनीय है।

इस कृति के लिए डा० श्रीदयाशंकर जी शुक्ल हार्दिक बधाई लें। आशा है, वे इसी प्रकार अपनी नवीन कृतियों से हिन्दी-जगत् को समृद्ध करते रहेंगे।

—(डॉ०) त्रिभुवननाथ सिंह

कुणाल (ऐतिहासिक नाटक) : लेखक—डा० रामगोपाल शर्मा 'दिनेश'; कल्याणमल एण्ड सन्स, जयपुर। मूल्य, तीन रुपये ।

डा० दिनेश के अब तक आठ नाटक प्रकाशित हो चुके हैं। आपके नाटकों की सबसे बड़ी विशेषता यह होती है कि उनमें एक ओर जहाँ भारतीय जीवन के परम्परागत पोषकतत्व स्वीकृत मिलते हैं, वहाँ दूसरी ओर अधुनातम स्वस्थ जीवन धारणाओं का भी आख्यान किया जाता है। 'कुणाल' नाटक मे भी हमे उनकी यह नाट्य-दृष्टि आरम्भ से अंत तक व्याप्त मिलती है।

इस नाटक मे तिष्यरक्षिता और कुणाल के जीवन की महत्त्वपूर्ण घटना को आधार बनाया गया है। इतिहास-ग्रन्थों मे उल्लेख है कि, "अशोक की बड़ी रानी पद्मा का पुत्र कुणाल अत्यन्त सुन्दर था। अशोक की छोटी रानी तिष्यरक्षिता ने उसके रूप पर मुग्ध होकर उससे प्रणय-सम्पर्क की कामना की। कुणाल सौतेली माँ के इस आचरण पर क्षुब्ध हो गया, जिसका बदला तिष्यरक्षिता ने कुणाल की आँखें निकलवा कर लिया। उस समय कुणाल तक्षशिला मे था। जब वह भिक्षु बन कर पाटलिपुत्र आया और अशोक को मालूम हुआ तो उसने तिष्यरक्षिता को जीवित जलवा दिया। कुणाल को देव-कृपा से पुनः आँखें प्राप्त हो गईं। डा० दिनेश ने इस लघु घटना को कल्पना-दृष्टि देकर एक बृहत् आयाम मे प्रस्तुत किया है। तिष्य-रक्षिता में यौवन की मदान्धता जहाँ कलात्मक अभिरुचि के साथ प्रस्तुत हुई है, वहाँ कुणाल का सयम एवं मातृत्व भाव भी सदाचार-शास्त्र का अग न बन कर, व्यावहारिक जीवन की मर्यादा के रूप मे प्रस्तुत हुआ है। तिष्यरक्षिता के चरित्र को जहाँ इतिहास ने गिराने की चेष्टा की है, वहाँ प्रस्तुत नाटक में उसे समस्त नारी-गरिमा के साथ उद्घाटित किया गया है। वह कलिंग-युद्ध मे अशोक को हत्याओं से विरत करती है, किन्तु उसके बौद्ध हो जाने के बाद निरन्तर उसके मार्ग की अव्यावहारिकता की उपेक्षा करती है और उसे व्यावहारिक जीवन में रुचि लेने की प्रेरणा देती रहती है। उसमे यौवन-जन्य जो वासना है, वह उसके चरित्र का दोष न होकर प्रकृति की माँग है, जिसे अशोक की उपेक्षा के कारण अविवेक का मार्ग मिलता है, किन्तु शीघ्र ही वह सम्हल भी जाती है। राजा के पश्चात् उसका द्वेष कुणाल को अंधा बनाने की कल्पना तो करता है, किन्तु राजमुद्रा प्राप्त हो जाने के पश्चात् आदेश भेजते समय वह दुहरी व्यवस्था कर देती है। क्रोध में आकर मंत्री के नाम लिखे गये कुणाल को अंधा बनाने के आदेश के विपरीत वह कुणाल को यह आदेश भेजती है कि तुम आँखों पर पट्टी बाँधकर काँचना के साथ भिक्षा माँगते हुए पाटलिपुत्र जाओ। निश्चय ही कथा में इस प्रकार जो मोड़ दिये गये हैं, उनसे इतिहास के अंधकार में प्रकाश की नयी किरणें फूटी हैं। लेखक ने वृद्धावस्था में बौद्ध अशोक से नारी को जीवित जलाने का अविश्वसनीय और गर्हित कृत्य भी नहीं कराया। अशोक ने प्रजा के हित के लिये जो कार्य किये थे, उनके गर्भ से लेखक ने तत्कालीन जनता की उन विपत्तियों की भी कल्पना की है, जो वैज्ञानिक सुविधाओं

के अभाव में उस समय अशोक के विशाल साम्राज्य में अवश्य ही घटित हुई होगी; किन्तु जिन्हें इतिहासकार अभिलेखों से प्रमाणित नहीं कर सके। दुर्भिक्ष आदि इसी प्रकार के संकट हैं, जो आज भी भारत मे कहीं-न-कहीं अपनी टाँगें फैला ही देते हैं। लेखक ने न तो इतिहास के सत्य को अप्रमाणिक होने दिया है और न उसे वर्तमान से असम्बद्ध ही दिखाया है। इस प्रकार यह नाटक पाठकों को भारतीय जीवन के एक दीर्घ परिवेश से जोड़ता है।

जहाँ तक शिल्प का प्रश्न है, इस नाटक मे अत्याधुनिक नाट्य-कौशल का प्रयोग किया गया है। रंग-मच की सभी नवीन दृष्टियो को ध्यान मे रखकर दृश्यों की योजना की गई है। सवाद छोटे-छोटे और परस्पर जुड़े हुए चलते हैं तथा धीरे-धीरे रहस्यो का उद्घाटन करते हैं। पूर्व-दीप्ति शैली के माध्यम से कलिंग-युद्ध की घटना प्रस्तुत कर के कथा को रोचक बनाया गया है एव अपेक्षित विस्तार भी मिला है। जहाँ-तहाँ आवश्यकतानुसार लघु गीतों की भी योजना है। कुल मिलाकर यह नाटक विषय और जीवन-दृष्टि का सुरुचिपूर्ण प्रभाव पाठक पर डालता है।

—(डॉ०) ब्रजमोहन जावलिया

प्रवचन-पीयूष : संकलनकर्त्ता— श्री रामजीवन चौधरी, प्रकाशक— परमार्थ आश्रम, सप्तसरोवर, हरिद्वार; मूल्य, एक रुपया पचीस पैसे।

यह पुस्तक ब्रह्मलोकवासी स्वामी शुकदेवानन्द जी महाराज के २२ प्रवचनो का सकलन है। स्वामी शुकदेवानन्द जी युगद्रष्टा सन्यासी एव समाज की सेवा को लक्ष्य मे रखकर आत्म-साधन करनेवाले कर्मयोगी तथा ज्ञान-योगी थे। उनके ये प्रवचन समय-समय पर भक्तों के बीच तथा विशेष आयोजनो के अवसर पर हुए थे। श्री रामजीवन चौधरी ने इनका संकलन कर इनको प्रकाशित करवाया है, जिससे दूसरे जिज्ञासु भी इन प्रवचनो का लाभ उठा सकें। उनका यह शुभ सकल्प भौतिकयुग की आस्थाओ का अपवाद है, निष्काम एवं श्रेयस्कर है, वे धार्मिक जनता के साधुवाद के पात्र हैं।

स्वामी शुकदेवानन्द जी का जीवन लोकोपकार तथा समाज के हित-चिन्तन मे ही बीता था। उनके इन प्रवचनो मे उनके गहन अनुभवों तथा विचारों का दर्शन हमे होता है, उन्होंने शास्त्रीय जटिल तथ्यो को सरल भाषा और सुबोध शैली मे प्रकट कर दिया है। इन प्रवचनों को पढने से हमे जीवन की वास्तविक दिशा की प्रेरणा मिलती है, कर्मठ बनने की और अपने यथास्थित जीवन को अधिक उज्ज्वल बनाने की। कुछ प्रवचन अत्यधिक प्रेरणाप्रद हैं—आत्यन्तिक दुःख की निवृत्ति कैसे हो? मनुष्य की पहचान, मन को शुद्ध बनाओ; बीज, खेत और फल, लक्ष्य से जीवन का परिवर्तन; अपने सुधार से सबका सुधार।

भौतिक अभ्युदय की उत्कट सीमा में भी ऐसे प्रवचनों का महत्त्व समाज के लिए बना रहेगा। प्रायः जीवन के जिस सदाचार का ह्रास आत्यन्तिक भौतिक उन्नति मे हो जाता है, समाज मे वह सदाचार सन्तों के ऐसे प्रवचनों से ही सजीवन पाता है। स्वामी शुक-

देवानन्दजी के प्रवचन ऐसे ही हैं। इनसे हमको आत्मबल मिलेगा। पुस्तक सर्वथा संग्रहणीय है। मूल्य लागत मात्र है।

मानविकीय शोध (वार्षिकी १९७०) : सम्पादक—श्री क्षेत्रपाल; प्रकाशक—रिसर्च स्टडी सर्किल, इलाहाबाद विश्वविद्यालय, इलाहाबाद।

इस वार्षिकी में आठ शोधलेख तथा अन्त मे शोध-परिचर्या के सम्बन्ध में इलाहाबाद विश्वविद्यालय के हिन्दी-विभाग के अध्यक्ष डा० लक्ष्मीसागर वार्ष्णेय से लिया गया एक इण्टरव्यू है। शोध-लेख रिसर्च स्नातको के हैं जो वर्तमान में विश्वविद्यालय के ही शोध-छात्र हैं, इस रूप मे यह वार्षिकी शोधछात्रों की है। दो-तीन निबन्ध इस वार्षिकी मे अच्छे बन पड़े हैं और पठनीय हैं। श्री क्षेत्रपाल का लेख 'हरिहर के सामान्य स्वरूप का द्योतक एक चित्र' हिन्दी में एक अछूते विषय को प्रकाश में लाता है। हरिहर के उक्त चित्र की फोटो कापी भी लेख के साथ प्रकाशित है, चित्र जम्मूशैली का है। लेखक ने चित्र के सहारे हरिहर-उपासना के अन्य पक्षों पर भी प्रकश डाला है। श्री श्रीमन्नारायण द्विवेदी का लेख 'प्रबन्ध सग्रह : एक विमर्श' श्री रमानाथ झा के ग्रन्थ प्रबन्ध-सग्रह की विस्तृत समीक्षा है, जिससे मैथिली भाषा और साहित्य के सम्बन्ध मे कुछ नया परिचय मिलता है। शेष निबन्ध भी श्रम एव खोज-वृत्ति के परिचायक हैं, पढ़ने योग्य है। हम इस वार्षिकी के और अधिक पल्लवित होने की कामना करते हैं।

गीता-प्रवचन : लेखक—सन्त विनोबा, अनुवादक, पडित हरिभाऊ उपाध्याय; प्रकाशक—सर्वसेवासंघ प्रकाशन, राजघाट, वाराणसी-१; मूल्य, दो रुपये।

श्रीमद्भगवद्गीता भारतीय वाङ्मय का शीर्ष ग्रन्थ है। जीवन का व्यवहारिक दर्शन इसमें प्रतिपादित हुआ है, इसमे जो कुल लिखा गया है वह सूत्र और सिद्धान्त के रूप में है। समय-समय पर अपने युग की चेतनाओं के अनुरूप सन्तों और विद्वानों ने इसकी व्याख्याएँ की हैं। आदि शकराचार्य और सन्त ज्ञानेश्वर ने इसकी व्याख्या मे अपने को डुबो दिया है। आधुनिक काल मे स्वतंत्रता संग्राम के सेनानी लोकमान्य तिलक जी ने भी इस पर अपनी व्याख्या लिखी है महात्मा गाँधी ने भी इस को आधार बनाकर अपना चिन्तन व्यक्त किया है। सन्त विनोबा ने वर्तमान के और भी निकट आकर इस गीता-दर्शन को देखने का प्रयत्न किया है। दूसरे शब्दों में कहा जाय तो इस 'गीता-प्रवचन' के माध्यम से विनोबा जी ने अपने विचारों एवं आत्मा के दर्शन की साधना की है। जो निश्चय ही दूसरों के लिए अत्यन्त प्रेरणा-प्रद है। प्रवचन की शैली दार्शनिक न होकर लोक-गम्य और रुचि बढ़ानेवाली है। प्रवचन मूलरूप से मराठी में लिखा गया था और अब तक इसके २१ भाषाओं में अनुवाद हो चुके हैं। जो इसकी लोकप्रियता का प्रमाण है। ३०४ पृष्ठ के इस ग्रन्थ का मूल्य केवल २ रुपये है, विनोबा जी की वाणी को सर्वजन-सुलभ करने का प्रकाशक का यह प्रयास सराहनीय है।

संक्षिप्त आत्मकथा : सम्पादक श्री महादेव देसाई, श्री हरिभाऊ उपाध्याय; प्रकाशक—सर्वसेवासंघ प्रकाशन, राजघाट, वाराणसी-१; मूल्य, एक रुपया।

महात्मा गाँधी जी की निज की लिखी हुई आत्मकथा का यह संक्षिप्त संस्करण तैयार किया गया है। तथा १६९पृष्ठ की पुस्तक केवल एक रुपया में सुलभ है। गाँधी जी की आत्म-कथा कितनी प्रेरणा देनेवाली है, यह कहने की बात नहीं है। जिनको जीवन में संघर्ष के साथ कर्म-क्षेत्र मे उतरना है, उनको अचूक आत्मबल इस आत्मकथा से मिलेगा, प्रकाशक ने थोड़े मूल्य में इसे सुलभ कर लोकोपकारी कार्य किया है। इसमे सन् १९२० तक की गाँधीजी की जीवनी है।

बापू-कथा (उत्तरार्द्ध) : लेखक—श्री हरिभाऊ उपाध्याय; प्रकाशक—सर्वसेवा-संघ प्रकाशन, राजघाट, वाराणसी-१; मूल्य, दो रुपये पचास पैसे।

इस पुस्तक मे महात्मा गाँधी जी की सन् १९२० से लेकर १९४८ तक की जीवनी और उनकी राष्ट्र-सेवा का वर्णन हुआ है, इस वर्णन मे घटनाओं तथा परिस्थितियों का युगानुरूप आकलन है एवं उनके महत्त्व और परिणाम की ओर भी इंगित किया गया है। सम्भवतः इसमे पचास प्रतिशत इतने समय तक की कॉंग्रेस संस्था का इतिहास है। वास्तव में यह पुस्तक सर्वथा एक समर्थ तथा अधिकारी विद्वान् की कृति है। भाषा, विषय तथा इतिहास प्रत्येक दृष्टि से यह श्लाघ्य है। जिनको परिस्थितियों को समझते हुए देश के निर्माण में रुचि है उनको अभी कल के अतीत को जानने के लिए यह पुस्तक अवश्य पढनी चाहिए।

गीता-बोध और मंगल-प्रभात : लेखक—महात्मा गाँधी, प्रकाशक—सर्व-सेवासंघ, प्रकाशन, वाराणसी-१; मूल्य, एक रुपया।

महात्मा गाँधी ने गीता का जो मनन तथा ग्रहण किया है, उसी की सरलतम अभि-व्यक्ति उक्त पुस्तक है। इसमे सम्पूर्ण गीता की युगानुरूप व्याख्या एवं अभिनव अध्यात्म दर्शन पढ़ने को मिलेगा। श्लोकों की व्याख्या न देकर, प्रत्येक अध्याय मे निरुपित विषय की विस्तृत टीका-समीक्षा की गई है तथा उसे जीवन के व्यवहार मे निकट रख कर देखने का प्रयत्न हुआ है। गाँधी जी ने स्वीकार किया है कि हम "गीता के द्वारा अपनी सारी धार्मिक गुत्थियाँ सुलझा लेंगे।" उनकी स्वीकृति को सार्थक करने मे यह पुस्तक बहुत सहायक है।

—(डा०) जयशङ्कर त्रिपाठी

कुछ दूसरों के लिए : लेखक—श्री उपेन्द्रनाथ 'अश्क'। प्रकाशक—नीलाभ प्रकाशन, ५, खुसरोबाग रोड, इलाहाबाद; मूल्य; बारह रुपये।

जिस प्रकार 'स्वेट मार्डेन' के पास जिन्दगी के हर क्षेत्र पर आधिपत्य प्राप्त करने के नुस्खे हैं या अमेरिकी लेखक 'डेल कार्नेगी' के पास मानव के हर मर्ज की दवा है, उसी प्रकार प्रस्तुत पुस्तक 'कुछ . . . दूसरों के लिए' मे भी रचनात्मक से लेकर सृजनात्मक

तक की लेखक की समस्त प्रक्रिया में आनेवाली बाधाओं का विषद विश्लेषण (?) किया गया है ? सिर्फ इतना ही नही वरन् सृजन के पश्चात् 'साहित्य जगत्' के अखाड़े में कैसे उतरा जा सकता है उसके भी उपाय सुझायें गये हैं। यदि सत्य कहना अनुचित न हो तो पुस्तक का आधे से अधिक भाग इसी लाभ के लिए उपयोग में लाया गया है। पाठक पुस्तक पढ़नी शुरू करता है, शुरू से ही बड़ी आशा बँध जाती है और लगता है कि क्या ही उत्तम पुस्तक है। लेखक और लेखक की समस्याओं का भला ऐसे विषयों पर भी कोई हिन्दी में विश्लेषणात्मक आलोचना लिख सकता है। लेखक की सबसे बड़ी समस्या... अपनी शक्ति, सीमा, क्षेत्र और परिवेश को जानने की है। पुस्तक शुरू होती है और फिर लेखक को मुख्यतः "जेनुइन" होना चाहिए से, बढ़ते बढ़ते—संवेदना, प्रेरणा और अनुभूति आदि-आदि बड़े-बड़े 'पॉइंट्स' पर से फिसलती, "व्यक्ति और समष्टि; कहाँ तक लेखक को समाज के प्रति 'कोमोटेड' रहना चाहिए, समाज की 'टॉपिकेलिटी'' तक पृष्ठ बासठ पर एक झटके से रुक जाती है और फिर पृष्ठ तिरसठ से आगे बढ़ने लगती है पर किस ओर' इंगित कर पाना कठिन है।

क्योंकि उसके बाद "सच्ची समस्या उन्मुख रखना ही है.......समस्या व्यवसायिक लेखन से बचने की है ....समस्या पुराने साहित्य की तीस साल लम्बी गली से बाहर आकर खुले आसमान के नीचे, खुली और स्वच्छ हवा मे एक नयी कालोनी बसाने की है . . . समस्या हर तरह के बन्धन और व्यवस्था से बाहर आकर मन के मुताबिक लिखने की है आदि समस्यायें और जब पाठक पुस्तक समाप्त करता है तो उसके सामने समस्या पुस्तक को समझने की है। शुरू के तीन लेख काफी विचारोत्तेजक हैं और वहाँ तक पहुँचने तक लगता है कि लेखक अभी मन्त्र छोड़ता जा रहा है शायद आगे व्याख्या करेगा पर वो दुनिया भर के मन्त्र छोड़कर आगे और नये मंत्र देने बढ़ जाता है जबकि पाठक बेचारा अपने पुराने मन्त्रों को ही समेटता रहता है। क्योंकि 'अनुभूति', अभिव्यक्ति एवं भाषा, संवेदना तथा क्लिशेज'..... कुछ ऐसे ज्वलन्त विषय हैं जिनके लिए शायद कुछ अधिक चिन्तन, मनन एवं शायद कुछ अधिक गहराई चाहिये जबकि 'अश्क' जी केवल इन सबका संकेत मात्र करके रह गये हैं।

आधी से अधिक पुस्तक मुख्यतः 'साहित्य और साहित्यकार' से हट कर 'अस्तित्व और व्यक्तित्व' की समस्याओं में उलझ कर रह जाती है ! हर बार अपनी बात प्रमाणित करने के लिए अश्क जी अपना व्यक्तिगत उदाहरण प्रस्तुत करते हैं। उनके अपने तथा अपने सम्बन्धियों एवं अपने तथा अपने अन्य सामयिक लेखकों से सम्बन्धित चर्चा एवं परिचर्चाओं से पुस्तक में कहाँ तक परिपक्वता आ पाई है, कम-से-कम इसे मैं समझने में असमर्थ रही। दुःख है कि किस कद्र एक अच्छी खासी पुस्तक की कुण्ठाओं में फँस कर दुर्गति की जा सकती है इससे साफ जाहिर है। एक या दो नहीं पुस्तक में अनेक बातें अ-प्रासंगिक हैं! मसलन हिन्दी के समस्त अगले पिछले लेखकों की साहित्यिक, सामाजिक एवं व्यक्तिगत

जिन्दगी के विभिन्न पहलुओं को प्रकाश में लाकर (कहाँ तक सत्य–?) तथा उन पर राय जाहिर कर 'अश्क' जी अपने अहं को प्रसन्न करते हैं या अपने लिए अपॉलोजाइस कर रहे हैं यह समझना मुश्किल है।

'अश्क' जी ने जिस उद्देश्य को ध्यान में रखकर पुस्तक की रचना प्रारंभ किया था, उसी उद्देश्य पर अन्त तक ध्यान केन्द्रित किया होता तो यह पुस्तक अपने मे अपवाद स्वरूप होकर हिन्दी की एक अमूल्य निधि होती, जिसके लिए विदेशों में भी 'बोस्ट' कर सकतें। हिन्दी लेखकों की इस मनोवृत्ति को देख कर अत्यन्त ही खेद होता है! आत्म-विज्ञापन' से क्यों नही हमारे ये प्रतिभावान लेखक अपने को बचा पाते? क्यों वे इस कद्र कुण्ठाग्रस्त रहते हैं कि दूसरों को नीचा दिखाने का अवसर ताकते रहते हैं। क्यों नही ये उन्मुक्त चिन्तन कर सकते? क्या यह आत्मविश्वास की कमी है? पुस्तक मे 'अश्क'जी ने मटो, मॉम, टॉलस्टाय, गोर्की आदि समस्त विश्व के महान् लेखकों के उदाहरण देते हुए उपदेश दिया है कि लेखक को अन्तःप्रेरणा से लिखना चाहिए! 'जेनुइन' हो कर लिखना चाहिए। पाल, जैनेन्द्र, अज्ञेय, राकेश, बेदी, यादव सभी को व्यवसायिकता की दृष्टि से लताड़ा है! और लेखक को कुठा से बचने लिए 'हितोपदेश' की भाति उपदेश दिये हैं! परन्तु यह पुस्तक पढ़ने पर मुझे यह कहने मे सकोच नही है कि मटो, मॉम, बाल्जॉक एवं जोला की भाति स्वयं अश्क जी ने भी उन्ही सब बातों को स्वयं अनुभव किया होता, और यह अनुभूति अपने अपने साहित्य मे अभिव्यक्त की होती तो आज उनकी यह पुस्तक 'कुछ दूसरों के लिए' केवल सामयिक लेखको का ध्यानाकार्षण केन्द्र न होकर विश्व साहित्य में उन्हें दार्शनिक विचारक' के रुप मे स्थापित कर चुकी होती!

—पुष्पा अग्रवाल, एम० ए०

जागे तभी सबेरा : लेखक—श्री जय भिक्खु, अनुवादक—श्री कस्तूरमल बाँठिया, प्रकाशक:-सस्ता साहित्य मण्डल, नई दिल्ली, मूल्य पाँच रुपये।

प्रस्तुत कृति गुजराती के प्रसिद्ध ऐतिहासिक उपन्यास 'प्रेम नु मदिर' का हिन्दी रूपान्तर है। लेखक ने इस कृति के माध्यम से महाजनपद युग की जीवन को प्रस्तुत करने की चेष्टा की है। वत्सराज उदयन और अवन्ति नृपति प्रद्योत की पृष्ठभूमि में इस ऐतिहासिक कथा का रूप विन्यास हुआ है। तत्कालीन भारत ईर्ष्या-द्वेष, क्रोध, लोभ एव स्वार्थ के सिकजे में ग्रस्त था जिसकी झलक कौशाम्बी तथा उज्जयिनी के नरेशों के कृत्यों से मिलती है। इस वातावरण मे उदयन एवं वासवदत्ता के पारस्परिक प्रेमकलह की समाप्ति में सहयोग प्रदान करता है। विलासिता एव तृष्णा मे आकठ डूबे प्राणी मृगावती, चंदना, यौगंन्धरायण, प्रद्योत, उदयन आदि तप, संयम, त्याग, समर्पण तथा सेवा भाव में विश्वास करने लगे। भगवान् महावीर के शान्ति एव प्रेम के उपदेश का जन-जीवन पर अद्भुत प्रभाव पड़ा। द्रव्य के माध्यम से मानव जीवन का मूल्यांकन, युद्ध एव लूट की विभीषिका में प्राप्त सुन्दरी चन्दना की बिक्री तथा सबल निर्बल संघर्ष के चित्र तत्कालीन इतिहास

से सुलभ होते हैं। वस्तुतः इस संघर्षमय वातावरण में संगीत, साहित्य एवं ललितकला की समुन्नति भौतिक समृद्धि की परिचायक है। ईर्ष्या द्वेष क्रोध आदि वात्याचक्र से उद्विग्न प्राणी पृथ्वी को प्रेम-मंदिर का प्रतीक मान लेते हैं और 'चलो, 'जागे तौ से सवेरा' को सार्थकता प्रदान करते हैं तात्पर्य पुण्य कर्मों के लिए कोई सुनिश्चित बेला नहीं होती, इसकी पुष्टि करते हैं। वस्तुतः लेखक का उद्देश्य आधुनिक विश्व-शांति का संदेश प्रदान करना प्रतीत होता है। बीच-बीच में अनुस्यूत लेखक के दार्शनिक एवं मनोवैज्ञानिक कथन अवश्य ही पाठक के मन को अपनी ओर आकृष्ट कर लेते हैं।

गाँधी जी के साहित्य में : लेखक श्री प्रभाकर दिवाणु; प्रकाशक—आत्माराम एण्ड संस, काश्मीरी गेट, दिल्ली-६, मूल्य, दो रुपए।

युग पुरुष बापू ने भारतीय पुनरुत्थान के लिए ग्रामोत्थान का शुभ संकल्प किया था, एतदर्थ उन्होंने सेवाग्राम के रूप मे रचनात्मक कार्यक्रम का शुभारम्भ भी किया था। मानवता के पुजारी बापू ने अपने गम्भीर विचारों को कार्य रूप में परिणत कर जन-जीवन के समक्ष कार्य-निष्ठा एव देश-सेवा की व्यावहारिक रूप रेखा प्रस्तुत की थी। जीवन-साधना में आध्यात्मिक चिन्तन का भरयक उपयोग गाधीमत की विशेषता थी। सेवाग्राम आश्रम मे बापू के साहचर्य में रहकर लेखक ने अपने समय का सदुपयोग किया है और आश्रम जीवन के अन्तरंग क्षणों का दैनन्दिन विवरण प्रस्तुत किया है।

सेवाग्राम की मिट्टी, सडकों के बरसाती कीचड़, बाँस की खपच्चियों से निर्मित मकान आदि का यहाँ सुन्दर चित्र प्रस्तुत है। कक्ष मे बापू का सीधे तन कर बैठना और दीवाल पर ईसा मसीह का चित्र, मिट्टी से निर्मित, 'हे राम', आदि प्रसगों के सस्मरण यहाँ उपलब्ध हैं। खजूर की चटाइयाँ, रद्दी कागज की टोकरियाँ, खजूर के पंखे, गाँधी का चरखा, बेकार सूत से निर्मित 'पिनकुशन' आदि के द्वारा हमे गाँधी जी के मितव्ययी होने का प्रमाण मिलता है। मिट्टी के बर्तन, पखा आदि वस्तुओं से गाँधी जी के ग्रामीण जीवन से लगाव की बात स्पष्ट होती है। तदनन्तर लेखक ने गाधी जी के भोजन-गृह, प्रार्थना-स्थल की सर्वधर्म संग्राहिका प्रार्थना, गाँधीजी का प्रार्थना में अटूट विश्वास, प्रार्थना के बाद सूत्रयज्ञ का हिसाब आदि प्रकरणों का विवरण दिया है। तत्पश्चात् लेखक मार्ग के शाल्मली वृक्ष, तीन चबूतरे, महादेव भाई देसाई, किशोरीलालजी, आर्यनायकम्, मीरा बहन, जमनालाल जी आदि के रोचक सस्मरण प्रस्तुत करता है। बापू की सभी चीजें से अवगत कराने की दृष्टि से पुस्तक की सामग्री उपयोगी है। शिक्षा, आहार, वैद्यक, अनुशासन आदि के संबंध में गाँधी के विचारों तथा उनके 'वज्रादपि कठोराणि मृदूनि कुसुमादपि' अन्तःकरण की पहचान भी इसी परिप्रेक्ष्य में लेखक ने करा दी है। भाषा-सरल एवं प्राजल है।

इस हमाम में सब नंगे हैं : लेखक—श्री श्यामनारायण बैजल; प्रकाशक—पर्वती प्रकाशन, मदारी गेट, बरेली, मूल्य, चार रुपये।

प्रस्तुत रचना मे लेखक की नौ व्यंग्य कथाओं का संग्रह हुआ है। सम्प्रति समाज में

अराजकता की स्थिति उत्पन्न होती जा रही है। रचनाकार ने इन सारी स्थितियों की अनुभूति की सामाजिक अव्यवस्था पर तीखा व्यंग्य किया है जिसमें सत्य की पृष्ठभूमि में हृदय को अनुप्रेरित करनेवाली विचारात्मक अभिव्यक्तियाँ अनुस्यूत हैं। समाज के विभिन्न वर्गों की हीन मान्यता एवं धर्म का सार्थक चित्रण करते हुए, उसने अपनी तीव्र प्रतिक्रिया व्यक्त की है जो प्रत्येक बौद्धिक व्यक्ति को सोचने-समझने के लिए बाध्य करता है। 'टएपडायुग', 'दीवार की नथ' 'नवंबर दो का', 'मक्खन लगाने की कलाबाजी,' 'आप के उधारपथी मित्र' आदि शीर्षकों से आधुनिकतम विटामिन एम० के प्रयोग विश्वास करनेवाले प्राणियों का पर्दाफास हुआ है। यह कथाओं का लघु व्यंग्य संग्रह अच्छा बन पड़ा है।

बहता पानी : रमता जोगी : लेखक—श्री ओम प्रकाश निर्मल, प्रकाशक—नेशनल पब्लिशिंग हाउस २।३५ अन्सारी रोड, दरियागंज, दिल्ली-६; मूल्य, तीन रुपए पचास पैसे।

यह एक सामाजिक उपन्यास रचना है जिसमें लेखक ने स्वातन्त्र्य प्राप्ति के अनन्तर भारतीय ग्राम्य जीवन का चित्र प्रस्तुत करने का प्रयास किया है। गाँव के तथाकथित सम्भ्रान्त लोगों की कुरीतियाँ सदैव अस्पष्ट ही रहती हैं जब कि छोटे लोगों की रचमात्र की त्रुटि भी सर्वजन की जिह्वा पर प्रकट हो जाती है। सरपंच विद्याधर, गिरधारी आदि ऐसे ही ग्रामीण मानिन्द पात्र हैं। किशन गरीबी का जीता-जागता स्वरूप है। अन्त मे उसे कांग्रेस का टिकट मिलता है तथा विजय भी उसी के पक्ष मे रहती है। चेतनदास योगियो का नेतृत्व करता है लेकिन वह स्वय राजनीतिक और सामाजिक विचारो के साथ ही साथ अवस्थानुकूल कुप्रवृत्तियों से भी आक्रान्त है। समय आने पर उसे सूझ आती है और वह 'कम्मो' को बहन मान लेता है। गौतमी जिससे वह प्रेम करता था उसके प्रति भी उसके हृदय मे श्रद्धा के भावो का उद्रेक हो उठता है! इस प्रकार योगी चेतनदास जब तक मठ का उत्तराधिकारी बनना चाहता है उसके प्रति लोगों की दृष्टि दूसरी रहती है किन्तु ज्योंही वह उसे त्याग कर देशाटन के लिए चला जाता है, सर्वत्र उसकी प्रशसा होने लगती है। कथावस्तु, चरित्र, कथोपकथन की दृष्टि से थोडे मे लेखक ने एक बृहत् सामाजिक पीठिका को प्रस्तुत किया है।

—शीलवन्त सिंह एम० ए०